अल्प विकास की राजनीति

जी. ए. हीगर

M

आमुख

अल्प विकसित राजनीतिक प्रणाली के अध्ययन में पिछले कई दशकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। 1950 के दशक और 1960 के दशक के प्रारंभिक वर्ष अल्प विकास के कारण संबंधी, विकास के वैकल्पिक उपाय संबंधी अनेक सिद्धांतों के प्रतिपादन के साक्षी रहे हैं। यद्यपि काम में लाए गए अनेक सिद्धातों, विशेषकर सरचनात्मक, कार्यात्मक विश्लेषण तथा अवधारणा से उन्हें शोधकार्य में कुछ प्रारंभिक दिशा मिली तथापि विद्वानों ने जल्दी ही यह समझ लिया कि अल्प विकसित राज्य मे राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या करने के लिए सिद्धात और अवधारणाएं दोनों अपर्याप्त हैं, पश्चिमी राजनीतिक परंपरा पर आधारित विभिन्न सिद्धात तथ्यों की व्याख्या करने के बजाय प्रायः तोड मरोड ही करते थे।

संभवतः व्यापक सिद्धात विकसित करने के प्रयत्नों की निरर्थकता महसूस करते हुए अनेक अध्येताओ ने बहुत विशेषीकृत विषयों पर ध्यान देना आरंभ किया। हाल के वर्षों मे अल्पविकसित राज्यों की राजनीतिक प्रणाली से सबधित बहुत ही विशेषीकृत विषय पर स्वरूप चिन्ह संबंधी शोध की बाढ सी आ गई है। ऐसी चीजें जैसे स्थानीय राजनीतिक प्रणालिया, जननीति निर्माण के विशिष्ट उदाहरण तथा छोटे समूहों के भीतर खास सामाजिक तथा राजनीतिक बदलाव हाल की तुलनात्मक राजनीतिक शोध की सामग्री बन गई हैं। ऐसे शोधों से हमे अफ्रीका तथा एशिया की राजनीतिक प्रणालियों के बारे मे काफी जानकारी मिलती है।

किंतु अल्प विकसित राजनीतिक प्रणालियों पर एक सामान्य चर्चा के लिए यह शोध अकेले पर्याप्त नही है। और चूंकि अध्येता नए सामान्य सिद्धांतो को व्यवहार में लाने मे हिचकिचाते हैं इसलिए पुराने पड़ चुके सिद्धात शोध को अब भी प्रभावित करते हैं तथा निष्कर्षों को तोडते मरोडते हैं। अल्प विकसित राजनीतिक प्रणालियो के अध्ययन में कहा जा सकता है कि दो भाषाओं का विकास हुआ है। विशेषीकृत समस्याओ पर बनी संकरी शोध तकनीकों तथा विचक्षण विवरणात्मक विश्लेषण का इस्तेमाल किया जाता है। राजनीतिक प्रणालियों के अधिक सामान्य चरित्रीकरण के लिए पुराने सिद्धात तथा अवधारणाओं का इस्तेमाल किया जाता

है, जिनसे कोई शायद ही कभी संतुष्ट हुआ हो। सामान्य सिद्धांत पर हाल के वर्षों में एकत्रित आकड़ों की विशाल सख्या का प्रभाव नगण्य प्रतीत होता है। पुस्तक में कुछ ऐसे संबधो की रूपरेखा बनाने की कोशिश की गई है जो उपलब्ध आंकड़ो की रोशनी में अल्प विकसित राजनीतिक प्रणालियों के लक्षण प्रतीत होते हैं। दूसरे शब्दों मे, यहा सिद्धात को आकड़ों के अनुसार रूप देने की कोशिश की गई हैं। परतु ऐसा कोई 'महान सिद्धांत' प्रतिपादित करने की चेष्टा नही की गई है जिससे सब कुछ समाहित हो। मैंने स्वयं को जानबूझकर अल्प विकसित देशो की न केवल आधुनिकीकरण की जरूरतों से अपितु अपने समाजो में किसी तरह की राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने की और सीमित समस्या से निबटने में अल्प विकसित देशो की सतत असमर्थता की व्याख्या करने तक सीमित रखा है। मैंने कुछ पुरानी तथा वर्तमान सैद्धांतिक अवधारणाओं को चुनौती देने तथा उन्हें नया रूप देने का प्रयत्न किया है।

स्पष्ट है कि एक छोटी सी पुस्तक में विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों की विविधता की चर्चा करने की कोशिश करना काफी जीवट का काम है। जिन लोगों ने अपनी चर्चाओं तथा अपने प्रकाशित-अप्रकाशित शोध के द्वारा मेरी सहायता की उनकी सूची इतनी लंबी है कि यहा उद्धृत नही की जा सकती। इस पुस्तक की पादटिप्पणियों में उनके प्रति मेरा बौद्धिक ऋण अभिलिखित है।

मै गवर्नमेंट ऐंड फारेन अफेयर्स के वुडरो विलसन विभाग, यूनिवर्सिटी आफ वर्जीनिया के अपने सहयोगियो, विशेषरूप से एल्फ्रेड फर्नबाख, आर० के० रमजानी और राबर्ट वुड का बहुत बहुत आभारी हूं। इन सबसे मैंने बहुत कुछ सीखा है। मै एक अनुदान के लिए यूनिवर्सिटी आफ वर्जीनिया के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूंगा, इस अनुदान से इस अध्ययन के शोध और लेखन में आंशिक सहायता मिली।

और अंत में अपनी पत्नी गेराल्डाइन के प्रति तो मैं कृतज्ञता ही प्रकट कर सकता हूं। इस किताब पर काम करते समय मेरी बहुधा बदलती हुई मनस्थितियों का सामना उसने उत्साहपूर्वक और खुशमिजाजी के साथ किया।

जी० ए० हीगर

अनुक्रम

1

राजनीतिक अल्प-विकास और राजनीतिक सुव्यवस्था की खोज

अल्पविकसित जनसमुदायों में राजनीति, मुख्यत सुव्यवस्था की खोज की राजनीति बन गई है। विकास, जो बहुधा अग्राह्य विचार मात्र होता है, एक अप्राप्य लक्ष्य सिद्ध हुआ है। इसके विपरीत, सामाजिक सुव्यवस्था अधिक ग्राह्य और अधिक आवश्यक है। सुव्यवस्था लाने के कार्य में रत, औपनिवेशिक युग के सैनिक शासनों की बढ़ती हुई संख्या इस बात का एक संकेत है कि विकास की राजनीति, परिवर्तित होकर सुव्यवस्था की राजनीति बनती जा रही है। सुव्यवस्था के लिए इतनी लालसा अधिकांश अल्पविकसित देशों की इस विफलता का परिणाम है कि वे अपने अपने समाज में साधारण सी प्रगति लाने से अधिक कुछ नही कर पाए। अल्प विकास के एक अस्थाई या अल्पकालिक स्थिति होने की अपेक्षा स्थाई परिस्थिति बन जाने की आशंका है।

राजनीतिक विकास का सिद्धांत

राजनीतिशास्त्र के अधिकांश विद्वानो ने विकास की राजनीति के सुव्यवस्था की राजनीति मे परिवर्तित होने की प्रक्रिया को साधारण सी मान्यता दी है। उनका ध्यान अब भी विकासोन्मुख परिवर्तन की प्रक्रिया की ओर ही केंद्रित है जोकि राजनीतिक विकास की प्राप्ति का माध्यम है। ये विद्वान, विकास को या तो ऐसे पश्चिमी अनुभवों का *वित्युपादित संलक्षण* मानते हैं *जिनकी विशेषता है* बढती हुई धर्मनिरपेक्षता, राजनीतिक भूमिकाओं और ढांचो का भेद, समाज के व्यावहारिक आदर्श के रूप में समतावाद का उभरना, और लोगों में अपने अपने पर्यावरण से जूझने की क्षमता मे वृद्धि,[1] या फिर ये वैज्ञानिक विकास को, विभिन्न संगठनों को संस्थात्मक

वह परिभाषा या अर्थ जो आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन जैसे शब्दों को दिया गया।

इस विषय के अधिकांश आधुनिक विद्वानों के लिए सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य भी है और अनिवार्यतः आधुनिकीकरण लाने वाला भी।[4] यद्यपि आधुनिकीकरण को बहुधा सामाजिक परिवर्तन का एक रूप कहा जाता है, उदाहरण के लिए, 'उन सभी प्रणालियों का परिवर्तन जिनके द्वारा मनुष्य अपने समाज का संचालन करता है, जैसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रणालियां'[5], लेकिन 'आधुनिकीकरण' और 'सामाजिक परिवर्तन' जैसे शब्द जिस प्रकार विश्लेषण के समय प्रयोग मे लाए जाते हैं उससे वे समानार्थक प्रतीत होने लगते हैं। चूंकि परपरागत समाज परिभाषा के संदर्भ मे ऐसा समाज माना जाता है जिसमें स्वयं को ढालने की अनुकूलनशीलता नही है, इसलिए यह समझा जाता है कि यह समाज, परिवर्तन होते ही ढह जाएगा,[6] और इसी धारणा को देखते हुए सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बन गया है आधुनिकीकरण। यहा तक कि जहां एक ओर इस तर्क की आलोचना यह कहकर की जाती है कि इसमे परपरा और आधुनिकता को अत्यंत कठोर रूप मे दर्शाया गया है वहां दूसरी ओर ये आलोचक वास्तव मे इस बात को चुनौती नही देते कि सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण अवश्यभावी है।[7] यह कहा जाता है कि मूल धारणा की अपेक्षा परंपराए अधिक अनुकूलनशील हैं, लेकिन इस अनुकूलनशीलता की अपनी ही स्पष्ट सीमाएं हैं, और अत्यंत लचीली परंपराएं भी सामाजिक परिवर्तन के सामने अनिवार्यत. कमजोर पड़ जाती हैं।

उपर्युक्त बाते यह सिद्ध करने के लिए नही कही गई हैं कि आज सामाजिक परिवर्तन को एक ही दिशा में अग्रसर होने वाला माना जाता है।[8] कुछ बातों की दृष्टि से तो इस तर्क को चुनौती नही दी जा सकती। जिस प्रकार एक न एक दिन हम सबको यह संसार छोड़ना है, उसी प्रकार कभी न कभी अधिकांश स्थितियां अवश्य बदलेंगी। लेकिन सामाजिक परिवर्तन, और परोक्ष रूप से, आधुनिकीकरण को लगभग अनिवार्य मानने मे कुछ समस्याए हैं, क्योकि यह अनिवार्यता राजनीतिक विकास की एक निश्चित परिभाषा को जन्म देती है। अर्थात राजनीतिक विकास के परिवर्तन का सूत्रपात करने वाला (जो अवश्यंभावी है) इतना नही समझा जाता जितना कि परिवर्तन का संचालन करने वाला, और परिवर्तन तथा उसके परिणामो को सही दिशा मे ले जाने वाला।[9] इस मत के अनुसार अव्यवस्था, जो नए राज्यों की एक विशेषता बन गई है, उसी परिवर्तन का परिणाम है जो भ्रष्ट संचालन या आधुनिकीकरण की विफलताओं के कारण नियंत्रण से बाहर हो गया है।[10] एक

क्षण के लिए हम यह तर्क देंगे कि राजनीतिक विकास संबंधी यह मत उस काम को बहुत छोटा मानता है जो नए राज्यों को करना है, और इस मत में अव्यवस्था के कारणों का बडा सीमित सा स्पष्टीकरण दिया गया है।

राजनीतिक विकास, परिवर्तन का निर्देशन है, यह धारणा इस बात से झलकती है कि आजकल बडा जोर देकर कहा जाता है कि किसी समाज के राजनीतिक विकास का मानंदड यह है कि उसमें कितनी राजनीतिक संस्थात्मकता है।[11] राजनीतिक संस्थाओं को समाज का केंद्रबिंदु माना जाता है चाहे वह समाज पहले से विद्यमान हो या अस्तित्व मे आने की प्रक्रिया मे हो। ये राजनीतिक संस्थाएं समाज को एकता और सगठन के लिए प्रतीक देती हैं, उसके लक्ष्यों, उद्देश्यों का चुनाव करती हैं, और इन तक पहुचने के लिए आवश्यक सामाजिक सहयोग उपलब्ध कराती हैं। राजनीतिक संस्थाएं उन सामाजिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं की प्रतिरूप हैं जो स्थिर हो चुकी हैं। ये संस्थाएं समूहो के बीच क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ और संघर्षों के लिए एक प्रकार के नियम देती हैं जिससे समाज सभ्य और जनहितकारी बनता चला जाता है। अन्य शब्दो मे, संस्थाए सामूहिक क्रिया-प्रतिक्रिया का संचालन करती हैं। इसी मत के अनुसार, यदि संस्थाएं नही है तो इसका अर्थ है कि समूहों के बीच जो भी क्रिया-प्रतिक्रिया होगी, उसके कोई नियम नही होंगे। हर व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए ही कार्य करेगा।

सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण को अनिवार्य मानने से राजनीतिक विकास की परिभाषा न केवल सीमित बनती है बल्कि अल्प विकास कब तक रहेगा इस अवधि को भी मनमाने ढंग से सीमित कर दिया जाता है। यदि परिवर्तन अनिवार्यतः आधुनिकीकरण लाता है तो राज्यो की अल्प विकास की स्थिति अस्थाई होगी। इसके परिणामस्वरूप ऐसे अल्पविकसित राज्यो को 'विलंबित' या अवरुद्ध राज्य समझा जाएगा। इनके लक्षणो और आधुनिक राज्यो की विशेषताओं के बीच भिन्नता से ही अल्पविकसित राज्यो का निर्धारण होगा। विचार का केंद्रबिंदु आधुनिकीकरण और विकास की परिभाषा है। अल्पविकसित राज्यों की राजनीति पर इसी संदर्भ मे विचार किया जा रहा है, कि यह राजनीति उपरोक्त परिभाषाओं के अनुरूप है या नही।

अल्पविकसित राज्यों में राजनीतिक प्रक्रिया

राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास के सबंध मे सिद्धातो के होते हुए, या इनके अभाव के बावजूद, यह दोनों लक्ष्य अप्राप्य सिद्ध हुए हैं। विकसित और अल्प-विकसित राज्यों के बीच अंतर और बढे प्रतीत होते हैं, न सिर्फ इस कारण कि

विकसित राज्य बराबर और विकसित होते जा रहे हैं (जोकि वास्तव में है), बल्कि इसलिए भी, जैसा सैमुअल हंटिंगटन ने बताया है, कि अल्पविकसित राज्य या तो गतिहीन हो गए हैं या विकास की प्रक्रिया में हैं।

सामाजिक परिवर्तन रुक रुक कर होता रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि अल्पविकसित समाज जिन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थे वही बदल गए। अब स्वयं अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ गया है। आधुनिकीकरण और लोकतंत्र जैसे बड़े ध्येयों का स्थान राजनीतिक सुव्यवस्था की मूलभूत खोज ने ले लिया है।

सामाजिक परिवर्तन, अनिवार्य और अततः आधुनिकीकरण लाने वाला होने की बजाय बड़ा बाधापूर्ण और अनिश्चित परिणामों वाला रहा है। परिवर्तन का विरोध करने और पूर्व स्थिति में ही बने रहने की भावना उतनी ही व्यापक लगती है जितना कि स्वयं परिवर्तन। इसके अलावा जहां कहीं भी सामाजिक परिवर्तन हुआ है वहा न केवल उसके नियंत्रण और परिणामों के संचालन की समस्या उठी है बल्कि और आगे परिवर्तन की संभावना को भी बहुधा सीमित कर दिया गया है।

सामाजिक परिवर्तन के बारे मे, कम से कम सिद्धांत रूप में, बड़े प्रशंसनीय शब्दों में सोचने की प्रवृत्ति है। यानी सामाजिक परिवर्तन को संपूर्ण सामाजिक ढांचे का विकल्प बताया जाता है जो किसी एक निश्चित समाज की सभी गतिविधियों का मार्ग निर्देशन एक नए सामाजिक ढांचे द्वारा करता है। इस मत में विकास की एक बडी समस्या आधुनिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के नवनिर्माण की है।[12] इस तरह का तर्क देते हुए बहुधा परिवर्तन के स्वरूप को जैसा कि एक विद्वान ने कहा, सुरतालविहीन बताया जाता है।[13] परपरागत समाज बहुत ही स्थानीय सीमाओं मे रहते हैं और उनपर परिवर्तन का प्रभाव अलग अलग ढंग से पड़ता है। नए राष्ट्र-राज्य परंपरागत समाज के समूहों मे बने हैं। और यदि किसी निश्चित प्रदेश में परंपरागत समाज पर सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव पड़ा है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे सभी समाजों पर वैसा ही प्रभाव पड़ा। कुछ जनसमूहों पर तो लगभग बिल्कुल ही असर नहीं पड़ा है, कुछ पर मामूली असर पडा, और कुछ तो अत्यंत प्रभावित हुए। इसके अलावा कुछ सामाजिक व्यवस्थाएं ऐसी होती हैं जो संपूर्ण रूप से बदल जाएं। सामाजिक परिवर्तन, समाज के कुछ ही भागों पर प्रभाव डाल सकता है (और विभिन्न समाजों पर भी) और यह प्रभाव अलग अलग गति और तीव्रता का होता है।[14] पुराना और नया साथ साथ चलते हैं। उदाहरण के लिए

किसी जनसमूह अथवा कबीले या समाज का सरदार संभवतः अपनी राजनीतिक सत्ता बहुत हद तक खो दे, लेकिन परंपरागत रीति रिवाजों और सामाजिक वर्गीकरण की दृष्टि से अपना सर्वोच्च स्थान बनाए रखे।

सामाजिक परिवर्तन कभी तेज और कभी धीमी गति से होता है। इस बात का पता कुछ अन्य तरीको से भी चलता है। उदाहरण के लिए परंपरागत सामाजिक व्यवस्थाओ का परिवर्तन आधुनिक सामाजिक ढांचों में हो रहा है यह अक्सर तब देखने में आता है, जब सामाजिक व्यवस्थाएं और सस्थाएं स्वयं राष्ट्र-राज्य का मूल आधार बन जाती हैं। सामाजिक परिवर्तन अक्सर ऐसे आधुनिक समूहों को जन्म देता है जो परंपरागत जनसमूहों की तरह ही स्थानीय सीमाओं मे बंधे रहते हैं। छोटे शहरी मध्यम वर्ग के जनसमूहों का उदय इसी बात का एक उदाहरण है जिनके बारे मे आगे चलकर राष्ट्रवाद के विषय पर विचार करते समय उल्लेख किया जाएगा। ऐसे समूहो के सदस्यों की संख्या बहुत सीमित हो सकती है और यह उस प्रदेश के अन्य समूहों के साथ आशिक रूप से कभी कभी संबद्ध हो सकते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक परिवर्तन से न केवल निश्चित परंपरागत रूपों की समाप्ति नही हो सकती बल्कि इसमे कुछ नए निश्चित समूहों का उदय भी हो सकता है।[15] सामाजिक परिवर्तन से कुछ खास परंपरागत जनसमूहों को दृढता भी मिल सकती है या फिर इन्हे नई सामाजिक व्यवस्था मे बदला जा सकता है। भारत में स्थानीय उपजातिया बडी जातियों और जातीय संस्थाओं से संबद्ध हैं। अफ्रीका में छोटे कबीले बड़े आदिवासी समूहों मे नजर आते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया में बड़े लोगों और उनके संरक्षित लोगों के आपसी संबंध, वहां के परंपरागत समाज की विशेषता है। इन संबंधों का नई राजनीतिक प्रणाली में महत्व बढ़ता जा रहा है। यहां जिस विशिष्टतावाद और स्थानीयवाद के बराबर बने रहने की बात की जा रही है वह कोई नया विचार नहीं है। जैसा एडवर्ड शिल्स ने कहा है :

> नए राष्ट्र जिन विभिन्न जनसमूहों से मिलकर बने हैं उन्हे यदि अलग अलग रूप में देखा जाए तो वे सभ्य समाज नही है। और अगर संयुक्त रूप से देखा जाए तो भी वे कोई एक सभ्य समाज नही हैं। ···इनमें नियमों का पालन करने की वृत्ति नही है और न ही यह व्यक्तियों अथवा कार्यों के प्रति ही कोई स्वीकारात्मक भाव रखते हैं जोकि सर्वसम्मति के लिए आवश्यक है। यह तो बहुत सारे दूर-पास के संबंधियों, जातियों, जनजातियों आदि के समूह हैं, यहां तक कि विभिन्न छोटे छोटे प्रदेशो मे रहने वाले लोगों के समूह भी हैं, लेकिन यह सभ्य समाज नही है। जहां कहीं भी इनका अस्तित्व है वहां इनमें आपसी समानता की भावना होना मूल रूप से आवश्यक है[16]···

अपने आप को उपनिवेशवादी सरकारों के उत्तराधिकारी समझने लगे हैं। आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग कोई स्पष्ट सुसंगठित सामाजिक वर्ग नही है। इनमें विभिन्न जातियों, प्रदेशों, घरानों, आयु और वर्गों के लोग हैं। फिर भी इस विशिष्ट वर्ग मे एक तरह से वे लोग हैं जो शासक वर्ग कहला सकते हैं। कुछ खास जनसमूहों द्वारा प्रेषित की गई मांगों को सुननेवाले या समाज के बहुत अधिक बोलनेवाले समूहों के प्रवक्ता होने की बजाय यह विशिष्ट वर्ग राजनीतिक प्रतिक्रिया का सूत्रपात करने वाले होते हैं। आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग को राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण के अपने प्रयत्नों में काफी स्वतंत्रता है और राजनीतिक दलों जैसी संस्थाएं इस आधुनिकतावादी वर्ग की वृत्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिबिंब हैं। दृढ़ रूढ़ियों के संदर्भ मे या अन्य आर्थिक तथा सामाजिक भिन्नताओं के संदर्भ में, सामाजिक समूहों पर बहुधा विचार होता है और इन्हें आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग के कार्यो के लिए जुटाया जाता है। अल्पविकसित राज्यों में राजनीतिक गतिविधि इसी विशिष्ट वर्ग की गतिविधियों के आसपास केंद्रित रहती है। इस वर्ग के अंदर ही एक दूसरे के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव, राजनीति पर और अन्य वर्गो पर भी पड़ता है। नए राज्यों में बराबर सामाजिक विखंडन, इन राज्यों की राजनीति मे विशिष्ट वर्ग का होना, और इस वर्ग की कार्यवाहियों के कारण उत्पन्न राजनीतिक गति के लिए सामाजिक विखंडन की वृत्ति, और क्रिया-प्रतिक्रिया, ये सभी ऐसी बातें हैं जिनसे एक राजनीतिक प्रक्रिया शुरू होती है जिसे संस्थाविहीन नही कहा जा सकता जहां एक दल दूसरे दल के सामने डटकर खड़ा हो जाता है। समस्या यह नही है कि राजनीतिक संस्थाएं या विधियां संस्थात्मक हैं या नही बल्कि यह है कि इन संस्थाओं का स्वरूप क्या है चाहे वह संगठनात्मक हो या न हो।

अल्पविकसित राज्यों में राजनीतिक संस्थाएं विशेषकर 'राष्ट्रीय' संस्थाएं बहुत विभाजनवादी होती हैं।[18] सत्ता और समर्थन स्थानीय होता है और राजनीतिक संस्थाएं तथा संगठन, स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर विशिष्ट वर्ग तथा अन्य समूहों से मिलकर बनती हैं। इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक प्रतिक्रिया में विशिष्ट वर्ग का प्रयत्न यही होता है कि वह नए समाज के केंद्र में राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के लिए अन्य वर्गों को साथ मिलाएं। इसके लिए केंद्र से बाहर के विशिष्ट वर्ग और समाज का समर्थन प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाते हैं। केंद्र में नीति और राजनीति के प्रति दलों और विशिष्ट वर्ग की अनुकूल प्रतिक्रिया प्राप्त की जाती है और केंद्र के विशिष्ट वर्ग का प्रयत्न होता है कि यदि यह प्रतिक्रिया प्रतिकूल हो तो असंतुष्ट विचारों वाले व्यक्तियों को किसी तरह से राजी कर लिया जाए।[19]

राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक आंदोलनों का विकास इस बात

पर निर्भर करता है कि आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग एक दूसरे के साथ कहां तक मिलना चाहते हैं या मिल सकते हैं और समाज के विभिन्न खंडों को एक दूसरे के साथ कितने संपर्क मे ला सकते हैं। उनकी ऐसा करने की क्षमता सीमित है क्योंकि केंद्र मे विशिष्ट वर्ग की राजनीतिक क्षमता बहुत कम है। साधन भी थोड़े हैं। आर्थिक दृढ़ता भी उतनी नही है जिसके कारण संरक्षण भी सीमित है। दबाव डालकर मनाने के साधन काफी महंगे और अप्राप्य हैं। इसका परिणाम यह है कि संस्थाएं शुरू से ही कमजोर रहती हैं और इनका अस्तित्व केंद्र तथा बाह्य क्षेत्रों के विशिष्ट वर्गों के बीच सौदेबाजी के बड़े नाजुक संबंधों पर निर्भर करता है। आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग अन्य विशिष्ट वर्गों और सामाजिक ग्रुपो के साथ गठबंधन करके अपने कार्यक्रमो के लिए (या सरकारी कार्यक्रमों के विरोध के लिए), और अपने लिए समर्थन जुटाने के प्रयत्न करता है। अल्पविकसित राज्यो मे 'सत्ता के लिए बनाए गए संबंधों का ढांचा विभाजनीय और खंडयुक्त है। साधारण स्थानीय दल, और जातीय समूह प्रमुख महत्व के होते हैं।···हर नेता दूसरे नेता के साथ अपने और अपने अनुयायियो के लिए सौदेबाजी करता है[20]······

इस प्रक्रिया मे गतिहीनता लगभग निहित है। जहां कही भी मिलेजुले संगठन नही रहे हैं या नही बन पाए हैं वहां विशिष्ट वर्ग के अंदर ही परस्पर संघर्ष के कारण किसी एक व्यक्ति को सामाजिक परिवर्तन की समस्याओं से जूझने का मौका नही मिला। जहां मिलेजुले संगठन बने हैं वहा विशिष्ट वर्ग को उनके गठबंधन के कारण शामिल किया गया है और ये संगठन ऐसी नीतियों को लागू नही कर सके हैं जो इन विशिष्ट वर्गों की स्थिति या संगठन मे शामिल अन्य दलो की स्थिति को चुनौती देने वाली हों। कमजोर संस्थाएं और संयुक्त दलो की राजनीति, बहुधा, पूर्व स्थिति को ही प्रोत्साहन देती है। सरकारें उतना काम नही करती जितना कि बिगाडती हैं।

यहां एक और बात कहना जरूरी है। आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग के बारे मे अब तक सामान्य रूप से ही विचार किया गया है। इस वर्ग के किसी एक भाग, राजनीतिक अफसरशाही, सैनिक या ऐसे ही अन्य पक्ष, पर विशेष रूप से बल नही दिया गया। अमरीकी विद्वानो की यह वृत्ति है कि वे किसी एक राजनीतिक प्रणाली के विभिन्न 'अभिनेताओं', राजनीतिक दल, अफसरशाही, विशेष हितों वाले दल, सेना, को पृथक संगठनात्मक सत्ता मानते हैं। यानी इन्हे विभिन्न विशिष्ट वर्गों के समूह माना जाता है जो अलग अलग विधियों, नियमो और उद्देश्यो को संस्थात्मक बनाना चाहते हैं। नतीजा यह होता है कि अक्सर राजनीतिक घटनाओं को विभिन्न संस्थाओ और उनकी संगठनात्मक शक्ति के संदर्भ मे देखने का प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के लिए अफसरशाही या केंद्रीय सत्तावाद, इस प्रणाली का प्रमुख अंग बन जाता है क्योंकि यह

सुसगठित होता है। सेना तभी हस्तक्षेप करती है जब सभी राजनीतिक संस्थाएं या तो विफल हो चुकी होती हैं या पूरी तरह छिन्न भिन्न हो जाती हैं। इस मत में, नए समाज में विशिष्ट वर्गों के बीच भेदों को बहुत बढ़ा चढ़ा दिया गया है। जो विशिष्ट वर्ग के लोग राजनीतिक केंद्र में महत्वपूर्ण पदों पर पहुंचते हैं उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है, और प्रणाली की विभिन्न संस्थाएं उन्हीं के निर्णयों के अनुसार अपने आप को ढालने में प्रयत्नशील रहती हैं। नए राज्यों की राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख प्रयत्न, सत्ता के अधिकारों को सत्तारूढ़ विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों से नीचे की ओर बढ़ाते जाना होता है। केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति, समाज में अपनी सत्ता प्रतिष्ठित करने और इसका व्यापक पालन कराने के प्रयत्न करते हैं। ये व्यक्ति यदि चाहें तो इस प्रक्रिया को आगे चलाने के लिए कई अलग अलग संस्थाएं बनाते हैं।

इस तरह के संस्था निर्माण का केंद्रबिंदु है सरकारी सत्ता। जो विशिष्ट व्यक्ति सरकारी पदों पर होते हैं उनमें समाज को अच्छे परिणाम और सेवाएं उपलब्ध कराने की कम से कम कुछ क्षमता तो होती ही है। यह सत्ता होने से, व्यावहारिक रूप में, असगठित विशिष्ट वर्गों और दलों को एक ढांचा दिया जा सकता है जिससे वे सरकार के आसन तक पहुंचने या उसे नियंत्रण में लेने की दिशा में संयुक्त संस्था के रूप में विकसित हो सकते हैं। महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर नियंत्रण के कारण, सत्ताधारी विशिष्ट व्यक्ति यदि चाहें तो एक राजनीतिक दल का गठन कर सकते हैं, ठीक उसी तरह, जिस तरह इस शताब्दी के प्रारंभ में अमरीकी नगरों में राजनीतिक दल बने थे। ये विशिष्ट लोग, सेना या अधिकारी तंत्र की संस्थाओं का समर्थन करने वाले दलों को अस्तित्व में आने से भी रोक सकते हैं। किसी अंश तक इस तरह के निर्णयों से पता चलता है कि निश्चित विशिष्ट व्यक्तियों का पिछला जीवन और सामाजिक परि-स्थितियां क्या रही हैं। इस तरह के निर्णय यह भी बताते हैं कि नए राज्यों की राज-नीति के बारे में विशिष्ट वर्ग के विभिन्न दृष्टिकोण क्या हैं।

संक्षेप में, अल्पविकसित राज्यों की राजनीति विभिन्न संगठित दलों और संस्थाओं के परस्पर संघर्ष का मसला नहीं है। बल्कि यह दलों, गठबंधन, चालों और व्यक्तिगत प्रभाव की राजनीति है।

आशावाद का ह्रास
विकास की राजनीति से सुव्यवस्था की राजनीति तक

राजनीतिक विकास के बारे में जो भी सैद्धांतिक सामग्री है उसमें अधिकांश में, कम से कम परोक्ष रूप से, यही कहा गया है कि विकास और आधुनिकीकरण का होना अनिवार्य है। लेकिन अफ्रीका और एशिया के देशों के विशेष अध्ययन से यह देखने

को मिला है कि इनकी प्रवृत्तियों में कुछ स्पष्ट और निश्चित परिवर्तन आया है। बार बार गृहयुद्ध होना, न सुलझने जैसी प्रतीत होने वाली आर्थिक समस्याएं, और संस्थात्मक अस्थिरता, इन सभी बातो से उस आशावाद पर कुठाराघात हुआ है जो 1950 के दशक, और 1960 के दशक के प्रारंभिक वर्षों मे, राजनीतिशास्त्र के वैज्ञानिकों ने व्यक्त किया था। फिर भी विशेष घटनाओं पर बात करते हुए जिन सिद्धांतों का उल्लेख होता है वे पक्षपातपूर्ण हैं और इनमे अक्सर अस्थिरता के सही कारणों का पता नहीं लग पाता। राजनीतिशास्त्र के वैज्ञानिकों मे बढते हुए निराशावाद के बावजूद, सामाजिक परिवर्तन, और संस्थाओं के बारे में व्यक्त की गई उनकी धारणाओं से नए राज्यो की राजनीति को समझने मे कठिनाई होती है। इस संबंध मे एक विद्वान ने लिखा है :

> 'बहुधा नए राज्यों की राजनीति का विवरण इस प्रकार दिया गया है मानो इरादे ही तथ्य हो, और शब्द ही सत्यता हो। अफ्रीका में राजनीतिक प्रणालियों के गुण विशेष उस चित्र पर आधारित है, जिसे दलों के नेतागण विश्व के सामने प्रस्तुत करते हैं।'[21]

इसके परिणामस्वरूप, दलगत संस्थाओं को अत्यन्त आधुनिक संगठनात्मक हथियार, और अधिकारी तंत्र को 'लौह कंकाल' आदि कहा गया है। अल्पविकसित राज्यो की अस्थिरता को देखते हुए इन धारणाओं को समझना कठिन है।

राजनीतिशास्त्र के वैज्ञानिकों के लिए सुव्यवस्था की राजनीति के बारे में कोई विचारधारा बनाना चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो, लेकिन नए राज्यों के आधुनिकतावादी विशिष्ट वर्ग को, धारणाओं मे परिवर्तन के बारे मे भलीभाति ज्ञान है। वे शेष विश्व के सम्मुख चाहे जैसी भी तस्वीर प्रस्तुत करने के प्रयत्न करे फिर भी सत्तारूढ़ विशिष्ट वर्ग बहुत पहले से यह जानते हैं कि इनके सीमित साधन और उनकी खंडित संस्थाएं अल्प विकास की समस्या को अस्थाई नही, बल्कि एक पुराने स्थाई रोग जैसा बना रहे हैं। ऐसी स्थिति मे सत्ता मे बने रहना एक अत्यत कठिन कार्य हो गया है और विशिष्ट वर्ग अब विकास और आधुनिकीकरण की बजाय अपना अस्तित्व बनाए रखने की ओर ही अपना ध्यान केंद्रित कर रहा है। नए राज्यो की संस्थाएं जो कुछ कर सकती है कर रही हैं। वे ज्यादा से ज्यादा यही कर सकती है, कि अपना अस्तित्व बनाए रखें।

विकास अब भी एक दुर्बोध और अग्राह्य विचार ही बना हुआ है। कमजोर संगठनो, बदलती हुई मान्यताओं और अनिश्चित स्थितियो की राजनीतिक प्रणाली

मे सुव्यवस्था का मतलब केवल अस्तित्व में बने रहना हो गया है, चाहे यह सुव्यवस्था क्षणिक ही क्यों न हो। जैसे तैसे स्थिति से पार पा जाना ही वहुत वड़ी सफलता समझा जाने लगा है।

संदर्भ

1. यह समवत. सवसे ज्यादा प्रचलित परिभाषा है. (जो इस परिभाषा का प्रयोग करते हैं वे आमतौर पर 'राजनीतिक विकास' और 'राजनीतिक आधुनिकीकरण' को समानार्थक और ममान रूप से प्रयोग मे लाए जाने वाले शब्द मानते हैं). उदाहरण के लिए देखिए जेम्स एम० कोलमैन (सपादक) एजूकेशन ऐंड पालिटिकल डेवेलपमेंट मे जेम्स एस० कोलमैन की *'भूमिका', (प्रिस्टन : प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965); पृष्ठ 15; लूसियन पाई : आफेक्टस* आफ पालिटिकल डेवेलपमेंट (वोस्टन · लिटिल, ब्राउन ऐंड कपनी, 1966), पृ० 45-48; गैब्रील आल्मड और जी० वी० पावेल. कपेरेटिव पोलिटिक्स: ए डेवेलपमेंटल एप्रोच (बोस्टन लिटिल, ब्राउन ऐंड कपनी, 1966), पृ० 299-332; और क्लाड ई० वेल्व जूनियर (स) : 'दि कपेरेटिव स्टडी आफ पालिटिकल माडर्नाइजेशन' देखिए क्लाड ई० वेल्व जूनियर की पालिटिकल माडर्नाइजेशन (वैल्माट, कैलिफोर्निया; वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कपनी 1967) पृ० 1-16.
2. उदाहरण के लिए देखिए सैमुअल हटिंगटन . पालिटिकल आर्डर इन चेंजिंग सोसाइटीज (न्यू हैवन · येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), एस० एन० ईसेंस्टाट : 'इस्टीट्यूशनलाइजेशन ऐंड चेंज' अमरीकन सोशियोलाजीकल रिव्यू, 24, (अप्रैल 1964), 235-247 . और एस० एन० ईसेंस्टाट · सोशल चेंज, डिफरेनसिएशन ऐंड इवोल्यूशन, अमरीकन सोशयोलाजीकल रिव्यू-24 (जून 1964) 375-387.
3. विशेष रूप से देखिए, लूसियन डब्ल्यू, पाई : *'दि नानवेस्टर्न पालिटिकल प्रोसेस'*, दि जर्नल आफ, पालिटिक्स, XX तीन (अगस्त 1958), 468-486; ऐसा ही एक और महत्वपूर्ण अध्ययन है, फ्रेड डब्ल्यू० रिग्स, 'एगरेरिया ऐंड इडस्ट्रीया' विलियम जे० सिफन (सपादित) : ट्वार्ड दि कपेरेटिव स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेशन (ब्लूमिंगटन : इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस 1959).
4. पश्चिमी देशो मे सामाजिक परिवर्तन को किस प्रकार समझा गया है इसके श्रेष्ठ अध्ययन के लिए देखिए, रावर्ट निमवेट · मोशल चेंज ऐंड हिस्ट्री (लदन: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969).
5. मैनफ्रेड हालपर्न . 'ट्वार्ड फरदर माडर्नाइजेशन आफ दि स्टडी आफ न्यू नेशंस', वर्ल्ड पालिटिक्स, XVII, 1 (अक्तूबर 1964), 173.
6. उदाहरण के लिए देखिए डेविड ई० ऐप्टर : घाना इन ट्रांजीशन, (न्यूयार्क : ऐथेनियम, 1963).
7. देखिए लायड साई० रूडाल्फ और सूसन होवर रूडाल्फ: दि माडर्निटी आफ ट्रेडीशन (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967), विशेषकर भाग एक : और जोसफ आर० गसफील्ड : 'ट्रेडीशन ऐंड माडर्निटी : मिसप्लेस्ड पोलैरिटीज इन दि स्टडी आफ सोशल चेंज', अमरीकन जर्नल आफ सोशयोलाजी, LXXII, 4 (1966), 351-362.
8. इस तरह का विश्लेषणात्मक लेखन निस्बेट मे देखा जा सकता है, विशेषकर पृ० 284-287.
9. यह हंटिंगटन, ईसेंस्टाट, और आल्मड तथा पावेल के लेखो मे सवसे अधिक स्पष्ट है.
10. एम० एन० ईसेंस्टाट . माडर्नाइजेशन : प्रोटेस्ट ऐंड चेंज (ऐंगलवुडक्लिफ्स एन० जे० : प्रेंटिस हाल, 1966).

11. 'हटिंगटन ने राजनीतिक विकास को आधुनिकीकरण से अलग रखने की दिशा में महत्वपूर्ण योग दिया है. आधुनिक और आधुनिकीकरण वाले राज्य, हटिंगटन के अनुसार, अपनी क्षमताओं को खोकर (ह्रास) और इन्ही क्षमताओ को प्राप्त करके भी (विकास) बदल सकते है दूसरे शब्दो में कहा जाए तो विकास, अपरिवर्तनीय नही है. लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिकीकरण, हटिंगटन के विश्लेषण के अनुसार, पूर्णरूप से अपरिवर्तनीय है : और जिन परिस्थितियो के कारण ह्रास होता है वे स्वय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है 'सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन राजनीतिक चेतना लाता है, राजनीतिक मागो मे वृद्धि करता है, और राजनीतिक गतिविधियो मे अधिकाधिक व्यक्तियो को शामिल करता है यह परिवर्तन परपरागत राजनीतिक सस्थाओं की प्रगति को रोकते है इनसे राजनीतिक एसोसिएशनो और नई राजनीतिक सस्थाओ के निर्माण की समस्या बहुत जटिल बन जाती है' (पृ० 5).

12. उदाहरण के लिए देखिए हटिंगटन

13. सी० एस० व्हिटेकर जूनियर 'ए डिसरिद्मिक प्रासेस आफ पालिटिकल चेंज' वर्ल्ड पालिटिक्स, XIV, 2 (1967), 190-217

14. 'उप सरचनात्मक' परिवर्तन और बहुधा प्रस्तुत होने वाले बाह्य विरोधाभासो के सबध मे श्रेष्ट अध्ययन के लिए देखिए एफ० जी० बेली . कास्ट, ट्राइब ऐंड नेशन, (मैनचेस्टर, इग्लैंड मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960).

15. 'विशिष्टतावाद' की सबसे अच्छी परिभाषा है किसी जनसमूह द्वारा अपने अस्तित्व और हितो को अत्यत स्थानीय, और विशेष शब्दो मे व्यक्त करने की प्रवृत्ति ज्यादातर इस शब्द को परपरा का समानार्थक मानकर प्रयोग मे लाया जाता है लेकिन जैसा पहले कहा गया है, तथाकथित आधुनिक दल भी परपरावादी समूहो से कम विशिष्टतावादी नही है.

16. एडवर्ड शिल्स : 'आन दि कपेरेटिव स्टडी आफ दि न्यू स्टेट्स', क्लिफर्ड गीर्त्स ओल्ड सोसायटीज ऐंड न्यू स्टेट्स (न्यूयार्क . फ्री प्रेस, 1963), पृ० 22

17. इस तर्क की विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए जेरल्ड ए० हीगर · 'पालिटिक्स आफ इटीग्रेशन : कम्यूनिटी, पार्टी, ऐंड इटिग्रेशन इन पजाब' (पी-एच० डी० डिसर्टेशन : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो, 1971), भूमिका.

18. दलीय विभाजन के सदर्भ में देखिए एम० जी० स्मिथ 'आन सैगमेंट्री लिनिऐज सिस्टम', जर्नल आफ दि रायल एन्थ्रोपोलाजीकल इन्स्टीट्यूट-86 (1956), 39-80 · मायर फोर्टस और ई० ई० ईवास प्रिचर्ड : अफ्रीकन पालिटिकल सिस्टम (लदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1940); और ए० डब्ल्यू साऊथाल : एलूर सोसायटी (कैंब्रिज इग्लैंड : डब्ल्यू हैफर ऐंड एस लिमिटेड, 1953).

19. केंद्र और बाह्य परिधि के बारे में विचारो का अध्ययन, एडवर्ड शिल्स की पुस्तक, 'सेंटर ऐंड पेरीफरी', दि लाजिक आफ पर्सनल नालेज : एसेज प्रेजेंटेड टू माइकल पोलान्यी (लंदन : रूटलेज ऐंड कीगनपाल, 1961), पृ० 117-130 मे किया गया है.

20. लियोनार्ड बिंडर ईरान : पालिटिकल डेवेलपमेंट इन ए चेंजिंग सोसायटी (बरकले ऐंड लास-ऐंजिल्स : यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1964), पृ० 36

21. हैनरी बिऐनन : तजानिया : पार्टी ट्रासफारमेशन ऐंड इकानामिक डेवेलपमेंट (प्रिस्टन : प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970), पृ० 5

2

राष्ट्रवाद और उसकी देन

1950 के दशक तक राष्ट्रवाद का अध्ययन मुख्यत. इतिहासकारों का ही विषय था। ऐसा प्रतीत होता था कि राष्ट्रवाद इतिहास के एक खास युग की घटना थी जिसकी समाप्ति होने जा रही थी। निश्चित प्रकार के राष्ट्रवाद उस समय के बौद्धिक व्यक्तियो की अनूठी प्रतिक्रियाओं के रूप में देखे गए और इसी कारण इनकी ओर केवल इतिहासकारों की रुचि रही। पिछले दो दशकों में राष्ट्रवाद का अध्ययन केवल ऐतिहासिक महत्व का अध्ययन ही नही रहा बल्कि अब यह इससे बड़े दायरे में पहुंच गया है। अफ्रीका और एशिया मे राष्ट्रवादी राज्यों के तेजी से उदय के कारण राष्ट्रवाद को ऐसी मान्यता मिली है जो फ्रांसीसी क्रांति के बाद से किसी को नही मिली।

इस विषय पर किए गए कई अध्ययनो के बावजूद राष्ट्रवाद और इससे संबद्ध राष्ट्रीयता का सिद्धात अग्राह्य ही बना हुआ है। बुद्धि को चकरा देने वाले विचारों और परिभाषाओ के आधार पर राष्ट्रवाद के आधुनिक अर्थ के बारे में दो बातें सामान्य रूप से कहना सभव है। पहली यह कि राष्ट्रवाद को आधुनिकतावाद और उसके परिणामो के समरूप समझा गया है। राष्ट्रवाद को पुरानी व्यवस्था को भंग करने वाला माना जा रहा है। अब इसका कारण या तो आधुनिक युग के विकास का सूत्रपात करने वाले विचारो का प्रसार हो सकता है या उन परिस्थितियों का प्रसार, जिन्हें आधुनिकता से संबद्ध किया जाता है, अर्थात, साक्षरता का विस्तार, मुद्रा की अर्थव्यवस्था, बढते हुए संचार साधन, और नगरों का विकास। दूसरी बात यह कही जा सकती है कि चूकि राष्ट्रवाद को पुरानी व्यवस्था भंग करने वाला माना जा रहा है इसलिए इसे पुरानी व्यवस्था के अवसान के प्रति भावनात्मक

प्रतिक्रिया अधिक समझा जा रहा है न कि कुछ निश्चित विचारों के प्रसार का परिणाम।

इन दोनो ही बातो पर इस अध्याय मे विस्तृत रूप से विचार किया जाएगा। ये बाते राष्ट्रवाद के न केवल आधुनिक अर्थ को विशेषकर इसके गैर पश्चिमी रूपों को समझने के लिए बल्कि वर्तमान राष्ट्रवादी आंदोलनों और इनसे उपजने वाली राजनीतिक प्रणालियो को समझने के लिए भी मूल महत्व की है।

राष्ट्रवाद का पश्चिमी मत

पुराने जमाने से ही पश्चिमी देशो मे राष्ट्रवाद को ऐसी धारणाओ का एक समूह माना गया है, जिनमे मूल विचार राष्ट्र-राज्य पर केंद्रित है। इसीलिए राष्ट्रवाद का अध्ययन, मुख्यत. किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो के समूह के विचारो का, अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियो तक पहुचने की प्रक्रिया का अध्ययन रहा है।[1] कुछ एक सिद्धातो के रूप मे राष्ट्रवाद को उन विचारो के बौद्धिक इतिहास के प्रकाश मे समझना सभव था। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि सिद्धातो के रूप मे यह राष्ट्रवाद किसी एक सामाजिक वर्ग की सीधी सादी भावनाओ से कुछ अधिक था।[2] राष्ट्रवाद का सबध स्वय राष्ट्र के स्वरूप से था और साथ ही यह, प्रभुसत्ता, शासनसत्ता और व्यक्तिगत अधिकारो के वैकल्पिक विचारों से भी सबद्ध रहा। राष्ट्रवाद को, न्यायपूर्ण राजनीतिक सुव्यवस्था के व्यापक प्रश्न मे संबद्ध माना गया और व्यक्तियों को राष्ट्रों की इकाई इस सदर्भ में समझा गया कि वे अपेक्षित न्यायपूर्ण सामाजिक सुव्यवस्था को भलीभाति समझते हैं और उसमें साझीदार हैं।

हाल के वर्षों में राष्ट्रवाद के सबध मे इस परपरागत धारणा की यह कहकर कडी आलोचना हुई है कि इसने राष्ट्रवाद के विचार को बहुत दुर्बोध बना दिया है। यह तर्क दिया गया है कि राष्ट्रवाद की उपरोक्त धारणा के अनुसार, समाज मे इसकी नीव ठोस रूप नही ले पाई।[3] प्रतीत होता था कि राष्ट्रवाद की धारणा राज्यसबधी दर्शन से जुड़ी हुई है, परपरागत दृष्टिकोण, राष्ट्रवाद के बाह्य रूप और इसमे सदा जुडे हुए तीव्र सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंधो का कोई उचित स्पष्टीकरण नही दे पाया।

राष्ट्रवाद के बारे में परपरागत धारणाओं के प्रति यह प्रतिक्रिया रही है कि व्यावहारिक प्रमाणो के साथ उन परिस्थितियो को समझने के प्रयत्न किए गए जिनमें जनसमूहों ने राष्ट्र-राज्यो की स्थापना की।[4] कार्ल ड्यूश ने आधुनिकीकरण और उसकी सहगामी विस्तृत हो रही संचार व्यवस्था पर बल देते हुए कहा है कि

राष्ट्रीयता को सबसे अच्छी तरह इस संदर्भ मे समझा जा सकता है कि 'बहुत सारे विषयों पर कितने प्रभावशाली ढंग से एक बड़े सामाजिक समूह के सदस्यों के साथ संपर्क किया जा सकता है।'[5] ड्यूश ने सामाजिक भूमिकाओं, आदतों और संचार सुविधाओं के एक दूसरे की पूरक बनने के संदर्भ मे 'जनता' के विकास का नक्शा तैयार किया और अपनी भूमि पर इस जनता की कितनी प्रभुसत्ता है इसके आधार पर 'राष्ट्र' की परिभाषा बनाई।[6] तो इस प्रकार राष्ट्रवाद, जनता की, प्रभुसत्ता की 'इच्छा' है।[7] राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता, बदलते हुए सामाजिक पर्यावरण का परिणाम है।

राष्ट्रवाद मे सामाजिक परिवर्तन की भूमिका को मान्यता दिया जाना, ड्यूश और उनके विचारों से सहमत होने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए पूर्ण रूप से नई बात नहीं थी। राष्ट्रवाद के अधिकांश विद्वान इतिहासकारों ने राष्ट्रवादी युग में 'उभरते हुए जनसमूहों' की भूमिका को माना है।[8] लेकिन नई बात यह है कि *सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्रवाद की परिभाषा ही बन गया है। सामाजिक परिवर्तन,* विशेषकर आधुनिकीकरण, और राष्ट्रवाद को, एक दूसरे का अविभाज्य अंग माना गया है। प्राचीन विद्वानों ने दार्शनिकों और राजनीतिज्ञों को सही राजनीतिक व्यवस्था और उसमें मनुष्य के स्थान के संबंध मे, एक दूसरे के साथ वाद-विवाद में उलझते देखा और आज का विद्वान राष्ट्रवाद को, विचारों और धारणाओं का समूह उतना नहीं मानता जितना कि परिवर्तन की प्रक्रिया से उपजी एक भावना समझता है। वास्तव मे राष्ट्रवाद तो परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है। यदि राष्ट्रवाद किसी एक समुदाय मे सदस्यता की परिभाषा देता है, *'हम कौन हैं?'* इस प्रश्न मे 'हम' की परिभाषा, तो यह परिभाषा राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था की साधारण धारणा के संदर्भ मे नहीं है बल्कि सर्वसाधारण को सामाजिक परिवर्तन की देन के संदर्भ मे है। इसलिए राष्ट्रवाद को समझने में यह नहीं देखना है कि इस शब्द मे क्या है। महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं कि लोगों का विश्वास 'किस बात' मे है बल्कि यह कि इसमे 'किसका' विश्वास है। किसी एक राष्ट्रवाद द्वारा प्रतिपादित विचार, उस भावना पर आधारित कार्यक्रमों का संबद्ध रूप है, जो परिवर्तित सामाजिक, और इसलिए, मनोवैज्ञानिक वातावरण मे उपजती है। आधुनिक मत यह है कि राष्ट्रवाद स्वयं को आधुनिक बनाने की भावनात्मक प्रतिक्रिया है।

गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद और पश्चिम

आधुनिकीकरण और राष्ट्रवाद के बीच का संबंध, गैर पश्चिमी क्षेत्रों में राष्ट्रवाद के अध्ययन मे कहीं ज्यादा रहा है। राष्ट्रवाद के पहले के अध्ययनों मे, गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद को पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रवाद से निश्चित रूप से भिन्न माना गया और

इसमें एशिया और अफ्रीका के नए राष्ट्रों की तथाकथित 'कृत्रिमता' पर विशेष जोर दिया गया। लेकिन हाल के अध्ययनों मे इस तरह के भेदभाव कम किए गए हैं। जहां गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद को आमतौर पर इसके उद्गम के क्षेत्रों और संस्कृतियों के संदर्भ मे, और इसके समकालीन स्वरूप के संदर्भ मे देखा जाता है, वहा इसे मूलत. पश्चिमी राष्ट्रवाद जैसा ही माना गया है। जैसा कि रूपर्ट ऐमर्सन ने लिखा है :

> राष्ट्रवाद जहा कही भी उभरता है वहा यह वास्तव मे उन शक्तियों की प्रतिक्रिया का परिणाम है जिन्होने हाल की शताब्दियों मे पश्चिम मे क्रांति पैदा की और विश्व के कोने कोने मे एक के बाद एक लहर के रूप में पहुंच गई।[9]

ऐमर्सन ने जिस क्रातिकारी शक्ति का उल्लेख किया है वह स्वय आधुनिकीकरण ही है। आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे 'पुरानी सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक मान्यताएं टूटती हैं' और उनकी जगह नई मान्यताए जन्म लेती हैं।[10] इस प्रकार किसी एक तरह के राष्ट्रवाद के विकास को इसी प्रक्रिया के अनुसार समझा जा सकता है। अफ्रीकी राष्ट्रवाद के बारे में लिखते हुए जेम्स एस० कोलमेन ने 'राष्ट्रवाद का मनोविज्ञान' का उल्लेख किया है, जो 'अस्तित्व की चेतना या पूर्वस्थिति मे विकल्पों की संभावना के साथ उपजता है। यह मानसिक स्थिति पश्चिमी शिक्षा की देन है।'[11] डेनियल लरनर ने मध्य पूर्व मे राजनीतिक विकास के अध्ययन में 'एक गतिशील व्यक्तित्व' के उदय का उल्लेख किया है, जो बहुत तीव्र और व्यापक नगर विस्तार, साक्षरता और संचार से उपजा है, और जिसमे अपने आपको बदलते हुए वातावरण के अनुसार ढालने की क्षमता है।[12]

इस मूल तर्क पर हाल के वर्षों में काफी विस्तारपूर्वक लिखा गया है। आधुनिकीकरण के 'विशिष्ट लोकाचार' यानी राष्ट्रवाद को, बहुत से लोग अति आधुनिकतावादियो की विचारधारा मानते हैं। इन अति आधुनिकतावादियो में वे नए सामाजिक वर्ग आते हैं जो पश्चिमी प्रभाव का परिणाम हैं।[13] राष्ट्रवाद को आधुनिकीकरण के और भयावह परिणामो के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया भी कहा गया है। जैसा कि लुसियन पाई का कहना है :

> यह (वह अवधि जिसमें आधुनिकीकरण अपना प्रभाव जमाना शुरू करता है) व्यक्तिगत असुरक्षा का समय है, क्योंकि करोड़ो लोगों को अपनी अपनी जीवन-पद्धति में भयंकर परिवर्तन करने पर बाध्य होना पड़ता है।···· पुरानी और जानी पहचानी जीवनधारा मे अलग हो जाने की पीडा और कष्ट झेलने

के साथ साथ उन्हे अत्यंत मूल मानवीय समस्याओं का सामना भी करना पडता है। ये समस्याएं हैं व्यक्ति के अपना अलग अस्तित्व और व्यक्तिगत संपूर्णता बनाए रखने की। सबसे बड़ी बात यह है कि पुरानी व्यवस्था ऐसी है जिससे दोस्त और दुश्मन सभी, अपने स्व को अनूठा बनाए रखने के लिए प्रयोग करते हैं। इसी व्यवस्था का उपयोग उस 'हम' को जीवित रखने के लिए भी होता है जो मानव समाज की विशेषता का मूल है। दूसरी ओर दोस्त और दुश्मन दोनो ही, नवीन को विदेशी मूल की बात समझते हैं।[14]

राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण के तनावो की प्रतिक्रिया है, जो 'सामाजिक असंतुलन से उपजी भावनात्मक उलझनों को निकालने का प्रतीकात्मक द्वार है।'[15]

न केवल राष्ट्रवाद बल्कि राष्ट्रवादी आदोलनों को भी आधुनिकीकरण के संदर्भ मे देखा जा रहा है। जो ऐसे आंदोलनो मे भाग लेते हैं वे परिभाषा के अनुसार लगभग आधुनिक बन चुके हैं और वे राष्ट्रवादी भावनाओं का जोर शोर से प्रचार करते हैं और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी आंदोलनों में शामिल होते हैं। राष्ट्रवादी आदोलन के विकास को, आधुनिकीकरण के प्रसार के साथ साथ बढ़ता हुआ देखा जा रहा है, और राष्ट्रवादी आदोलन आधुनिकता का पोषण स्थल बन जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे आंदोलनों में भाग लेने वाले सभी लोग पूरी तरह आधुनिक बन चुके हैं, या जैसाकि पश्चिमी देश समझते हैं, उसी अर्थ मे निश्चित ही राष्ट्रवादी बन गए हैं। फिर भी आमतौर पर यह तर्क दिया जा रहा है कि राष्ट्रवादी आदोलनों मे भाग लेने वाले लोगों मे, 'अपने ही 'राष्ट्रीय' साथियो और 'राष्ट्रीय' सरकारो के साथ घनिष्ठ सपर्क की बहुत अधिक चेतना है।'[16] राष्ट्रवादी आंदोलन, आधुनिक समाज के धीरे धीरे उदय होने का परिणाम है। यह आदोलन तब और विस्तृत होता चला जाता है जब इसमें आधुनिकता से प्रभावित ज्यादा से ज्यादा लोग शामिल होते जाते हैं। अन्य शब्दों मे, आधुनिकीकरण, राष्ट्रवाद, और राष्ट्रवादी आदोलन एक दूसरे के समानार्थक हो गए हैं।

राष्ट्रवादी आंदोलन के आधुनिकीकरण के बढ़ते हुए प्रभाव के साथ जुडने की बात को, किसी एक राष्ट्रवादी आंदोलन या विभिन्न आदोलनों के बीच कालातर में आने वाले सैद्धातिक मतभेदो के कारणो को स्पष्ट करने के लिए उपयोग मे लाया जाता है। उदाहरण के लिए आमूल परिवर्तन लाने वाले राष्ट्रवाद की लहर, या तुरत स्वाधीनता दिए जाने की उत्कट मांगों के बारे में, अक्सर इन परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए विचार किया जाता है कि इस तरह के आंदोलनों में भाग लेने वाले अधिकाश लोग पश्चिम से कम प्रभावित होते हैं, और इनमे मध्यम वर्ग के

लोगों की संख्या कम होती है। ऐसी ही एक लहर भारत मे 1920 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंदर कई संगठनात्मक सुधारो के बाद आई थी जिसमें लगभग सभी वर्गों के लोगो ने काफी बड़े स्तर पर भाग लिया था।[17] एक और आदोलन गोल्ड कोस्ट (आजकल घाना) में हुआ था, जब मध्यम वर्गीय दल 'दि यूनाइटेड गोल्ड कोस्ट कन्वेंशन' पर, उग्रवादी कन्वेशन पीपुल्स पार्टी, हावी हो गई थी। इस पार्टी में अधिकांश ऐसे लोग थे जो 'प्रारंभिक स्कूलो को छोड़कर' भागे थे और पार्टी मे इन्ही का बोलबाला था। ऐसे व्यक्ति 'माध्यमिक शिक्षा की सीमित प्रणाली से होकर जैसे तैसे न्यूनतम योग्यताए प्राप्त कर सके थे।'[18] मामूली तौर पर आधुनिक आर्थिक और सामाजिक प्रणाली से संबद्ध किए गए थे। परंपरा से कटकर अलग हो जाने और फिर भी आधुनिक समाज में कोई प्रभावशाली भूमिका निभाने के लिए पूरी तरह तैयार न होने के कारण, प्रारंभिक स्कूलो से भागने वाले ये लोग अपने ही अन्य मध्यम वर्गीय साथियों की अपेक्षा, कही अधिक सख्या मे राष्ट्रवाद के आदोलनों मे शामिल होने को बाध्य हुए।

राबर्ट निस्बेट ने राष्ट्रवाद पर टिप्पणी करते हुए लिखा है:

> आधुनिक राष्ट्रवाद को मानव की आस्थाओ के परपरागत ढाचे मे पड़ी उन दरारो से अलग करके नही समझा जा सकता जो आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के छिन्न भिन्न होने से पड़ी और जिनके कारण एक दूसरे से दूर हटने वाले जनसमूहों को एक तरह की मनोवैज्ञानिक रिक्तता का आभास होने लगा।[19]

राष्ट्रवादी आदोलनो के बारे मे किए गए अधिकाश अध्ययनों मे बताया गया है कि इन आंदोलनों के सबंध मे भी यही बात कही जा सकती है। इस तरह के आदोलन आधुनिकीकरण के बराबर फैलते हुए प्रभाव, और राष्ट्रवाद के प्रसार के परिणाम माने जा रहे हैं। इसका सार यह है कि राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण का 'उन्माद' है और राष्ट्रवादी आदोलन इसी उन्माद का व्यावहारिक रूप है।

गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद : एक पुनर्मूल्यांकन

आजकल राष्ट्रवाद को आमतौर पर, और गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद को विशेष रूप मे, जिस तरह का समझा जाता है उसके अनुसार यह साधारण और प्रभावकारी, दोनो ही है। लेकिन कई समस्याएं उठ सकती हैं। एक तो यह कि राष्ट्रवाद के उदय का संबंध आधुनिकीकरण के प्रसार से जोड़ा गया है, और ऐसा लगता है कि इसे चुनौती नही दी जा सकती। फिर भी राष्ट्रवाद को आधुनिकीकरण के परिणामों

के साथ साथ उन्हें अत्यंत मूल मानवीय समस्याओ का सामना भी करना पडता है। ये समस्याएं है व्यक्ति के अपना अलग अस्तित्व और व्यक्तिगत संपूर्णता वनाए रखने की। सबसे बड़ी वात यह है कि पुरानी व्यवस्था ऐसी है जिससे दोस्त और दुश्मन सभी, अपने स्व को अनूठा बनाए रखने के लिए प्रयोग करते है। इसी व्यवस्था का उपयोग उस 'हम' को जीवित रखने के लिए भी होता है जो मानव समाज की विशेषता का मूल है। दूसरी ओर दोस्त और दुश्मन दोनो ही, नवीन को विदेशी मूल की वात समझते है।[14]

राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण के तनावो की प्रतिक्रिया है, जो 'सामाजिक असंतुलन से उपजी भावनात्मक उलझनों को निकालने का प्रतीकात्मक द्वार है।'[15]

न केवल राष्ट्रवाद बल्कि राष्ट्रवादी आदोलनों को भी आधुनिकीकरण के संदर्भ मे देखा जा रहा है। जो ऐसे आंदोलनों में भाग लेते हैं वे परिभाषा के अनुसार लगभग आधुनिक बन चुके हैं और वे राष्ट्रवादी भावनाओं का जोर शोर से प्रचार करते हैं और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी आंदोलनों में शामिल होते हैं। राष्ट्रवादी आदोलन के विकास को, आधुनिकीकरण के प्रसार के साथ साथ वढता हुआ देखा जा रहा है, और राष्ट्रवादी आदोलन आधुनिकता का पोषण स्थल बन जाते है। इसका अर्थ यह नही है कि ऐसे आदोलनों मे भाग लेने वाले सभी लोग पूरी तरह आधुनिक बन चुके है, या जैसाकि पश्चिमी देश समझते है, उसी अर्थ मे निश्चित ही राष्ट्रवादी वन गए हैं। फिर भी आमतौर पर यह तर्क दिया जा रहा है कि राष्ट्रवादी आदोलनो मे भाग लेने वाले लोगों मे, 'अपने ही 'राष्ट्रीय' साथियो और 'राष्ट्रीय' सरकारों के साथ घनिष्ठ संपर्क की बहुत अधिक चेतना है।'[16] राष्ट्रवादी आदोलन, आधुनिक समाज के धीरे धीरे उदय होने का परिणाम है। यह आदोलन तब और विस्तृत होता चला जाता है जब इसमे आधुनिकता से प्रभावित ज्यादा से ज्यादा लोग शामिल होते जाते हैं। अन्य शब्दो मे, आधुनिकीकरण, राष्ट्रवाद, और राष्ट्रवादी आदोलन एक दूसरे के समानार्थक हो गए हैं।

राष्ट्रवादी आंदोलन के आधुनिकीकरण के वढ़ते हुए प्रभाव के साथ जुडने की वात को, किसी एक राष्ट्रवादी आदोलन या विभिन्न आदोलनों के बीच कालातर में आने वाले सैद्धातिक मतभेदो के कारणो को स्पष्ट करने के लिए उपयोग मे लाया जाता है। उदाहरण के लिए आमूल परिवर्तन लाने वाले राष्ट्रवाद की लहर, या तुरंत स्वाधीनता दिए जाने की उत्कट मागों के वारे मे, अक्सर इन परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए विचार किया जाता है कि इस तरह के आदोलनों मे भाग लेने वाले अधिकांश लोग पश्चिम से कम प्रभावित होते हैं, और इनमे मध्यम वर्ग के

लोगो की संख्या कम होती है। ऐसी ही एक लहर भारत मे 1920 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंदर कई संगठनात्मक सुधारों के बाद आई थी जिसमें लगभग सभी वर्गो के लोगो ने काफी बडे स्तर पर भाग लिया था।[17] एक और आदोलन गोल्ड कोस्ट (आजकल घाना) मे हुआ था, जब मध्यम वर्गीय दल 'दि यूनाइटेड गोल्ड कोस्ट कन्वेंशन' पर, उग्रवादी कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी, हावी हो गई थी। इस पार्टी में अधिकांश ऐसे लोग थे जो 'प्रारंभिक स्कूलो को छोड़कर' भागे थे और पार्टी मे इन्ही का बोलबाला था। ऐसे व्यक्ति 'माध्यमिक शिक्षा की सीमित प्रणाली से होकर जैसे तैसे न्यूनतम योग्यताए प्राप्त कर सके थे।'[18] मामूली तौर पर आधुनिक आर्थिक और सामाजिक प्रणाली से संबद्ध किए गए थे। परंपरा से कटकर अलग हो जाने और फिर भी आधुनिक समाज मे कोई प्रभावशाली भूमिका निभाने के लिए पूरी तरह तैयार न होने के कारण, प्रारंभिक स्कूलो से भागने वाले ये लोग अपने ही अन्य मध्यम वर्गीय साथियों की अपेक्षा, कही अधिक सख्या मे राष्ट्रवाद के आदोलनो मे शामिल होने को बाध्य हुए।

राबर्ट निस्बेट ने राष्ट्रवाद पर टिप्पणी करते हुए लिखा है:

> आधुनिक राष्ट्रवाद को मानव की आस्थाओ के परंपरागत ढाचे मे पडी उन दरारो से अलग करके नही समझा जा सकता जो आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के छिन्न भिन्न होने से पड़ी और जिनके कारण एक दूसरे मे दूर हटने वाले जनसमूहों को एक तरह की मनोवैज्ञानिक रिक्तता का आभास होने लगा।[19]

राष्ट्रवादी आंदोलनो के बारे में किए गए अधिकाश अध्ययनो मे बताया गया है कि इन आंदोलनों के संबंध मे भी यही बात कही जा सकती है। इस तरह के आदोलन आधुनिकीकरण के बराबर फैलते हुए प्रभाव, और राष्ट्रवाद के प्रसार के परिणाम माने जा रहे हैं। इसका सार यह है कि राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण का 'उन्माद' है और राष्ट्रवादी आदोलन इसी उन्माद का व्यावहारिक रूप है।

गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद: एक पुनर्मूल्यांकन

आजकल राष्ट्रवाद को आमतौर पर, और गैर पश्चिमी राष्ट्रवाद को विशेष रूप से, जिस तरह का समझा जाता है उसके अनुसार यह साधारण और प्रभावकारी, दोनों ही है। लेकिन कई समस्याएं उठ सकती हैं। एक तो यह कि राष्ट्रवाद के उदय का संबंध आधुनिकीकरण के प्रसार से जोड़ा गया है, और ऐसा लगता है कि इसे चुनौती नही दी जा सकती। फिर भी राष्ट्रवाद को आधुनिकीकरण के परिणामों

की भावात्मक प्रतिक्रिया मात्र समझना, यानी यह प्रतिक्रिया नए सामाजिक वर्गों के उदय, व्यक्तिगत और सामाजिक असुरक्षा आदि के विरुद्ध है,—राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्गों पर पश्चिमी विचारो के प्रभावो तथा इन विचारो के प्रति विशिष्ट वर्ग की प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा करना है। जैसाकि बाद मे तर्क दिया जाएगा, इस तरह की प्रतिक्रियाएं उन राष्ट्रवादी आदोलनों से अलग नही की जा सकती जिन्हें राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग चलाना चाहते हैं।

इससे भी बडी कठिनाई उस हालत मे उत्पन्न होती है जब आधुनिकीकरण, राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आदोलनो को समरूपी मानने की प्रवृत्ति हो। यदि राष्ट्रवादी आदोलन को आधुनिकीकरण के बढते हुए प्रभाव के परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी भावना की व्यापक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है तो स्वाधीनता के बाद अल्पविकसित राज्यों मे राष्ट्रवादी भावना की कमी (जिसकी अक्सर निंदा की गई है) एक प्रकार का रहस्य बन जाती है।

यहा एक विरोधाभास उभरता है। एक ओर तो अल्पविकसित राज्यों मे समकालीन राजनीति के विद्वान, क्षेत्रवाद और विशिष्टतावाद को स्वाधीनता के पश्चात के युग मे इन राज्यो के प्रमुख लक्षण मानते हैं। उधर दूसरी ओर राष्ट्रवाद का विकास, जैसाकि राष्ट्रवादी आंदोलन मे हुआ, स्वाधीनतापूर्व के युग के अध्ययनों मे विशेष स्थान पाता है।

जैसा पहले *अध्याय मे कहा गया, आधुनिक समाजविज्ञानशास्त्रियों मे सामाजिक* परिवर्तन के बारे मे बड़े आदर भाव की वृत्ति नजर आती है। यानी समाजों की केवल एक सामाजिक विशेषता मानी जाती है जिनसे इनका वर्गीकरण होता है ('परंपरावादी', या 'आधुनिक')। परिवर्तन को इस तरह की समाजव्यवस्था का परिणाम कहा जाता है। यह दोनो व्यवस्थाएं कभी कभी एक दूसरे के क्षेत्रों का उल्लघन कर सकती हैं लेकिन अंततः एक व्यवस्था दूसरी व्यवस्था को अपने समक्ष नही पनपने दे सकती।

राष्ट्रवाद का आधुनिकतावादी सिद्धात, सामाजिक परिवर्तन के बारे में यही धारणा लेकर चलता है। यह बात विभिन्न दलीलों से स्पष्ट होती है। इनसे राष्ट्रवाद को, उसके विकास के विभिन्न चरणो मे अच्छी तरह समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक विद्वान ने कांगो की राजनीति का अध्ययन करते हुए 'राष्ट्रवादी आदोलन के विकास के पांच चरण' बताए हैं :

1. प्रारंभिक प्रतिरोध आदोलन

2. मसीही और संहितावादी संप्रदाय
3. नगर दंगे और हिंसा
4. पूर्व राजनीतिक आधुनिक संस्थाएं
5. राजनीतिक दल[20]

व्यावहारिक दृष्टि से, इनमें से प्रत्येक चरण आधुनिकीकरण के बारे मे समाज की प्रतिक्रिया और निश्चित प्रकार के सामाजिक ढाचो का प्रतीक है। प्रारंभिक प्रतिरोध आदोलन, विदेशी शक्तियो की आक्रामक गतिविधियो के प्रति स्थाई परपरागत प्रणाली की प्रतिक्रिया है। परपरागत सामाजिक ढाचों के छिन्न भिन्न हो जाने से, किसान विद्रोह और धार्मिक तथा साप्रदायिक समूहो के विद्रोह, नगर दंगो और हिंसा की घटनाओं के लिए आधार तैयार हो जाता है। धीरे धीरे समाज का नया केंद्र बनता है और उसका विस्तार होने लगता है। यह बात नजर आती है पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित विशिष्ट वर्ग की बढ़ती हुई संख्या, और नई 'राष्ट्रीय' सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओ से—जिससे राष्ट्रवाद अंतिम चरण में पहुंच जाता है। यह अंतिम चरण है राजनीतिक संस्थाओ का गठन जो अंत मे राष्ट्रवादी राजनीतिक दल बन जाती है। परंपरागत क्षेत्रवादी सस्थाएं धीरे धीरे विलुप्त हो जाती है, और उनका स्थान राष्ट्रीय संस्थाएं ले लेती हैं।

राष्ट्रवाद के विकास के इस विवरण मे, सामाजिक परिवर्तन के, आधुनिकीकरण लाने वाले परिणामों के बारे में न केवल बढा चढ़ाकर कहा गया है बल्कि सामाजिक परिवर्तन के अलग अलग अनुपात में पड़ने वाले उस प्रभाव, चाहे यह आधुनिकीकरण लाने वाला ही क्यों न हो, को भी अनदेखा किया गया है, जो किसी प्रदेश मे रहने वाले लोगों के विभिन्न वर्गों पर पड़ता है। प्रारभिक प्रतिरोध आदोलन, धार्मिक संप्रदाय, शहरी दंगे और हिंसा, और पूर्व राजनीतिक संस्थाएं, किसी एक प्रदेश में एक साथ, एक समय हो सकती हैं। राष्ट्रवादी आंदोलन, एक राष्ट्रीय सामाजिक प्रणाली और राष्ट्रीय चेतना की लहर की शुरुआत शायद इतनी नही करते जितना कि शहरी, ग्रामीण, धार्मिक, जातीय, और राष्ट्रीय स्तर पर विरोध का संचालन करते हैं।

राष्ट्रवादी आंदोलन के स्रोत

इस पुस्तक के अगले भागों मे राष्ट्रवाद के स्रोतों के बारे मे लिखा गया है। एक अर्थ में इन्हें 'स्रोत' नही कहा जा सकता। जैसा काफोर्डयंग ने कहा है, यह 'स्रोत' राष्ट्रवाद के प्रारंभिक चरण हैं। आधुनिकीकरण के प्रभाव मे भिन्नता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न विरोध आंदोलन लगभग एक ही समय हुए।

हा, यह हो सकता है किसी एक प्रकार का विरोध आंदोलन औपनिवेशिक युग के शुरू में हुआ हो (उदाहरण के लिए धार्मिक विरोध)। इन विरोध आंदोलनों को 'स्रोत' इसलिए भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें भाग लेने वालों को अनिवार्यतः राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सोचने पर बाध्य होना पड़ा। फिर भी एक तरह से इन्हें 'स्रोत' कहा जा सकता है क्योंकि इनसे राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग को वह सामाजिक शक्ति प्राप्त होती है जिसका वे उपयोग कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी आंदोलन, उतना सुसंगठित जन आंदोलन नहीं है, जितना कि यह क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, और सामाजिक परिवर्तन के कारण विभक्त समाज में, अलग अलग आंदोलनों का मिलाजुला रूप है। राष्ट्रवादी आंदोलन शुरू करने में राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग ने एक तरह की काल्पनिक प्रवृत्ति का निर्माण किया है और इसके लिए उन्होंने स्थानीय तौर पर शुरू होने वाले विरोध आंदोलनों और दलों को राष्ट्रवादी उद्देश्यों के पीछे लगाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयत्न किए हैं। जरूरी नहीं है कि यह राष्ट्रवादी उद्देश्य सभी लोगों को स्वीकार्य हों। ऐसा करते हुए राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग ने स्वाधीनता की मांग, और स्वाधीनता संघर्ष के नेता का अपना दर्जा उचित बताने का प्रयत्न किया है।

शहरी राजनीति और विरोध

अफ्रीका और एशिया में राजनीतिक गतिविधि के प्रथम लक्षण आमतौर पर नगरों और कस्बों में देखे गए। लगभग अनिवार्यतः इन गतिविधियों का संचालन और नेतृत्व पश्चिमी प्रभाव में आए स्थानीय विशिष्ट वर्ग, नव मध्यम वर्ग, ने किया। अधिकांश शहरी संस्थाओं के साथ बहुत सारी संस्थाएं संपर्क में आ गईं क्योंकि इनके सदस्य, एक से अधिक संस्थाओं के सदस्य थे।

अपने अपने वर्ग के हित की भावना ने अधिकांश संगठनात्मक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया। सरकारी नीतियों ने जाने अनजाने, पश्चिमी प्रभाव वाले विशिष्ट वर्ग की संख्या और बढ़ा दी साथ ही उनके लिए नौकरी और प्रगति के अवसर भी कम कर दिए। पाश्चात्य प्रभाव वाले ये विशिष्ट वर्ग धीरे धीरे आत्माभिमानी वर्ग में बदल गए और केवल अपने ही वर्ग के हितों और स्वत्व पर ही ध्यान देने लगे।[21] इसके परिणामस्वरूप अत्यंत भिन्न विचारों और उद्देश्यों वाले संगठन और संस्थाएं बन गईं जो अपने अपने हितों की ही बात करती थीं, व्यापारिक संस्थाएं, सरकारी कर्मचारियों के दल, बुद्धिजीवियों के क्लब, और राजनीतिक संस्थाएं, जैसे कलकत्ता की इंडियन एसोसिएशन, शुरू की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, टांगानिका की अफ्रीकी एसोसिएशन और यंग ट्यूनिशियंस।[22] उनके विधिवत रूप से घोषित उद्देश्य कुछ भी रहे हों, इनमें से अधिकांश दलों ने कई कार्य किए, और कई बार तो वे बौद्धिक

विचार विमर्श वाले दलों के बजाय विरोध आंदोलन चलाने वाले दल बने और फिर दुबारा बौद्धिक दल बन गए। इनके सदस्य आमतौर पर कई संस्थाओं के सदस्य रहते थे। उदाहरण के लिए टांगानिका के एक जिले में राष्ट्रवादी आदोलन के विकास के अध्ययन से पता चला कि स्थानीय टागानिका अफ्रीकी एसोसिएशन के सक्रिय कार्यकर्ता, व्यापारियो की एक सहकारी संस्था और सामाजिक सांस्कृतिक क्लबों से भी घनिष्ट रूप से संबद्ध थे।[23] ऐसे ही उदाहरण भारत, कागो, मोरक्को, ट्यूनीशिया और अन्य स्थानों पर भी देखे जा सकते हैं।[24]

ये मध्यम वर्गीय संस्थाएं कभी तो सक्रिय हो जाती थी और कुछ समय के लिए विरोध आदोलनों का संचालन करती या अदालतो मे याचिकाओं की भरमार कर देती थी, तो कभी बिलकुल निष्क्रिय होकर चुप बैठ जाती थी, जब तक कि कोई नए मामले नही उठ खड़े हुए (ये मामले ऐसे होते थे जिनमें बहुधा नए दल उभरकर आते थे)। व्यापक आर्थिक तथा सामाजिक सुधार लाने के लिए कुछ प्रयत्न किए गए लेकिन आमतौर पर ये दल मुख्यत· अपने अपने वर्गों के हितो की रक्षा तक ही सीमित रहे। आधुनिक सुधारों के लिए अपनी माग के बावजूद यह दल मूल रूप से अपने लिए ही गतिविधियां चलाते थे अर्थात ये विशिष्टतावादी रहे, और केवल स्थानीय समस्याओ तक ही उनके क्रियाकलाप सीमित रहे। यदि भौगोलिक दृष्टि से अपने दायरे से बाहर निकलकर कोई बड़ी संस्था या आंदोलन चलाने के प्रयत्न हुए तो आमतौर पर ऐसे मामलो पर ही ध्यान दिया जाता था जो नए मध्यम वर्ग से संबंध रखते हों जैसे कि सरकारी नौकरियों मे और अधिक अवसरो की माग। पश्चिमी प्रभाव वाले विशिष्ट वर्ग के बारे में एक आम गलत धारणा यह है कि इन्हे परंपरागत समाज से अलग थलग कर दिया गया, वैसे इस वर्ग की तो अपनी कोई नीव ही नही थी।[25] वास्तव मे पश्चिमी प्रभाव वाले विशिष्ट वर्ग ने अपने अपने परंपरागत समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना जारी रखा। इस पर टिप्पणी करते हुए उन्नीसवीं शताब्दी के भारत के इतिहास के संबंध में लिखने वाले एक इतिहासकार ने कहा है :

> 'एक शिक्षित व्यक्ति अपनी जाति और समाज का सदस्य बना ही रहता था और इसलिए वह दोनों तरह की संस्थाओं का सदस्य रहता था। एक संस्था रिश्ते और धर्म पर आधारित होती थी और दूसरी शिक्षा और राजनीतिक विचारधाराओं पर।'[26]

पश्चिमी प्रभाववाले विशिष्ट वर्ग अपरिहार्य तो थे ही लेकिन उनके परंपराओं के बंधनों की दृढ़ता और नई परिस्थितियों मे उनकी सफलता, दोनो के कारण यह

वर्ग अपने अपने परंपरागत समाज में काफी प्रभावशाली ढंग में घुलेमिले रहे।[27] नतीजा यह रहा कि इस विशिष्ट वर्ग ने साम्प्रदायिक बंधनों, जातीय संस्थाएं, कबीले के कल्याण की संस्थाएं, धार्मिक संगठन आदि, पर आधारित संस्थाओं को संगठित करने में महत्वपूर्ण योग दिया।[28]

> टांगानिका वाले पहले उदाहरण के अनुसार ही, टांगानिका अफ्रीकी एसोसिएशन की स्थानीय शाखा में सक्रिय कई विशिष्ट वर्ग वाले लोगों ने एक कबीले की एसोसिएशन सुकूमा यूनियन का संगठन और संचालन किया। इस यूनियन का उद्देश्य 'सुकूमा जाति के लोगों को एक दूसरे का ध्यान रखने और जीवन की कठिनाइयों में एक दूसरे की मदद करने के लिए प्रोत्साहन देना था।'[29]

इन एसोसिएशनों का सदस्य बनने के लिए वहां का परंपरागत निवासी होना आवश्यक था, लेकिन ये संस्थाएं वास्तव में परंपरावादी नहीं थी। यह जरूरी नहीं था कि इन संस्थाओं के नेता वंश के आधार पर चुने जाते हों। इनका चुनाव शिक्षा और योग्यता के अनुसार होता था। ये दल कई तरह के काम करते थे, जैसे अपने ही समाज के अंदर सामाजिक सुधार लाना, या दो पक्षों के बीच झगड़ों में मध्यस्थता करना या नई शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था कराना। ये दल विरोध की गतिविधियों के केंद्रबिंदु के रूप में भी कार्य करते थे। भारत में छोटी जातियों के बीच बनाई गई संस्थाएं अक्सर धार्मिक और सरकारी भेदभाव के विरुद्ध आंदोलन चलाती थीं।[30] सारे अफ्रीका में, विशेषकर पश्चिमी अफ्रीका में इस तरह के विरोध आंदोलन हुए। ऐसी जातीय संस्थाएं आमतौर पर पश्चिमी प्रभाव वाले विशिष्ट वर्गीय लोगों के दबाव में रहती थी। लेकिन अक्सर ये संस्थाएं एक ही जाति के अलग अलग दलों को संगठित करने का काम भी करती थीं।

नगरों और कस्बों में सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियों का उत्साह केवल नए मध्यम वर्ग तक ही सीमित नहीं था। कुछ स्थानों में बहुत कम वेतन और स्थानीय मजदूरों की दयनीय कार्य परिस्थितियों के कारण, मजदूर संगठन की गतिविधियों को काफी बढ़ावा मिला।[31] ज्यादातर तो इस तरह की गतिविधि का प्रोत्साहन मजदूर वर्ग से बाहर के लोगों की ओर से मिला। यह प्रोत्साहन या तो स्थानीय राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों (विशेषकर अफ्रीका में) या यूरोपीय मजदूर संगठनों की ओर से प्राप्त हुआ। यूरोपीय मजदूर [illegible] अफ्रीका में

इन यूनियनों पर ज्यादातर तो कानूनी अंकुश रहता था और मालिको की ओर से इन्हे कोई मान्यता नही थी इसलिए अक्सर वे हड़ताले करती थी। कुछ एक हड़ताले तो बहुत बड़े पैमाने पर करने के प्रयत्न हुए। इनमे उल्लेखनीय है भारत में 1920 और 1931 मे असहयोग आदोलन, सूडान मे 1947 और घाना में 1950 की हड़ताल।

लेकिन आमतौर पर स्थानीय उद्देश्यों को लेकर स्थानीय हड़ताले ही मजदूर संगठन आदोलन की विशेषता रही। जहा मजदूर सगठनो की गतिविधि कम से कम रही वहां भी अक्सर हड़ताले हुई। रोजगार के अवसरो की अपेक्षा अप्रशिक्षित मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा हो जाने के कारण, एक ऐसी स्थिति जो ज्यादा से ज्यादा लोगों के नगरो की ओर जाने के कारण और गंभीर बन गई, अक्सर हिंसात्मक विरोध आदोलन होते थे और ये समाज मे एक महामारी की तरह फैले। ये सभी जनसमूह, चाहे निश्चित वर्गों के हों या सम्प्रदायिक वर्गो के, समय समय पर कभी कभी उभरते थे। इनका सगठनात्मक ढाचा नही था और इनकी प्रवृत्ति अकेले ही काम करने की थी। पश्चिमी प्रभाव वाले विशिष्ट वर्ग के लोगों ने विभिन्न सामाजिक समूहों में असंतोष फैलाने की कोशिश की जबकि उन्हे नई मांगो पर ध्यान देना चाहिए था जिनके लिए जन समर्थन का आधार तैयार नही था।[32] बहुत सारे सदस्य एक से अधिक दलों में शामिल थे लेकिन इन दलों को, यहा तक कि शहरी वातावरण में भी, कभी एकता के सूत्र में बाधने की कोई कोशिश नही की गई। अलग अलग दलों के भिन्न भिन्न उद्देश्य थे और भिन्न समस्याओ तथा नीतियों के लिए उनकी अलग प्रतिक्रियाएं थी।

ग्रामीण राजनीति और विरोध

राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जनता का समर्थन जुटाना केवल शहरी वातावरण की ही विशेषता नही थी। ग्रामीण क्षेत्रों मे भी काफी संगठनात्मक और विरोधात्मक गतिविधिया देखने को मिली। विभिन्न आदोलनों, किसान आदोलन, स्थानीय धार्मिक विरोध और सहकारिता आदोलन, की शुरुआत के कारण, और इनका समर्थन करने वाली जनता अलग अलग तरह की थी। लगभग सभी आदोलनो के उद्देश्य सीमित थे और उनका समर्थन करने वालों का दायरा भी छोटा था। अकेले कार्य करने की राजनीति, और विरोध आंदोलन, शहरो की अपेक्षा गांवो में ज्यादा रहे। पश्चिमी अर्थव्यवस्था और विचारों का प्रभाव अफ्रीकी और एशियाई समाज में कई तरह से महसूस किया गया। इन क्षेत्रो मे पाश्चात्य आर्थिक गतिविधियों से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास तो हुआ ही, साथ ही स्थानीय अर्थव्यवस्था में उसने अपने पैर जमाने शुरू किए। इसके परिणाम काफी गंभीर हुए। ऐरिक वुल्फ ने

इसे 'उत्तर ऐटलांटिक पूंजीवाद' कहा है। इसने कृषक समाज की नींव पर ही आघात किया है।

जैसे जैसे गावों में नकद पैसा देकर लेनदेन करने की अर्थव्यवस्था आती गई वैसे वैसे पुरानी ग्रामीण अर्थव्यवस्था खत्म होती गई और गांव की आत्मनिर्भरता का भी विनाश हो गया। किसान ने दैनिक उपयोग के काम आने वाले अनाज की खेती करने की बजाय नकद धन दिलाने वाली फसल उगानी शुरू कर दी। इसी प्रक्रिया में किसान ने अपनी मेहनत, अपनी जमीन का उपयोग, और अपना उत्पादन, उन्हीं चीजों के लिए किया जिसमे 'एक ऐसी मंडी की आवश्यकताएं पूरी होती थी, जिसका संबंध ग्रामीण जनता की जरूरतो मे बहुत मामूली सा था।'[33]

मंडी व्यवस्था के विकास ने कृषक समाज के परंपरागत बंधनों को भी काट दिया। पहले, किसान नुकसान के जोखिम कम करने और अपनी स्थिरता को दृढ करने के प्रयत्न मे अपने अपने साधनो को समाज के साथ बांटता था। इसके अलावा वह, शक्तिशाली संरक्षको जैसे जमीदारों के साथ अपने संबंधों पर भी निर्भर रहता था। *पश्चिमी पूंजीवाद ने लोगो को समाज की मुख्यधारा से अलग कर दिया और उन्हें* आर्थिक कार्यकर्ता बना दिया जो अपने सगे संबंधियो और पड़ोसियो के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्वो मे स्वयं को मुक्त समझते थे।[34] संरक्षक की भूमिका भी बदली। परंपरागत संरक्षक, जैसे कबीले का सरदार, जमींदार आदि का स्थान उद्योगपतियों ने ले लिया या उन लोगो ने अपने आपको नई अर्थव्यवस्था के अनुसार बदला। दोनों ही स्थितियों मे किसान के साथ उनके परंपरागत संबंध टूटे। औपनिवेशिक शासन द्वारा अपने ही कानून लागू करने और इस शासन का समर्थन प्राप्त करने के कारण ये संरक्षक स्थानीय समाज के प्रति अपनी परंपरागत जिम्मेदारियो की उपेक्षा कर सकते थे। ऐसा करते हुए यदि उसे वह सामाजिक प्रतिष्ठा, जो उसे या उससे पहले वाले संरक्षकों को मिली हुई थी, खोनी पड़ी तो भी उसे एक ऐसा बाहरी साथी मिला जिसके पास उसका स्थानीय दर्जा बनाए रखने की शक्ति थी।[35]

ऋण लेने-देने की व्यवस्था मे भी परिवर्तन आया। हालांकि साहूकार, परंपरागत ग्राम्य जीवन में एक कार्यकर्ता मात्र था फिर भी बढ़ी-चढी दरों पर ब्याज लेने की उसकी क्षमता पर ग्रामीण अधिकारियों और स्थानीय रीति रिवाजों ने काफी अंकुश लगा रखा था। ज्यादातर जमीन साझी हुआ करती थी और साहूकारों को ऋण वसूल करने के लिए बहुत कम कानूनी तरीके उपलब्ध थे। औपनिवेशिक प्रणाली ने इस स्थिति में आमूल परिवर्तन किया। निश्चित लोगों के नाम जमीन कर दी गई जिससे साहूकार के दावों को बल मिला। इन बातो से साहूकार के

पहले से बढ़ रही गतिविधियों में और तीव्रता आई। यहां तक कि जहां कानूनी तौर पर जमीन का हस्तांतरण बहुत कम था, गावों की व्यवस्था में पश्चिमी आर्थिक गतिविधियों के आ जाने से मुद्रा का आदान-प्रदान अधिक हुआ और इसका खराब असर गावों की वस्तु विनिमय प्रणाली पर पडा। साथ ही अधिकांश लोगों को उचित ऋण सुविधाएं भी प्राप्त न हो सकी।[36] अब किसान को बार बार साहूकार के पास दौडना पड़ा और उसे अत्यंत कठिन शर्तों पर ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। एक कभी न खत्म होने वाली श्रृंखला की शुरुआत हो गई जिसमें बहुत ऊंची ब्याज दर पर ऋण लिया जाता था और ऋण से मुक्ति की कोई आशा नही रही, जमीन हाथ से निकल गई, कृषि के उत्पादन को मंडी में बेचने के लिए सौदेबाजी करने की क्षमता कम हो गई, और फिर से ऋण लेने की जरूरत पड़ गई। किसान सिर्फ एक पट्टेदार काश्तकार बन गया। जो पट्टे पर काश्तकारी करते थे वे मामूली मे कृषि मजदूर की स्थिति में पहुंच गए।

इस स्थिति के बारे मे किसान की प्रतिक्रिया अक्सर हिंसा और विद्रोह का रूप लेती थी और उसकी बढ़ती हुई नाजुक स्थिति उभरकर सामने आती थी। ज्यादातर यही होता था कि इस तरह के विद्रोह किसानों की दुर्दशा के प्रतीक जमींदारों और साहूकारों के विरुद्ध होते थे न कि राज्य के खिलाफ। बर्मा मे साया सान का विद्रोह, दक्षिण भारत मे मोपला विद्रोह, फिलीपीस मे तायुग घटना और सकदल विद्रोह, तथा ऐसी ही अन्य घटनाएं अस्थाई, हिंसात्मक और सीमित उद्देश्यों के साथ हुई। जहा कहीं सैद्धातिक प्रश्न उठे, वहां इस तरह की घटनाओं के पीछे राजनीतिक राष्ट्रवाद कम, और स्थाई रूप से आगे चलकर एक सुंदर भविष्य के स्वप्न को साकार बनाने की प्रेरणा ज्यादा थी। जैसाकि ऐरिक आर० वुल्फ ने लिखा है :

> किसान का अनुभव दो तरह का है। एक तो यह विचार कि विश्व को किस तरह से सुव्यवस्थित किया जाना चाहिए, और दूसरा है वे कुछ वास्तविकताएं जिन्हे अव्यवस्था ने जन्म दिया है। किसान ने हमेशा ही यह स्वप्न देखा है कि कभी न कभी उसे इस अव्यवस्था से मुक्ति मिलेगी और कोई ऐसा मसीहा आएगा जो विश्व को अत्याचारों से छुड़ाएगा, कोई ऐसा पैगंबर आएगा जिसके पास ईश्वरीय शक्ति होगी··· आधुनिक परिस्थितियों मे वर्तमान अव्यवस्था को विश्व की उलटी व्यवस्था समझा गया है और इसलिए यह एक बुराई है··· सच्ची सुव्यवस्था अभी आने वाली है, चाहे वह किसी दैवी शक्ति के माध्यम से आए चाहे किसी विद्रोह से, या दोनों के माध्यम से। किसानों की दुर्दशा, और कानून की अवहेलना, तथा विश्व के भविष्य का

स्वप्न, ये सभी किसान विद्रोह की आग भड़काने के लिए सैद्धांतिक तेल का काम करती हैं।[37]

किसानों के विरोध आंदोलन हमेशा ही इतने अल्पकालिक नहीं थे। कभी कभी स्थानीय किसान संगठन बनते थे जो किसानों की स्थिति को राजनीतिक प्रयत्नों से सुधारने की कोशिश करते थे। भारत में बीसवीं शताब्दी में किसान सभाएं बनीं। इन किसान सभाओं ने भूमि की पट्टेदारी की बढ़ती हुई पेचीदगियों, पट्टे की अवधि की अनिश्चितता, और बिचौलियों द्वारा लगाए जाने वाले कई उपकरों की बढ़ती हुई संख्या के प्रति विरोध आंदोलन चलाए और भारत के कुछ भागों में काफी हद तक सुसंगठित होकर इन्हें जारी रखा।[38] इस तरह के संगठन अपने किसान सदस्यों के लिए नए संरक्षक बने जिन्होंने जमींदारों और सरकार के खिलाफ किसान सभाओं द्वारा समस्याएं हल कराने के प्रयत्न किए।

किसान चाहे कितने ही सुसंगठित हुए लेकिन उनके विरोध आंदोलन में भाग लेने वालों की संख्या और क्षेत्र की दृष्टि से काफी सीमित रहे। ग्रामीण असंतोष पैदा करने वाली परिस्थितियां व्यापक थीं, लेकिन यह असंतोष अपेक्षाकृत निश्चित जनसमूहों तक सीमित था।

किसान आंदोलनों का एक और महत्वपूर्ण पहलू था धर्म के साथ उनका संबंध। ज्यादातर तो ये आंदोलन धार्मिक ही होते थे जिनमें सामाजिक उद्देश्यों के लिए समर्थन जुटाने के काम में धार्मिक प्रतीकों और रीतियों का प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए बर्मा में साया सान आंदोलन का नेतृत्व एक पाखंडी धर्माचार्य ने किया था। इसी तरह का एक और उदाहरण है 1921 में दक्षिणी भारत में हुआ मोपला आंदोलन। मुस्लिम किसानों ने विद्रोह किया था और उन्होंने एक खलीफा के अधीन शासन की स्थापना की घोषणा की। पर उनका अधिकांश समय और शक्ति हिंदू साहूकारों के विरुद्ध कार्यवाहियों में ही लगे।

अधिकतर धार्मिक आंदोलन, सामाजिक परिवर्तन के किसी निश्चित कार्यक्रम की बजाय आंदोलन में भाग लेने वालों की अपनी जरूरतों को लेकर हुए। ये आंदोलन गांवों में बड़ी संख्या का रूप लेकर शुरू होते थे। अफ्रीका में अधिकांश धार्मिक सम्प्रदाय ईसाइयों के मत और स्थानीय परंपरागत रीति [illegible] बने थे। इस तरह के दलों को बेंग [illegible] आंदोलनों [illegible] में 'जिया-

क्रियाओं तथा उपासना से व्याधियां दूर करने पर बल दिया जाता था। लेकिन ये दल सुसंगठित नही थे।

दक्षिण एशिया मे धार्मिक आंदोलनों की विशेषता, पुनर्जागरणवाद थी। यह चाहे हिंदू समाज में, उदाहरण के लिए उत्तर भारत में आर्य समाज, या मुसलमानों अथवा अन्य अल्पसंख्यक समुदायो मे हो, इसका मूल उद्देश्य एक ही था। उद्देश्य था अपने संप्रदाय को सुदृढ़ करना, जो अपवित्र रीतियों के कारण कमजोर हो गया था और औपनिवेशिक व्यवस्था में जिसका पतन हुआ था। प्रयत्न यही था कि सप्रदाय को वापस अपने स्वर्ण युग में लाया जाए।[10]

हालाकि धार्मिक आदोलनों ने व्यापक और विविध रूप अपनाए, फिर भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह के आदोलन बहुत प्रचलित हुए। धार्मिक आंदोलनों ने व्यापक संचार सपर्क के लिए आधार दिया और जहा कही भी इन्हें दबाया गया वहां विशेष रूप से कई विरोध आदोलन चलाए गए। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि हालाकि कुछ विद्वान इन आंदोलनों को ऐसे युग मे 'जब औपनिवेशिक स्थिति के कारण उत्पन्न निराशाओं का कोई धर्मनिरपेक्ष समाधान नजर नही आ रहा था'[11] राष्ट्रवाद के विकास का एक चरण मानते हैं, फिर भी ऐसा लगता है कि धार्मिक आदोलनों ने न केवल भाग लेने वालों के बीच व्यक्तिगत संबंध स्थापित किए जो आंदोलन की समाप्ति के बाद भी अक्सर बने रहे बल्कि अभिव्यक्ति के प्रतीकों का भी सृजन किया। यही प्रतीक उस समय और महत्वपूर्ण होने वाले थे, जब राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्तियो ने गांवों वालों को अपने आदोलनों मे जुटाने के प्रयत्न शुरू किए।

विभिन्न संस्थाओ अथवा एसोसिएशनों के सभी ग्रामीण क्रियाकलाप विरोध आदोलनों के लिए ही नही थे। कभी कभी किसान अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए उत्पादकों की सहकारी समितियां बनाने की कोशिश करते थे जिनका उद्देश्य बिचौलियों को हटाकर अपने उत्पादनो के लिए मंडियो मे बिक्री के काम मे और अधिक सक्रिय भाग लेना था।[12]

सहकारिताओ का विकास उतना ही पुराना प्रतीत होता है जितना उपनिवेशवाद। पूर्वी अफ्रीका में इस तरह की प्रथम सहकार समिति का गठन, वहां बसने वाले पाश्चात्य निवासियों ने 1908 में किया था। दक्षिण एशिया मे इन सहकारिताओ का उदय इससे भी पहले हुआ। सहकारी समितियों को सरकार से भी कुछ प्रोत्साहन मिला हालाकि जरूरी नही कि प्रोत्साहन उन्ही कारणों से दिया गया हो जिनपर इन समितियों का गठन करने वालो ने विशेष बल दिया था, (यानी उत्पादक के हितों की रक्षा

करना)। वास्तव में उपनिवेशों की सरकारें अक्सर यह महसूस करती थीं कि स्थानीय उत्पादकों को नकदी अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा में लाने का सबसे कारगर और कुशल तरीका यही था कि सहकारी समितियां बनें।

सहकारिता के विकास पर विस्तृत रूप से ध्यान नहीं दिया गया लेकिन फिर भी ऐसा लगता है कि संस्थाओं के गठन के काम में सक्रिय मध्यमवर्गीय विशिष्ट व्यक्तियों ने ही अक्सर सहकारिता आंदोलनों की शुरुआत कराई। जांबिया में वरिष्ठ राष्ट्रवादी पा स्माल ने सहकारिता आंदोलन को मुख्य प्रेरणा दी।[43] मैग्वायर ने तंजानिया का जो अध्ययन किया है उससे पता चला है कि टांगानिका अफ्रीकन एसोसिएशन (टी० ए० ए०) और कबीले की एसोसिएशन के नेता ने ही उत्पादक सहकारिताओं का गठन करने में प्रमुख भूमिका निभाई। एक सहकारिता के संयोजक ने कुछ सहयोगियों के दल के साथ मिलकर ग्रामीण क्षेत्र में प्रवेश किया, और धीरे धीरे गांवों के बड़े-बूढ़े और युवकों की समितियों के साथ अपना संपर्क बढ़ाया।[44]

लेकिन आमतौर पर, सहकारी समितियों को बड़ी सीमित सी सफलता मिली। औपनिवेशिक सरकारें इन सहकारी समितियों की राजनीतिक भूमिकाओं की संभावित क्षमता के प्रति संदेहशील थीं और परंपरावादी विशिष्ट वर्ग तो अक्सर इनका विरोधी रहा। संभवतः इससे भी महत्व की बात यह है कि सहकारी समितियों के विकास के मार्ग में अड़चन अपर्याप्त पूंजी के कारण आई। इसके अलावा ये समितियां उस स्तर तक नहीं पहुंच पाई जहां तक पहुंचने की आवश्यकता थी। यानी ये समितियां पट्टे पर काम करने वाले उस किसान तक नहीं पहुंची जो कर्ज के बोझ से दबा हुआ था और जिसके पास न तो कर्ज के लिए कोई जमानत थी और न ही वह इतनी बचत कर सकता था कि जो थोड़ा बहुत ऋण वह ले सका हो उसे लौटा सके।

जहां कहीं सहकारी समितियां सफल हुईं वहां इन्होंने स्थानीय समाज को काफी हद तक संस्थात्मक व्यवस्था प्रदान की। मैग्वायर ने कहा है, 'आंकड़ों की दृष्टि' से ही, 1954 तक सहकारी समितियों में लगभग तीस हजार सदस्य थे। यह संख्या टांगानिका अफ्रीकन एसोसिएशन या सुकूमा यूनियन की सदस्य संख्या के दस गुना के करीब थी (टी० ए० ए० या सुकूमा यूनियन की सदस्य संख्या लगभग तीन तीन हजार थी)।[45] सहकारिताओं ने ऐसे संपर्क स्थापित किए कि पश्चिमी प्रभाव वाले विशिष्ट वर्ग को गांवों तक सीधे पहुंचने का अवसर मिल गया।

परंपराओं की दृढ़ता

अफ्रीका और एशिया में अधिकांश सामाजिक गतिविधियों का आधार परंपरागत

सामाजिक व्यवस्था ही बनी रही। परंपरागत संस्थाएं खून के रिश्तों, सामाजिक दर्जों, पारस्परिक निर्भरता, और रीति रिवाजों का मिलाजुला स्वरूप थी। ज्यादातर यही होता था कि इन संस्थाओं में समाज के छोटे वर्ग से बड़े वर्ग तक के लोग होते थे। पुराने जमाने से जो वर्ग विशिष्ट माने जाते थे उनका संबंध सामाजिक दृष्टि से छोटे वर्गों के साथ संबंधों के प्रकार के आधार पर रहता था। यह संबंध बड़े वर्ग के प्रति छोटे वर्ग के आदर और आत्महित पर आधारित होते थे। यह ऐसी परस्पर निर्भरता थी जिसके बारे में आमतौर पर संरक्षक-संरक्षित संबंधों के दृष्टिकोण से विचार किया जाता है।[46] इस तरह के संबंध अत्यत स्थानीय होते थे और इनमे शामिल लोगो के लिए इन्हीं संबंधों से उनके समाज का दायरा बनता था।

जहा पश्चिम का प्रभाव महसूस किया जाने लगा वहा भी अक्सर संरक्षक-संरक्षित संबंध बने ही रहे। औपनिवेशिक समाज की पेचीदा आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप पश्चिम के प्रभाव ने, संरक्षक और संरक्षित के बीच के संबंधों को संकीर्ण बनाना शुरू किया, और स्थानीय बड़े व्यक्ति के लिए बाहरी साधनो के महत्व को क्रांतिकारी ढंग से बढ़ा दिया (इससे स्थानीय संरक्षक, गांव और व्यापक प्रणाली के बीच एक बिचौलिया मात्र बन गया)। लेकिन कुछ स्थितियों में, पहले से चले आ रहे बड़े लोगों ने औपनिवेशिक समाज के नए साधनों का पूरा पूरा उपयोग किया और अपना महत्व बढ़ाया। उदाहरण के लिए, लैमरचंद ने बताया है·

> नाइजीरिया के राष्ट्रीय संदर्भ मे, 'पुराने जमाने से चले आ रहे उत्तरी क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने', बिचौलियों की भूमिका निभाई; राष्ट्रीय और क्षेत्रीय संस्कृतियों तथा समाज के वर्गों के बीच रहते हुए ये लोग, प्रथम और द्वितीय साधनों—यानी संरक्षक के पद, ऋण देने वाले, छात्रवृत्तियां और अनुबंध देने वाले तथा अनुबधों के साथ साथ संपर्क बनाने वाले साधनों का समुचित उपयोग करने वाले बन गए। ऐसी ही भूमिकाएं, बुरुंडी के गनवा लोगों ने, सेनेगल के शेख कहलाने वाले लोगों ने, मोरीटानिया में हसन और जव्या ने, बुगाणा के कबीलों के सरदारो साजा ने, आइवरी कोस्ट, घाना, नाईजर और अपरवोल्टा के कुछ परंपरागत सरदारो ने थोड़ी बहुत सफलता के साथ निभाईं।[47]

जहां कहीं सामाजिक परिवर्तन के कारण ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों की शक्ति मे कमी आई, वहां भी इन व्यक्तियों की सामाजिक सत्ता और प्रतिष्ठा मे हमेशा ही ह्रास नही हुआ। नए और अधिक प्रभावशाली संपर्कों वाले संरक्षकों के उदय से परंपरागत संरक्षकों का प्रभाव कम होने के बावजूद इन परंपरागत संरक्षकों के अनुयायियों की सख्या मे कमी नही हुई। कुछ किसान या तो आदरभाव के कारण या इस गलत-

फहमी के कारण कि उनके परंपरागत संरक्षकों का वास्तव में कुछ प्रभाव है, अपने पुराने संरक्षकों के साथ सबंध बनाए रखना चाहते थे।

अन्य शब्दों में यही कहा जा सकता है कि पश्चिम के प्रभाव के कारण सभी पुरानी सामाजिक व्यवस्थाएं छिन्न भिन्न नहीं हुईं। यहां तक कि जहां परंपरागत सत्ता का ह्रास हुआ, वहा भी समाज मे उन लोगो ने अपना दर्जा बनाए रखा जिनके पास पहले सत्ता थी (लेकिन बाद में औपनिवेशिक शक्ति के सामने वे इसे खो बैठे थे)।

संपर्क-राजनीति : राष्ट्रवादी आंदोलन की उपलब्धि

एक व्यापक राष्ट्रवादी आदोलन का विकास कुछ अंशों मे राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग के बीच होने वाले मूल सगठनात्मक परिवर्तनो का परिणाम है। ये परिवर्तन जैसे सामूहिक दल या किसी राष्ट्रीय दल का केंद्र, या जनमत जुटाने वाली राष्ट्रवादी पार्टी का उदय, आमतौर पर राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग के अदर विभिन्न स्तरों पर (स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय) सबंधो को स्थापित कराते हैं और इन विशिष्ट वर्गों, और स्थानीय आंदोलनों तथा सामाजिक दलों के बीच संपर्क बनाने में सहायक होते हैं।

1919 और 1921 के बीच भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस में आए परिवर्तन, इसी संपर्क प्रक्रिया के उदाहरण हैं। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के इतिहास के प्रारंभिक वर्षों में (1885-1920) यह पार्टी वास्तव में भारत के प्रमुख नगरों के मध्यमवर्गीय विशिष्ट व्यक्तियों का मिलाजुला दल थी। इस सारी अवधि में कांग्रेस का विस्तार मुख्यत: भारत के नगरों मे ही हुआ। स्थानीय और प्रातीय सगठन लगभग स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे थे और इनमें सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम थी। राष्ट्रीय स्तर के कुछ ही नेता 'राष्ट्रीय' काग्रेस के प्रतीक थे और इस पार्टी की अखिल भारतीय स्तर की सभाएं साल मे सिर्फ एक बार होती थी। काग्रेस में धीरे धीरे अदरूनी संगठन की व्यवस्था का विकास हुआ क्योंकि उसने औपनिवेशिक शासन मे सुधारो के लिए बातचीत में हिस्सा लेना शुरू किया, और कांग्रेस के विशिष्ट व्यक्तियों ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों के बढते हुए क्षेत्र में कदम रखा।[19] इसी अवधि में कांग्रेस की आतरिक राजनीति में दो पक्ष उभरे। कुछ लोग नरम दल के थे तो कुछ गरम दल के। किसी सीमा तक इस अंदरूनी विभाजन ने संगठनात्मक विकास को गति प्रदान की क्योंकि एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा में आने वाले इन दलो ने, कांग्रेस समर्थकों मे अपने प्रभाव का विस्तार करने का प्रयत्न किया।[53]

लेकिन 1920 के दशक के प्रारंभ मे संगठनात्मक विकास तब तक अपनी पूर्ण

गति में नही आया जब तक मोहनदास करमचन्द गांधी ने नेतृत्व नही संभाला।[50] और तब लगभग तुरंत ही, कई संगठनात्मक परिवर्तन किए गए। दैनिक कार्यों को चलाने के लिए एक सक्रिय कार्यसमिति बनाई गई और इसी तरह प्रांतीय और स्थानीय स्तरों पर भी कार्यकारिणियां स्थापित की गईं। वित्तीय साधनों का विस्तार किया गया, और पार्टी के संगठन का कार्य पूरे समय करने वाले कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन दिया गया। संभवत:सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि 1920 के कांग्रेस संविधान मे यह व्यवस्था की गई कि प्रांतीय कांग्रेस समितियों को अंगरेजो द्वारा की गई प्रशासनिक व्यवस्था का अनुकरण नही करना चाहिए (जैसाकि उस समय तक किया जा रहा था) बल्कि भारत के अंदर भाषाई विभाजनों को आधार मानकर चलें। इसी के अनुसार वर्तमान प्रांतों का पुनर्गठन करके भाषाओं के आधार पर 21 क्षेत्र बनाए गए।

इन सुधारों के परिणामस्वरूप कांग्रेस का औपचारिक गठन हुआ। नवविकसित पार्टीकेंद्रों और पार्टी की शाखाओं के बीच स्थाई संचार संपर्क स्थापित किए गए, और पार्टी के सभी स्तरों पर पूरे समय काम करने वाले कार्यकर्ताओं की सख्या बढी। इसके साथ साथ, इन सुधारों ने कांग्रेस के विशिष्ट व्यक्तियों को स्थानीय राजनीति में प्रवेश करने की और अधिक क्षमता प्रदान की। कांग्रेस के सभी विचार विमर्श स्थानीय भाषाओं में होने लगे। पार्टी के कार्यकर्ता स्थानीय दलो और विरोध आदोलनों में और सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

भारत का उदाहरण अपने आप मे कोई निराला नही था। आइवरी कोस्ट के बारे में लिखते हुए जोलबर्ग ने पार्टी डेमोक्रेटिक द-कोट-द-आइवायर (पी० डी० सी० आई०) के संगठनात्मक विकास की भी ऐसी ही पद्धति बताई है। 1947 में पी० डी० सी० आई० जैसे मिलेजुले दल को एक जनसंगठन का रूप देने का प्रयत्न किया गया।[51] कार्यकारिणी का पुनर्गठन किया गया, पार्टी संचालकों के प्रशिक्षण के लिए एक काडर स्कूल की स्थापना की गई और सिद्धांत रूप में इस पार्टी का पुनर्गठन करके ऐसी व्यवस्था की गई जिसमें नीचे से ऊपर तक के पदों की व्यवस्था थी और यह एक जनसंगठन बन गई।[52] पी० डी० सी० आई० और अन्य पार्टियां,[53] जनता का सामूहिक समर्थन प्राप्त करने के इच्छुक विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों की संगठनात्मक गतिविधियों के कारण या तो बनी या समाप्त हो गईं। इन पार्टियों का गठन अथवा पुनर्गठन किया गया जिससे इनके बीच आपस मे, और अन्य सामाजिक दलों के साथ, संपर्क बन सके। पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता जनसमर्थन प्राप्त करने के लिए बराबर प्रचार करते थे, और इसके लिए वे अक्सर स्थानीय विरोध अंदोलनो मे भी शामिल होते थे। सामूहिक समर्थनप्राप्त राष्ट्रवादी पार्टियां अन्य पार्टियों के मुकाबले काफी बेहतर स्थिति मे थी और काफी लोग उनके साथ थे फिर भी इन्हें आमतौर पर विशाल पार्टी

नहीं कहा जा सकता। आइवरी कोस्ट में 1952 के चुनावों में पी० डी० सी० आई० को मताधिकार प्राप्त कुल लोगों में से केवल लगभग 33 प्रतिशत वोट मिले थे। घाना में 1951 में कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी (सी० पी० पी०) को मताधिकार प्राप्त नागरिकों में से लगभग तीस प्रतिशत का समर्थन मिला।[34] अन्य पार्टियां भी सामूहिक समर्थन प्राप्त करने की दिशा में अपनी गतिविधियों के प्रारंभिक वर्षों में बहुत सफल नहीं हुई थीं। उदाहरण के लिए, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देश की स्वाधीनता से कुछ ही वर्ष पहले सही मायने में जनता का सामूहिक समर्थन प्राप्त कर सकी उससे पहले नहीं।

इसके अलावा सामूहिक समर्थनप्राप्त राष्ट्रवादी संगठनों के उदय का अर्थ यह नहीं था कि वे अत्यंत सुसंगठित राष्ट्रवादी पार्टियां बन चुकी थीं। पश्चिम अफ्रीका की सामूहिक समर्थनप्राप्त राष्ट्रवादी पार्टियों के एक अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ है कि संगठन की दृष्टि से वे प्रारंभिक चरणों में थीं।[55]

> नई लहर (राष्ट्रवादियों की) ने बहुत ही मामूली साधनों से अपने प्रारंभिक उद्देश्य प्राप्त किए। उन्होंने साइकिलों, कुछ ट्रकों और कभी कभी एक आध मोटरगाड़ियों का इस्तेमाल किया। उनके पास कभी कुछ निजी धन होता था, लेकिन वे मुख्यतः मुट्ठीभर निष्ठावान लोगों पर निर्भर थे। उन्होंने जिन संगठनों की स्थापना की, वे शुरू में तो बहुत ही सीमित थे : संस्थापकों की एक मिलीजुली कार्यकारिणी, संवाददाताओं का एक बड़ा दल जिसके संपर्क विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं (विशेषकर राजधानी की और ग्रामीण क्षेत्रों के कुछ प्रमुख कस्बों की) तथा विभिन्न जातियों के साथ होते थे। इन संगठनों का केंद्र राजधानी में था और ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ शाखाएं थीं।[56]

वास्तव में जो बात सामने आई उसे राजनीतिक घटना तो कहा जा सकता था, लेकिन यह एक सुसंगठित पार्टी से बिल्कुल भिन्न थी। यह अलग अलग हिस्सों में बंटा हुआ आंदोलन था जिनके बीच की कड़ी राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्ति और राष्ट्रवादी पार्टी संगठन थे। सैनेगल की पहली जनता की पार्टी ब्लाक डेमोक्रेटिक सैनेगालेज, का गठन सिद्धांत रूप में फ्रांस की सोशलिस्ट पार्टी (एस० एफ० आई० ओ०) को आदर्श मानकर किया गया था, लेकिन वास्तव में यह पार्टी बहुत सारे हिस्सों में बंटी हुई थी।

पार्टी की शाखाओं में आमतौर पर स्थानीय बड़े लोगों का बोलबाला था और इसी कारण यह पार्टी जातीय दलों और राजनीतिक ग्रुपों, जिन्हें कबीले कहा जाता था,

का एक अव्यवस्थित रूप बनकर उभरी। जोलबर्ग ने पी० डी० मी० आई० की एक शहरी शाखा (सैद्धांतिक तौर पर इसे कम्युनिस्ट पार्टी के ढंग का बनाया गया) के बारे में लिखा है कि इसके बीस हजार सदस्य सौ से ज्यादा जातीय उपसमितियों में बंटे हुए थे।[57]

इस तरह की संस्था के उभरने की बात शायद तभी अच्छी तरह समझी जा सकती है जब प्रारंभिक संगठनात्मक परिवर्तनों और राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्तियों के बीच संबंधों पर नजर डाली जाए। इस तरह के परिवर्तन किसी पार्टी के संगठनात्मक बनने की वास्तविक शुरुआत होते हैं।[58] ऐसी हालत में संगठन अपनी भूमिकाओं का निर्धारण करने लगता है।[59] वह अपने विशिष्ट व्यक्तियो के चुनाव की प्रक्रिया (उनकी संगठनात्मक कार्यकुशलता के आधार पर और पार्टी की विचारधारा को प्रसारित करने के काम में सफलता, और पार्टी के पदों पर वे कितने समय तक रहे, इसके आधार पर उन्हें विशिष्ट व्यक्ति का दर्जा दिया जाता है), अपने निर्णय लेने और इसके निराले आंतरिक गुटों (आमतौर पर ये गुट व्यक्तिगत, संगठनात्मक और सैद्धांतिक मतभेदो पर आधारित होते हैं) के निर्माण का काम शुरू कर देता है। कम से कम कागज पर तो यह पार्टी अत्यंत अनुशासनबद्ध और स्वायत्त सत्ता होती है।

लेकिन जैसा अभी कहा गया, ये परिवर्तन संस्थात्मकता की शुरुआत मात्र होते हैं और पार्टी को सिद्धांत रूप में जितनी स्वायत्तता दी जाती है उतनी वास्तव में नही होती।[60] यह बात पार्टी की भूमिकाओ के संदर्भ में विशेष रूप से सामने आती है। विशिष्टता का दर्जा, पार्टी, इतना नही देती (उदाहरण के लिए पार्टी के पद) जितना कि वह उस दर्जे की पुष्टि करती है। व्यक्ति अन्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दलों में अपने वर्तमान विशिष्ट दर्जे के कारण, इस नवगठित या पुनर्गठित पार्टी के विभिन्न स्तरों पर प्रमुखता का स्थान पाता है क्योकि ऐसा माना जाता है कि अन्य दलों के साथ उसके जो संबंध हैं, उसका फायदा पार्टी को मिल सकता है। उधर पार्टी में उसका विशिष्ट दर्जा होने के कारण, अन्य दलों में भी उसका दर्जा ऊंचा होता है।

विशिष्टतावादियों के संपर्क की यह प्रक्रिया लगभग सभी राष्ट्रवादी आंदोलनों में नजर आती है। इसका एक उदाहरण कांगो के राष्ट्रवादी नेता पैट्रिस लुमुबा हैं। 1951 में स्टैनलेवील पहुंचने के कुछ ही समय बाद लुमुबा ने वहां के प्रमुख बुद्धिजीवी क्लब एसोसिएशन देज इवाल्ज दि स्टैनलेवील की सदस्यता ग्रहण की। उसी साल उन्हें एसोसिएशन देज पोस्टीयर्स दि ला प्राविंस ओरियेंटल का महासचिव नियुक्त किया गया। 1953 तक पैट्रिस लुमुंबा कम से कम सात एसोसिएशनों

के पूर्ण सदस्य बन चुके थे। 1955 तक वे एसोसिएशन देज इवाल्ज, और एसोसिएशन दू पर्मनिल इडिजीन दि ला कालोनी आफ स्टैनलेवील, दोनों के ही अध्यक्ष बन चुके थे। यह दूसरी एसोसिएशन, अफ्रीकी सरकारी सेवाओं की स्थानीय श्रमिक संस्था थी। 1956 मे उन्होंने एमीकैल लिबरेल दि स्टैनलेवील की स्थापना की। दो साल के बाद वे मूवमेंट नेशनल कांगोलेज के संस्थापकों में से एक थे। यह, सारे कांगो का पहला राष्ट्रवादी संगठन बना।[61] अधिकांश प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं की जीवनियां भी ऐसी ही हैं। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पार्टी के विशिष्ट व्यक्तियों मे अधिकाश निचले स्तर के लोगों का जीवन भी ऐसा ही देखने को मिलता है। मैंग्वायर ने सुकूमा क्षेत्र के संबंध में जो लिखा है, उसमें एक सक्रिय कार्यकर्ता पाल बोमानी का जीवन भी कई तरह से इसी ढंग का रहा है। बोमानी, म्वाजा अफ्रीकन ट्रेडर्ज कोआपरेटिव सोसायटी के नेता थे, इस क्षेत्र के उत्पादक सहकारी समितियों के संगठनकर्ता थे और प्रांतीय सहकारिता आंदोलन के नेता भी थे।[62] 1951 में बोमानी, सुकूमा आदिवासी एसोसिएशन सुकूमा यूनियन के अध्यक्ष बने, और 1952 में उन्हें लेक प्राविंस टंगानिकन अफ्रीकन एसोसिएशन का अध्यक्ष बनाया गया।[63] स्थानीय राजनीति के विशिष्ट व्यक्तियों के विस्तृत अध्ययन से उनके जीवन का यही ढंग नजर आता है।[64]

राष्ट्रवादी पार्टियां, स्थानीय एसोसिएशनों और आंदोलनों को इतना दबाती नहीं हैं जितना कि उनमें राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से संपर्क बनाती हैं। इसके परिणामस्वरूप 'राष्ट्रीय' राष्ट्रवादी व्यक्तियों की अपनी महत्वाकांक्षा, और एक व्यापक आंदोलन चलाने की उनकी इच्छा, दोनों का एक दूसरे में विलय होता है और छोटे छोटे हिस्सों में बटे हुए, लेकिन स्थानीय विरोध आंदोलनों और दलों के आपसी संपर्क के कारण जुड़े हुए 'राष्ट्रवादी आंदोलन' का उदय होता है।

टंगानिका में टी० ए० ए० (1954 में जिसका पुनर्गठन करके नया नाम टंगानिकन अफ्रीकन नेशनल यूनियन टी० ए० एन० यू० (तानू) रखा गया था) संगठन सारे प्रदेश में स्थानीय विरोध आंदोलनों मे सक्रिय था। इन आंदोलनों मे कहीं हड़ताल तो कहीं सहकारी समितियों पर सरकारी प्रतिबंधों पर विरोध प्रदर्शन, और कहीं भूमि के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाने के कानूनों के विरुद्ध प्रदर्शन आदि शामिल थे। मैंग्वायर ने जिस क्षेत्र का अध्ययन किया उसमें इस तरह के लगभग सभी विरोध आंदोलन अंत में मिलकर एक हुए और 1958 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के रूप में लगातार चले।[65] बहुत सारे इलाके में तानू संगठन विरोध आंदोलनों और अपनी मांगों के बीच संपर्क स्थापित करने में सफल हो गया। तानू संगठन

के राष्ट्रीय नेता जूलियस न्येरेरे ने इस सगठन के लिए सदस्य बनाने के उद्देश्य से, इस प्रदेश का सफल दौरा किया और एक स्थानीय तानू नेता, प्रतीकात्मक नेता के रूप मे उभरा और अंत में विरोध आदोलनों से नाम कमाया। अन्य स्थानों पर भी तानू ने अन्य दलों तथा विरोध आंदोलनों का सीमित सचालन किया। उदाहरण के लिए, वेंस्टलैंक प्रात में राष्ट्रवादी आंदोलन, आदिवासी दलों और काफी उत्पादकों की सहकारिताओं के बीच आपसी संपर्क से चला।[66]

गिनी में पार्टी डेमोक्रेटिक दि गिनी (पी० डी० जी०) ने जिस राष्ट्रवादी आदोलन को चलाया उसके लिए जनसहयोग और नेता औद्योगिक श्रमिक वर्ग मे प्राप्त हुए। पी० डी० जी० नेता सेकूतूरे ने, जो मजदूर संगठन का नेतृत्व करके प्रसिद्ध हुए थे, एक उग्र मजदूर संगठन के आधार के साथ राष्ट्रवादी आंदोलन को जोड़ा। सूडान में (आजकल माली) यूनियन सूडानेज संगठन विभिन्न मजदूर संघों, नाईजर नदी पर व्यापार करने वाले वर्ग, और उसके विशिष्ट व्यक्तियों, तथा टिंबकटू के शासक परिवार हैदारा जैसे परंपरावादी विशिष्ट वर्ग के आपसी संपर्कों से बना।[67] अल्जीरिया मे फ्रंट दि लिबरेशन नेशनेल ने शहरी श्रमिक आंदोलनों, किसान विद्रोहों और सुधारवादी इस्लाम की विभिन्न शाखाओं के बीच संपर्क स्थापित किया।[68]

आमतौर पर राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग ही किसी आदोलन में एकता का सूत्र बनते थे और अपने सामाजिक संपर्कों के कारण अलग अलग विरोध आंदोलनों, और विभिन्न दलों को, एक मच पर लाते थे। जैसा उदाहरणों से स्पष्ट होता है, विभिन्न आदोलनों में जिन परस्पर संपर्क वाले दलों और विरोध प्रदर्शनों को शामिल किया गया, वे भी भिन्न भिन्न प्रकार के थे। यही बात सामान्यतः किसी एक आदोलन के बारे मे भी लागू होती है, जैसा टांगानिका के उदाहरण से स्पष्ट है।

किसी भी राष्ट्रवादी आदोलन का स्वरूप किसी देश के अलग अलग भागो में बहुत ही भिन्न हो सकता है। भारत में 1920-1921 में गांधीजी के पहले असहयोग आदोलन के दौरान पंजाब का आदोलन एक इस्लामी और एक सिक्ख, दो धार्मिक सुधारवादी आंदोलनों का संयुक्त रूप था। इनके साथ मिलने वाला राष्ट्रवादी शहरी विरोध दल तो वास्तव में बहुत ही छोटा था।[69] इसके विपरीत उत्तर प्रदेश में इस आदोलन मे, शहरी राष्ट्रवादी विरोध दल और स्थानीय किसान आंदोलनों की मिलीजुली शक्ति थी।

इस संपर्क प्रक्रिया के परिणामस्वरूप किसी एक क्षेत्र के अंदर अलग अलग जन-

समर्थित राष्ट्रवादी संगठनों ने अलग अलग स्वरूप के राष्ट्रवादी आंदोलनों को जन्म दिया। सियेरा लियोने में विभिन्न पार्टियों ने न केवल अलग अलग जातीय दलों को, बल्कि विभिन्न सामाजिक दलों को भी अपने साथ शामिल किया। सियेरा लियोने पीपुल्स पार्टी का बहुत सी नवपरंपरावादी आदिवासी एसोसिएशनों के साथ घनिष्ठ संपर्क था।[70] अत्यंत क्रांतिकारी राष्ट्रवादी यूनाइटेड प्रोग्रेसिव पार्टी और पीपुल्स नेशनल पार्टी, दोनों ने मिलकर कई आर्थिक और राजनीतिक विरोध आंदोलनों को तीव्र बनाया। उदाहरण के लिए, यूनाइटेड प्रोग्रेसिव पार्टी के अधिकाश सदस्य 1955-56 में कर के मामले को लेकर हुए दंगों के दौरान बने। उन दिनों पार्टी के नेता ने कर के विरोध में दंगे करने वाले हजारों व्यक्तियों को अपनी कानूनी सेवाएं मुफ्त दी।[71]

राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचार : टिप्पणी

राष्ट्रवादी आंदोलनों के अलग अलग स्वरूप को देखते हुए यह सवाल उठता है कि आखिरकार इस अंतर का मूल कारण क्या है। न तो राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा राष्ट्रवादी आंदोलन चलाने का फैसला, और न ही आंदोलन में भाग लेने वालों की संख्या, कोई ऐतिहासिक अनिवार्यताएं हैं। केवल श्रीलंका ही एक ऐसा उदाहरण है जहां राष्ट्रवादी आंदोलन में विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति ही ज्यादा थे।[72] आमतौर पर राष्ट्रवादी आंदोलनों के बीच अंतर इस बात को दर्शाता है कि राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्तियों ने सोच समझकर एक तो यह फैसला किया है कि उनकी मांगें केवल तुरंत पूर्ण स्वाधीनता दिए जाने से ही सुलझ सकती हैं, और दूसरे यह कि स्वाधीनताप्राप्ति के इस प्रयत्न के लिए कुछ एक साथी ही उचित हैं।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, राष्ट्रवाद के बारे में आधुनिक मत यह है कि राष्ट्रवाद कुछ तरह के सामाजिक परिवर्तन से उपजी कुछ मान्यताओं का रूप है। इसीलिए राष्ट्रवाद का अध्ययन करने वालों ने राष्ट्रवाद कही जाने वाली भावना का मूल कारण पता लगाने के प्रयत्न किए हैं। यह मूल कारण अत्यंत महत्वपूर्ण बन गए हैं। एक प्रमुख विद्वान ने कहा है, किसी एक राष्ट्रवाद के कार्यक्रम, 'सहपरस्थितियां' हैं क्योंकि ऐसे कार्यक्रम इतिहास की कुछ निश्चित परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करते हैं।

इसके विपरीत, यदि यह तर्क दिया जाए, जो कि दिया जाता है, कि राष्ट्रवाद, और राष्ट्रवादी आंदोलन समानार्थक नहीं हैं, और राष्ट्रवादी आंदोलन वास्तव में राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग द्वारा सोच समझकर चलाए गए अभियान हैं, तो यह तर्क भी दिया जा सकता है कि ऐसे आंदोलन, इनको चलाने वालों के इरादों और लक्ष्यों,

जो सबकी सहमति और असहमति दोनों से तय हो सकते हैं, को दर्शाते हैं। चूंकि राष्ट्रवादी आंदोलन का अर्थ राष्ट्रवाद की भावना को उभारा जाना ही नहीं है, इसलिए उस जन समुदाय की भावनाओं और प्रकृति तथा आचार विचार को समझना जरूरी है, जिसमें राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्ग अपना आंदोलन चलाना चाहते हैं। कुछ अंश तक तो जन समाज के सवाल का जवाब, इतिहास, और समाजविज्ञान देता है। प्रश्न, 'हम कौन हैं ?' का उत्तर आंशिक रूप से मिलता है इतिहास के अनुभवों और समानजातीय बंधनों के संदर्भ में। लेकिन 'हम कौन हैं' का जवाब राजनीतिक संदर्भों में भी मिल सकता है, किस तरह की राजनीतिक व्यवस्था होनी चाहिए और इसके लिए क्या क्या नीतियां आदि ठीक होंगी। राष्ट्रवादी नेता सिर्फ आधुनिक युग की आवश्यकताओं को जोर शोर से नहीं बताते बल्कि वे यह आवाज भी बुलंद करते हैं, कि समुचित राजनीतिक सुव्यवस्था कैसी हो। इसी के आधार पर वे अपने लक्ष्यों तथा कार्यों का चुनाव करते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्ति, कोई दार्शनिक हैं, या कुछ निश्चित विचारधाराएं सारे राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए समान रूप से उचित हैं। इसके बजाय यह कहा जा रहा है कि कुछ एक विशिष्ट व्यक्तियों की महत्वाकांक्षाएं, उनका कारण चाहे जो भी रहा हो, राष्ट्रवादी आंदोलन के निर्माण के लिए आधार बनी हैं, और इस आंदोलन को वैध नीतियों तथा ध्येयों और उचित साथियों के संदर्भ में देखा जाता है।[74] ये महत्वाकांक्षाएं हैं समाजीकरण, सैद्धांतिक विचारधारा, तनाव, आर्थिक हित, और सुरक्षा। यही बातें, राष्ट्रवादी विशिष्ट वर्गों के बीच मतभेदों को समझने में सहायक होती हैं।

निष्कर्ष

इस अध्याय के प्रारंभ में एक विरोधाभास की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया था। यह था अल्पविकसित राज्यों की समकालीन राजनीति का अध्ययन करने वालों, और राष्ट्रवादी युग का अध्ययन करने वालों के मतों की भिन्नता। पहले वर्ग के विद्वानों का जोर क्षेत्रवाद बने रहने के बारे में है, और राष्ट्रवादी युग का अध्ययन करने वालों का विचार है कि प्रमुख विशेषता यही है कि संकीर्ण क्षेत्रवाद का अंत इसी युग में हुआ। इस नए मत के सामने पहले मत को समक्ष पाना लगभग असंभव हो गया है। इस विरोधाभास से पार पाने का एक प्रयत्न यह रहा है कि हाल तक राष्ट्रवादी संगठनों की जिस कमजोरी पर ध्यान नहीं दिया गया था अब उसी पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि यह कमजोरी, स्वाधीनता के बाद भी बनी हुई है, और तब तक रहेगी जब तक कि आधुनिकीकरण की शक्तियां काबू से बाहर नहीं हो जातीं। समाज में आधुनिकीकरण लाने वाले

तत्वों के ढह जाने से जो रिक्तता आती है उसमें स्थिरता टूट जाती है और परंपरावाद फिर उभरता है।

इस बात में सचाई तो है लेकिन साथ ही राष्ट्रवादी आंदोलन के स्वरूप पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। राष्ट्रवादी आंदोलन राष्ट्रवाद और विशिष्टतावाद के परस्पर विरोधी दलों का संगठित रूप है जिसमें विरोध के लिए एक कच्ची पक्की एकता ही नजर आती है। स्वाधीनता के बाद, परंपरावाद का उभरना इतनी बड़ी समस्या नहीं है, जितनी एकता के नए स्रोत खोजने के कार्य में राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों की असमर्थता।

संदर्भ

1. देखिए विशेष रूप से, कार्ल्टन हेज . नेशनलिज्म ए रेलिजन (न्यूयार्क : मैकमिलन, 1960) *और हैन्स कोहन · दि एज आफ नेशनलिज्म · दि फस्ट इरा आफ ग्लोबल हिस्ट्री* (न्यूयार्क : हार्पर ऐंड रो, 1962)
2. इसका अर्थ यह नहीं है कि भावनात्मक पक्ष पर बल नहीं दिया गया. उदाहरण के लिए हैन्स कोहन ने लिखा है कि राष्ट्रवाद 'किसी अन्य बात से अधिक एक मानसिक स्थिति है।' देखिए कोहन : नेशनलिज्म : इट्स मीनिंग ऐंड हिस्ट्री (प्रिंस्टन . वान नोस्त्राद, 1965), पृ॰ 9.
3. कार्ल डब्ल्यू॰ डायश : नेशनलिज्म ऐंड सोशल कम्यूनिकेशन (न्यूयार्क ऐंड कैंब्रिज : एम॰ आई॰ टी॰ ऐंड जान वाईली ऐंड सस, 1953), पृ॰ 16
4. यह मत सबसे अधिक कार्ल डायश के लेखों में है.
5. वही, पृ॰ 97.
6. वही, अध्याय 4.
7. वही, अध्याय 8.
8. देखिए, उदाहरण के लिए कोहन : नेशनलिज्म, पृ॰ 10.
9. रुपर्ट एमर्सन : फ्राम एम्पायर टु नेशन (बोस्टन : बेकन प्रेस, 1960), पृ॰ 188.
10. कार्ल डब्ल्यू डायश . 'सोशल मोबिलाइजेशन ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट, अमरीकन पालिटिकल सायंस रिव्यू, LV, 3 (1961), 494.
11. जेम्स एम॰ कोलमैन : 'नेशनलिज्म इन ट्रापिकल अफ्रीका', अमरीकन पालिटिकल सायंस रिव्यू, XLVIII, 2 (1954), 404-426
12. डेनियल लर्नर : द पासिंग आफ ट्रेडीशनल सोसायटी (न्यूयार्क : फ्री प्रेस, 1958), विशेषकर पृ॰ 43-75.
13. मार्टिन किल्सन, जूनियर : 'नेशनलिज्म ऐंड सोशल क्लासेज इन ब्रिटिश वेस्ट अफ्रीका', जर्नल आफ पालिटिक्स, XX, 2 (1958), 368-409.
14. लूसियन पाई : 'पालिटिक्स, पर्सनैलिटी ऐंड नेशन बिल्डिंग' (न्यू हैवन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962) पृ॰ 4.

15. क्लिफर्ड गीर्त्स : 'आइडियालाजी ऐज ए कल्चरल सिस्टम', डेविड ई० ऐप्टर (संपादित) : आइडियालाजी ऐंड डिस्कंटेंट (न्यूयार्क : फ्री प्रेस, 1964), पृ० 54
16. कोलमैन, पृ० 404.
17. गोपाल कृष्ण : 'दि डेवलपमेंट आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस ऐज ए मास आर्गेनाइजेशन', जर्नल आफ एशियन स्टडीज, XXV, 3 (1966), 413-430, में इन सुधारों और उनके प्रभाव के बारे में काफी विस्तार से लिखा गया है
18. डेनिस आस्टिन : पालिटिक्स इन घाना, 1946-1960 (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970), पृ० 13-14.
19. राबर्ट निस्बेट : कम्यूनिटी ऐंड पावर (न्यूयार्क : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962) पृ० 164.
20. क्राफोर्ड यंग : पालिटिक्स इन कांगो (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965), पृ० 281.
21. विल्सन : पृ० 385 औपनिवेशिक सरकार की ओर से नीति संबंधी विरोधाभास का उत्तम अध्ययन मिलेगा, ब्रिटन मार्टिन जूनियर : न्यू इंडिया, 1885 (बर्कले ऐंड लास एंजिलिस : यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1969) में
22. अफ्रीका में एसोसिएशनों की गतिविधियों के बारे में श्रेष्ठ परिचय के लिए देखिए, टामस हाजकिन : नेशनलिज्म इन कालोनियल अफ्रीका, (न्यूयार्क : न्यूयार्क यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957) पृ० 84-92
23. जी० ऐंड्रयू मैग्वायर : टुवार्ड 'उहुरु' इन तंजानिया (कैंब्रिज, इंग्लैंड : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 1969), पृ० 63-75
24. देखिए विभिन्न देशों के अध्ययन के बारे में, इसी अध्याय में.
25. यह आधार है, इस तर्क का कि राष्ट्रवाद असुरक्षा की भावना की प्रतिक्रिया है, इसे पहले बताया जा चुका है.
26. अनिल सियाल : दि इमर्जेंस आफ इंडियन नेशनलिज्म, (कैंब्रिज इंग्लैंड : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), पृ० 15-16.
27. ज्यार्जिस बैलेंडियर : दि सोशयोलाजी आफ ब्लैक अफ्रीका (न्यूयार्क : फ्रैड्रिक ए० प्रेजर, 1970), पृ० 388.
28. विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों द्वारा भारत में जातियों पर आधारित संस्थाएं बनाने के बारे में अध्ययन के लिए देखिए, लायड आई० रुडोल्फ और सूसन होबर रुडोल्फ : दि मार्डनिटी आफ ट्रेडीशन (शिकागो: यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967), भाग 1, इन संस्थाओं के बारे में मदर्मान्वित टिप्पणी, पृ० 62-63 के नीचे देखी जा सकती है.
29. मैग्वायर, पृ० 75-76.
30. रुडोल्फ ऐंड रुडोल्फ, पृ० 36-64.
31. उदाहरण के लिए देखिए, डब्ल्यू० एम० वारेन : 'अर्बन रियल वेजेज ऐंड दि नाइजीरियन ट्रेड यूनियन मूवमेंट, 1939-1960', इकानामिक डेवलपमेंट ऐंड कल्चरल चेंज, 15 (1966), पृ० 21-36
32. रिचर्ड सिसन : दि कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1972), पृ० 48

33. एरिक आर० वुल्फ. 'आन पेजेंट रिबेलियंस', इंटरनेशनल सोशल सायंस जर्नल, XXI, 2 (1969), पृ० 287.

34 एरिक आर० वुल्फ पेजेंट वार्स आफ दि ट्वेंटीयथ सेंचुरी, (न्यूयार्क : हार्पर ऍंड रो, 1969), पृ० 279.

35. जेम्स सी० स्काट · पैट्रन – क्लायट पालिटिक्स ऐंड पालिटिकल चेंज इन साउथ ईस्ट एशिया, अमरीकन पालिटिकल सायंस रिव्यू, LXXVI, 1 (1972), 108.

36 एरिक एच० जैकोबी एग्रेरियन अनरेस्ट इन साउथ ईस्ट एशिया, (न्यूयार्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1949), पृ० 21.

37 वुल्फ · पेजेंट वार्स, पृ० 295

38 देखिए, वाल्टर हाजर · एग्रेरियन मूवमेंट्स इन इंडिया (पुस्तक आ रही है) इन संगठनों की बहुत सी गतिविधियों का श्रेष्ठ सर्वेक्षण

39. बेंग्त सडक्लेर . बाटू प्राफेट्स इन साउथ अफ्रीका, दूसरा सस्करण, (न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1961). कुछ निश्चित आंदोलनो के अध्ययन के लिए देखिए, राबर्ट सी० मिचेल, 'रिलिजियस प्रोटेस्ट ऐंड सोशल चेंज : दि ओरिजिंस आफ अलाडूरा मूवमेंट इन वेस्टर्न नाइजीरिया', राबर्ट आई रोटबर्ग ऍंड अली ए० मजरुई, (सपादित) : प्रोटेस्ट ऍंड पावर इन ब्लैक अफ्रीका (न्यूयार्क आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970); जेम्स डब्ल्यू० फर्नांडिस : 'दि एकमैशन आफ थिग्स पास्ट अलार आयीग ऍंड ब्वीती ऐंज मूवमेंट्स आफ प्रोटेस्ट इन सेंट्रल ऍंड नार्दन गेबान', टामस हाजकिन : नेशनलिज्म ऐंड कालोनियल अफ्रीका, (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956) : जार्ज शेपर्सन : 'ईथियोपियनिज्म ऍंड अफ्रीकन नेशनलिज्म', फाइलान, (14, मार्च 1953), 9-19 और 'दि पालिटिक्स आफ अफ्रीकन चर्च सेपरेटिस्ट मूवमेंट्स इन ब्रिटिश सेंट्रल अफ्रीका, 1892-1916', अफ्रीका, XXIV (जुलाई 1954), 233-237; और माइकेल बैंटन : 'अफ्रीकन प्राफेट्स', रेस, V, 2 (अक्तूबर 1963) 42-55

40 आर्य समाज सबंधी अध्ययन के लिए देखिए, केनेथ जोंस : 'दि आर्य समाज इन पंजाब, 1880-1902', (पी-एच० डी० की थीसिस, यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया, बर्कले, 1965); दक्षिण एशिया में मुस्लिम पुनरुत्थान सबंधी सामग्री के लिए देखिए, अजीज अहमद : इस्लामिक माडर्निज्म इन इंडिया ऍंड पाकिस्तान (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967).

41. वही, पृ० 254.

42. सहकार समितियों का अध्ययन करने के बाद एक पुस्तक ऐसी लिखी गई है जिसके शीर्षक में अधिक व्यापक, सैद्धांतिक बातें इसके अंदर हैं. देखिए आर्थर डारविन : दि रोल आफ एग्रेरियन कोआपरेटिव्स इन दि डेवलपमेंट आफ कीनिया, स्टडीज इन कपेरेटिव इंटरनेशनल डेवलपमेंट, V, 1969-70 नंबर-6

43 एम० ए० एम० न्याग : 'प्राब्लेम्स आफ साबियन कोआपरेटिव्स' (एम० ए० की थीसिस, यूनिवर्सिटी आफ वर्जीनिया, 1971), पृ० 14-26.

44. सेंग्वायर, पृ० 109-110.

45 वही, पृ० 109

46 सरक्षक-सरक्षित सबंध को दो ऐसे व्यक्तियों के बीच द्विपक्षीय आधार पर दोस्ती का विशेष उदाहरण कहा जा सकता है जिसमें सामाजिक आर्थिक दृष्टि से ऊंचे दर्जे का व्यक्ति (सरक्षक),

अपने प्रभाव और साधनों से, एक अन्य निचले दर्जे के व्यक्ति (संरक्षित) को सुरक्षा या लाभ, या दोनों ही प्रदान करता है जिनके बदले में निचले दर्जे वाला व्यक्ति अपने संरक्षक को सामान्य समर्थन, सहायता, और व्यक्तिगत सेवाएं देता है ऐसे सबधो के बारे में विशेष रूप से देखिए, जार्ज एम० फोस्टर :' डायेडिक काट्रैक्ट इन तिसत्सुंसान ' पैट्रन-क्लायंट रिलेशनशिप' अमरीकन एथ्रोपोलाजिस्ट, LXV (1963), 1280-1294; एरिक वुल्फ : 'किनशिप, फ्रैंडशिप ऐंड पैट्रन-क्लायट रिलेशन', माइकेल बैटन (सपादित) : दि सोशल एथ्रोपोलाजी आफ काम्प्लेक्स सोसायटीज, एसोसिएशन आफ ऐप्लाइड सोशल एथ्रोपोलाजी मोनोग्राफ 4 (लदन टैविस्टाक पब्लिकेशन, 1966) पृ० 1-22 : जान डकन पावेल ' 'पेजेंट सोसायटी ऐंड क्लायेंटेलिस्ट पालिटिक्स', अमरीकन पोलीटिकल सायस रिव्यू, LXIV, 2 (1970), 411-425; रैने लैमरचद : 'पालिटिकल क्लायेंटलिज्म ऐंड एथनिसिटी इन ट्रापिकल अफ्रीका : कपीटिंग सोलीडेरिटीज इन नेशन बिल्डिंग', अमरीकन पालिटिकल सायस रिव्यू LXVI, 1 (1972), 68-90; और स्काट.

47. लैमरचंद, पृ० 80.

48 काग्रेस के विशिष्ट व्यक्तियों की ओर से उनके कार्यों के विस्तार के श्रेष्ठ अध्ययन के लिए देखिए चार्ल्स हाईमसाथ : इडियन नेशनलिज्म ऐंड हिंदू सोशल रिफार्म (प्रिस्टन : यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964).

49 इन विभाजनो के बारे मे देखिए डेनियल आरगोव : माडरेट्स ऐंड एक्स्ट्रीमिस्ट्स इन दि नेशनलिस्ट मूवमेंट (बबई : एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1967).

50. यह अधिकाश भाग कृष्ण से उद्धृत किया गया है.

51. ऐरिस्टिड जोलबर्ग : वन पार्टी गवर्नमेंट इन दि आइवरी कोस्ट (प्रिस्टन : प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964) पृ० 113.

52. वही, पृष्ठ 116.

53. अन्य जनसमर्थन वाली पार्टियो के बारे मे सामग्री के लिए, देखिए उदाहरणार्थ डेविड ई० ऐप्टर : घाना इन ट्राजिशन (न्यूयार्क : ऐथेनियम, 1963); लार्स रूडबेक : पार्टी ऐंड पीपुल : ए स्टडी आफ पालिटिकल चेंज इन टगूनिशिया (न्यूयार्क . फ्रेडरिक ए प्रैजर, 1968); रिचर्ड एल० स्कलार, नाइजीरियन पालिटिकल पार्टीज (प्रिस्टन : प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1963); और जौन कैडी : ए हिस्ट्री आफ माडर्न बर्मा (ईथाका : कारनेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1958).

54. ऐरिस्टीड जोलबर्ग : क्रिऐटिंग पालिटिकल आर्डर : दि पार्टी स्टेट्स आफ वेस्ट अफ्रीका (शिकागो रैंड. मैकनेली ऐंड कपनी, 1966), पृ० 15

55. वही, पृ० 19-36.

56. वही, पृ० 13.

57. जोलबर्ग : वन पार्टी गवर्नमेंट इन दि आइवरी कोस्ट, पृ० 116

58. सगठनात्मक स्वरूप के सिद्धात के बारे में देखिए प्रथम अध्याय का संदर्भ सख्या 2.

59 'भूमिका' की परिभाषा इन शब्दो में दी जा सकती है : किसी एक प्रणाली में निश्चित पदो पर आरूढ़ व्यक्तियों का अपेक्षित आचरण.

60. सगठनात्मक 'स्वायत्तता' की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है : किसी एक संगठन की अपनी भूमिकाएं, मानदड, मूल्य और उद्देश्य किसी अन्य दल अथवा सस्था की अपेक्षा कितने भिन्न हैं. इस संबध में देखिए हटिंगटन, पृ० 20-22.

61 रेने लैमार्चंद 'पैट्रिस लुमुंबा', डब्ल्यू० ए० ई० स्कुनिक (संपादित) : अफ्रीकन पालिटिकल थाट : लुमुंबा, एन्क्रूमा, एंड तूरे; मोनोग्राफ सीरीज आफ इंटरनेशनल स्टडीज, मोनोग्राफ, थर्ड (पाच, नंबर तीन और चार, 1967-68 (डेनवर, कोलोरेडो : यूनिवर्सिटी आफ डेनवर 1968)

62 लैमार्चंद पृष्ठ 83, 86-88

63 वही, पृ० 136

64 उदाहरण के लिए देखिए, पाल ब्रास : फैक्शनल पालीटिक्स इन ऐन इंडियन स्टेट (बर्कले ऐंड लास एंजिलस : यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1965); डोनाल्ड बी रोसेनथाल : दि लिमिटेड एलीट (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1970; और आर० विलियम लिडल : एथनीसिटी, पार्टी ऐंड नेशनल इंटीग्रेशन : ऐन इंडोनेशियन केस स्टडी (न्यू हेवन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970)

65 लैमार्चंद, पृ० 196-212

66. गोरन हाईडन : पालिटिकल डेवलपमेंट इन रूरल तंजानिया (नैरोबी : ईस्ट अफ्रीका पब्लिशिंग हाउस, 1969), पृ० 125-140

67 वही पृ० 31, और गेब्रियल जोनबर्ग : 'पालिटिकल रिवाईवल इन माली', अफ्रीका रिपोर्ट, 10, 7 (1965), 18.

68. अल्जीरिया के संबंध में देखिए विलियम बी क्वान्ट : रिवाल्यूशन एंड पालिटिकल लीडरशिप : अल्जीरिया, 1954-1968 (कैंब्रिज, मैसाच्युसेट्स : एम० आई० टी० प्रेस, 1969).

69. देखिए जेराल्ड ए० हीगर : 'दि पालिटिक्स आफ इंटीग्रेशन : कम्युनिटी, पार्टी एंड इंटीग्रेशन इन पंजाब' (पी-एच० डी० थीसिस, यूनिवर्सिटी आफ शिकागो, 1971), पृ० 16-49.

70. मार्टिन किलसन : पालिटिकल चेंज इन ए वेस्ट अफ्रीकन स्टेट (कैंब्रिज, मैसाच्युसेट्स : हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966), पृ० 249-265.

71. वही, पृ० 237

72. देखिए डब्ल्यू० हावर्ड रिगिन्स : सिलोन : डाइलेमाज आफ ए न्यू नेशन (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960); और कालविन ए० वुडवर्ड : दि ग्रोथ आफ दि पार्टी सिस्टम इन सिलोन (प्रोवीडेंस : ब्राउन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969).

73. लियोनार्ड बिंडर : दि आइडियोलाजीकल रिवाल्यूशन इन दि मिडिल ईस्ट (न्यूयार्क : जान वाईली ऐंड सन्स, 1964), पृ० 109.

74. इस तर्क के लिए कि आर्थिक हित ही राष्ट्रवाद का आधार है, देखिए किलसन : 'नेशनलिज्म ऐंड सोशल क्लासेस'. 'तनाव' और 'असुरक्षा' की भूमिका के बारे में तर्क के लिए देखिए गोर्स्की; पाई, और चार्ल्स एफ० एंडरेन : 'दि पालिटिकल थाट आफ सेकूतूरे', स्कुरनिक (संपादित), पृ० 129-136

3

राजनीतिक स्थिरता की खोज

स्वाधीनता मिलने पर राष्ट्रवादी आंदोलन के नेताओं के लिए प्रबंध का संकट उठ खड़ा होता है। उन्हें न केवल अपने और नवोदित राज्य के लिए नए ध्येय तैयार करने होते हैं बल्कि उन्हें प्राप्त करने के लिए साधन भी जुटाने होते हैं। अब चूंकि हर एक की अलग अलग पसंद-नापसंद होती है इसलिए विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों को आपस में ही, और अन्य वर्गों के साथ, कुछ हद तक राजनीतिक समेकन (कंसालिडेशन) उत्पन्न करना होता है। राजनीतिक दृढ़ता अथवा एकता की तीन प्रमुख आवश्यकताएं हैं: विभिन्न राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एकता, विशिष्ट व्यक्तियों की समान पसंद को जनता की मान्यता, और चूंकि विकास के ध्येय प्राप्त करने के लिए जनता की मान्यता ही काफी नहीं है इसलिए जनसमर्थन भी होना चाहिए।

जिस समय स्वाधीनता प्राप्त होती है उस समय ये तीन मूल आवश्यकताएं विद्यमान नहीं होतीं। उस समय तो राष्ट्रवादी युग के समय की तीव्र राजनीतिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप विभिन्न मतों वाले विशिष्ट व्यक्तियों और उनके अनुयायियों के बीच एक प्रकार का मतैक्य ही होता है। जिन अर्थों में समाज के केंद्र और परिधि की बात की जाती है उस तरह का केंद्र, राष्ट्रवादी आंदोलन में लगभग अस्तित्वविहीन होता है।[1] आंदोलन के लिए बनाए गए ध्येय और प्रतीक उतने ही भिन्न होते हैं जितना कि स्वयं आंदोलन।

राजनीतिक दृढ़ता लाने की समस्या का सबसे पहले अध्ययन करने वाले राजनीतिशास्त्रियों को लगभग स्वाभाविक रूप में ही सैद्धांतिक विचारधारा, करिश्मा अथवा

चमत्कार, और राजनीतिक पार्टियो को, दृढ़ता प्राप्ति का माध्यम मानना पड़ा। हम 'लगभग स्वाभाविक रूप से' शब्दो का प्रयोग कर रहे हैं तो केवल इसलिए नही कि इन राज्यो के नेता स्वयं भी सैंद्धांतिक विचारधारा, राजनीतिक पार्टियों और अपने व्यक्तिगत गुणो पर बल देते थे, बल्कि इसलिए भी कि एक मायने में ये सभी बातें पश्चिमी देशो की नजर में सबसे ज्यादा थी। तभी तो चमत्कारी नेतृत्व को बहुत से जनसमूहों का साझा केंद्रबिंदु समझा गया, जबकि प्रारंभिक रूप में इन अलग अलग समूहों अथवा दलों के बीच कोई आपसी संबंध नजर नही आता था। एन्क्रूमा, सुकार्नो, नेहरू, और हुफूए-बोइनी ने वास्तव मे राज्य को दृढ़ता प्रदान की।

> अपने अनुयायियों के लिए मानदंडो के स्रोत बनकर, समाज के अलग अलग वर्गों के बीच समानता की भावना पैदा करने मे सहायक प्रतीक बनकर, नए संस्थात्मक ढाचे मे सत्ता का प्रमुख व्यक्ति होने के नाते राजनीतिक एकता का केंद्रबिंदु बनकर और नए क्षेत्र के समुदाय का ऐसा जीवित प्रतीक बनकर जो व्यक्तियो को अपने अपने परंपरागत जातीय दलों के प्रति आस्थाओं से ऊपर उठने का प्रोत्साहन देता था।[2]

सैंद्धांतिक विचारधारा, विशिष्ट व्यक्तियो और साधारण जन के लिए सिद्धांतों की एक समान रूपरेखा प्रस्तुत करती थी।[3] पार्टी की शाखाओं, राजनीतिक पार्टियों, विशेषकर चमत्कारी और प्रभावशाली व्यक्तित्वों वाले नेताओ, और काफी विकसित सैंद्धातिक विचारधाराओं वाली पार्टियों के रूप मे एकता के नए दलों की स्थापना से आम जनता की सहमति और समर्थन प्राप्त करने के माध्यम तैयार हुए।

हाल की घटनाओ से यह स्पष्ट हुआ है कि ये सभी सैद्धांतिक धारणाएं राजनीतिक एकता तथा दृढ़ता की प्राप्ति से सबद्ध समस्याओं को जन साधारण तक पहुंचाने की सीमित क्षमता रखती हैं। चमत्कारी प्रभाव जहां कही था अल्पकालिक सिद्ध हुआ और जैसा डेविड ऐप्टर ने घाना संबंधी अपने संशोधित अध्ययन में कहा है, एकता लाने की दिशा में यह तनिक भी प्रभावशाली हो सकता है इस विषय में संदेह है।[4] सैद्धांतिक विचारधारा भी इसी तरह अपनी सीमाओ में बंधी है। जैसा हैनरी बिएनन ने कहा है :

> यह मान लेना गलत है कि निश्चित सैंद्धातिक विचारधाराएं सामान्य रूप से उचित हैं; इन्हें कुछ चुने हुए लोग ही अपना सकते हैं जिन्हें पार्टी के अंदर ही सत्ता के केंद्र से भी हटाया जा सकता है। कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की यह महत्वाकांक्षा कि वे किसी एक पार्टी के माध्यम से अपने अपने समाज में परिवर्तन

ला सकते हैं महत्वपूर्ण हो भी सकती है और नही भी। उनका विचार है कि यह एक ऐसी पार्टी हो जो समाज के सभी वर्गों और सामाजिक पहलुओं तक फैली हो और समाज के साधनों को जुटा सकती हो।[5]

इसके अलावा अल्पविकसित समाजों में राजनीतिक पार्टियों के अध्ययन से राजनीतिक संगठन और दृढ़ता की प्रक्रिया को स्पष्ट करने मे सफलता नहीं मिली है। पहले किए गए अध्ययनों में अक्सर यह गलत धारणा व्यक्त की गई है कि राजनीतिक विशिष्ट वर्ग की संगठनात्मक महत्वाकांक्षाएं वास्तव मे एक सत्य हैं और इनसे एक ऐसी एकता पैदा होने की बात कही गई जो 'असल में वहा थी ही नहीं।[6] बाद के अध्ययनों में हालांकि वास्तविकता को ज्यादा ध्यान में रखा गया फिर भी दृढ़ीकरण की प्रक्रिया मे पार्टी की भूमिका पर विशेष बल दिया जाना जारी रहा।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि नेताओं का चमत्कारिक व्यक्तित्व अथवा करिश्मा, सैद्धांतिक विचारधारा और राजनीतिक पार्टिया, पूरी तरह राजनीतिक एकता लाने की समस्या के हल के लिए काफी नही हैं। एक तो, राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आपसी गुटबंदी के कारण अल्पविकसित राज्यों में बहुत जल्दी जल्दी अस्थिरता आने लगी जिसपर बहुत टिप्पणिया भी हुईं। दूसरे, इस गुटबंदी का सैद्धांतिक विचारधारा पर कोई प्रभाव नही पड़ा। अधिकांश विश्लेषणकर्ताओं ने विशिष्ट वर्गों और उनकी संभावित क्षमताओं की भिन्नता पर ज्यादा जोर दिया।

राजनीतिक दृढ़ीकरण को, अधिक से अधिक विशिष्ट वर्ग और साधारण जन के बीच एकता की प्रमुख समस्या ही समझा गया। यहां भी जो विचार व्यक्त किए गए वे साधारण थे। विशिष्ट वर्ग और साधारण जन के बीच एकता को केंद्र और बाह्य परिधि के बीच एकमात्र सफल संपर्क के संदर्भ में देखा गया, यानी नेताओं का करिश्मा और पार्टी आदि। इसी बात को यदि दूसरी तरह से कहा जाए तो जहां कहीं भी इस तरह के संपर्क विद्यमान थे वहां जिस तरह के संबंध स्थापित हुए, उन्हें वास्तविकता से कही अधिक औचित्य प्रदान किया गया। इन संपर्कों के वास्तव में एक से अधिक होने, और उनके संभावित परस्पर विरोध को या तो देखा नही गया, या वे नजर ही नही आए। हाल में तथाकथित एकस्तंभीय राजनीतिक पार्टियों के संशोधनवादी अध्ययनों को इस आलोचना से मुक्ति नही दी जा सकती। एक ओर तो इन अध्ययनों में केंद्र और बाह्य परिधि के बीच एकता की काफी कमी की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है, दूसरी ओर, एक ही व्यवस्था, इस मामले में एक राजनीतिक पार्टी व्यवस्था, के विकास के संपर्क में राजनीतिक एकता पर विशेष ध्यान दिया गया है।[7]

यहां यह तर्क दिया जाएगा कि नई राजनीतिक प्रणालियों के अलग अलग खंडों में विभाजित होने के कारण किसी भी शासन की—चाहे वह किसी भी प्रकार का हो या सत्ताधारी विशिष्ट व्यक्तियों के किसी एक गुट की कोई भी महत्वाकांक्षा क्यों न हो—की उस राजनीतिक प्रणाली को सुदृढ़ करने की क्षमता सीमित हो जाती है। जैसा पहले कहा गया है, विकसित राज्यों में राजनीतिक प्रक्रिया, विशिष्ट वर्गों के एक दूसरे के साथ सहमत होने के प्रयत्नों पर आधारित होती है जिसमें राजनीतिक केंद्र में राष्ट्रीय संस्थाएं बन सकें और इनके लिए समाज का समर्थन जुटाया जा सके। इस प्रक्रिया में जो संस्थाएं उभरती हैं उनकी विशेषता यह है कि अर्धस्वायत्त विशिष्ट वर्गों और स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों के दलों के बीच गठबंधन रहते हैं।

राजनीतिक स्वाधीनता के आने से राजनीति के संचालन का संदर्भ ही आमूल रूप से परिवर्तित हो जाता है। स्वाधीनता के साथ, कम से कम सिद्धांत रूप में तो, केंद्र सरकार और राजनीतिक संस्थाओं के एक राजनीतिक केंद्र की व्यवस्था होनी है, यह औपनिवेशिक युग के दौरान स्थापित राजनीतिक संगठनों की देन और नए नेताओं के सतत प्रयत्नों से होता है। इन संस्थाओं के बीच नीतियों पर आधारित राजनीतिक भूमिकाएं और इन्हें निभाने के नियम निर्धारित किए जाते हैं।

इस संदर्भ में राष्ट्रवादी आंदोलन की खंडों में विभाजित होने की वृत्ति बदल जाती है। ये विभिन्न खंड बिल्कुल समाप्त तो नहीं हो जाते, पर नई प्रणाली में, नए राजनीतिक केंद्र के भीतर विभिन्न नीतियों पर आधारित राजनीतिक भूमिकाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए राजनीतिक खींचातानी शुरू हो जाती है। नई नीतियों पर आधारित राजनीतिक भूमिकाओं तक पहुंचने और उनपर नियंत्रण प्राप्त करने से नीति निर्धारण के काम में हिस्सेदार बनने का मौका मिलता है, और शायद इससे भी ज्यादा महत्व की बात यह है कि सरकार को होने वाले प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभों के वितरण में भी साझेदारी मिलती है। वरिष्ठ सरकारी और राजनीतिक पदों पर नियंत्रण होने से महत्वपूर्ण निर्णय लेने की व्यवस्था पर भी नियंत्रण हो जाता है; जैसे अनुपलब्ध साधनों के बंटवारे का काम, उदाहरण के लिए व्यापारिक लाईसेंस, सरकारी ऋण और नौकरियां। इसके अलावा इस बात पर भी नियंत्रण हो जाता है कि सरकार किसी निश्चित दल और उनकी मांगों को कहां तक पूरा करेगी। 'विरोध आंदोलनों के संचालक' से बदलकर राष्ट्रवादी आंदोलन, राष्ट्रीय क्षेत्र में नई भूमिकाओं में उतरते हैं जिनमें विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति और अन्य दल प्रभुत्व पाने के लिए एक दूसरे से होड़ लगाते हैं और फिर इसी प्रभुत्व के माध्यम से, सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहते हैं।

अल्पविकसित समाजो मे सरकार और उसकी शक्ति ही, राजनीतिक संगठनो के सृजन और उन्हें बनाए रखने का मूल स्रोत है। यानी एक बार सरकार पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया जाता है तो जनशक्ति का प्रयोग वास्तव मे व्यक्तिगत उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किया जाता है। सत्तारूढ़ विशिष्ट व्यक्तियों के सम्मिलन का विस्तार प्रतिस्पर्धा में उनके अन्य दलों के मूल्य पर होता है। अल्पविकसित प्रणालियो में राजनीतिक संस्थाएं वास्तव में संस्थाएं नही हैं जितनी कि क्षणिक गठबंधनो के लिए एक मुखौटा। सरकारी सत्ता और साधनों पर नियंत्रण से चाहे वे सीमित हों, वे साध्यम प्राप्त हो जाते हैं जिनसे ये संस्थाएं विकसित हो सकती हैं। डराने-धमकाने, फायदा पहुंचाने, संरक्षण प्रदान करने जैसे तरीको के प्रयोग और सरकार की सीमित वैधता के प्रयोग मे ये संस्थाएं (जैसे कि राजनीतिक पार्टी) और इनपर नियंत्रण रखने वाले गठबंधनों का निर्माण तथा विस्तार किया जाता है और अन्य दलों तथा विशिष्ट व्यक्तियों का समर्थन व सहयोग प्राप्त किया जाता है।

सरकार और राजनीतिक पार्टियों जैसी अन्य संस्थाओ के इस आपसी गठबंधन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। विद्वानों की वर्तमान धारणाओं के अनुसार राजनीतिक पार्टिया सरकारी संस्थाएं होने के अलावा विशेष और अलग वृत्ति वाले संगठन भी हैं।[8] इस प्रकार की धारणाओ मे अल्पविकसित राज्यों की राजनीतिक संस्थाओं की संगठनात्मक कमजोरियों पर कोई ध्यान नही दिया गया है। बहुत कम संस्थाएं ऐसी होती हैं जिनके पास अपने सुचारु संचालन के समुचित साधन हों। जो संगठन एक संस्था प्रतीत होना है वह वास्तव में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के छोटे मोटे गठबंधन मे अधिक कुछ नही होता, जैसे कोई विपक्षी राजनीतिक पार्टी होती है। इसके विपरीत, आमतौर पर सरकारी पार्टिया ठीक वही होती हैं, जिनका गठन सरकारी सत्ता और व्यवस्था के माध्यम से होता है। यदि ऐसी पार्टी के हाथ में यह सत्ता और व्यवस्था चली जाए तो वह भी विशिष्ट व्यक्तियों का एक छोटा मोटा दल ही बनकर रह जाएगी।

पार्टियों वाले और बिना पार्टियों वाले राज्यों के बीच तथा राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा शासित और सैनिक या अधिकारीतंत्र के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा शासित राज्यों के बीच, लगभग परंपरागत विभेदो को बढाचढाकर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। सत्ता में आने के बाद विशिष्ट वर्ग आपसी गठबंधन मे जिस प्रकार के संगठनों का निर्माण करते हैं, उसके संदर्भ मे, विभिन्न प्रकार के शासनों मे भिन्नता हो सकती है। उदाहरण के लिए पार्टी सरकारें अपनी क्रम परंपरा मे ही इस तरह के गठबंधन वाली व्यवस्था पर ध्यान दे सकती हैं; अधिकारी तंत्र की सरकारें यही कार्य नौकरियों की श्रेणी मे कर सकती है आदि।[9] फिर भी

समाप्त करने की क्षमता प्राप्त हुई। विशिष्ट व्यक्तियों के ऐसे गठबंधन किसी एक पार्टी की श्रेणियों में ही नजर नही आते। सोमालिया में तीन राजनीतिक दलों के गठबंधन का प्रभाव सरकार पर था। प्रत्येक दल अलग अलग कबीलों का प्रतिनिधि था। थाईलैंड में सरकारों का गठन राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के निश्चित गुटों द्वारा किया गया।

संभवतः विभिन्न दलों के सम्मिलन का और अधिक व्यापक आधार एक तरह का पितृवाद (पैट्रिमोनिअलिज्म) है जिसमें विशिष्ट वर्गों के लोग एक पुश्तैनी (पैट्रिमोनिअल) नेता के आसपास संगठित हो जाते हैं और उस नेता के व्यक्तिगत गुणो में आस्थाओं, और उसके साथ अपने संबंधों से मिलने वाले भौतिक लाभों के कारण आकृष्ट होते हैं।[14] लाभ यही है कि यह पुश्तैनी नेता विशेष पदों पर अपने चुने हुए अनुयायियों को नियुक्त कर सकता है। जैसा मैक्स वेबर का कहना है :

> जिस व्यक्ति का अनुसरण किया जाता है और आज्ञा मानी जाती है उसके अंदर कुछ व्यक्तिगत प्रभाव और सत्ता होती है जो उसे अपने परंपरागत दर्जे से पैतृक निधि के रूप में मिली होती है। जो संगठित दल सत्ता का संचालन करता है वह मूलतः अपने उन व्यक्तिगत आस्थाओं के संबंधो पर आधारित होता है जो शिक्षा की समान प्रक्रिया के माध्यम से बनी होती हैं। जिस व्यक्ति के अंदर सत्ता निहित है वह कोई 'अति श्रेष्ठ' व्यक्ति नहीं है बल्कि अपने अनुयायियों का व्यक्तिगत 'नायक' है। उसके अधीन कार्य करने वाले प्रशासनिक कर्मचारी मुख्य रूप से अधिकारीगण नही होते बल्कि उसके परम कृपापात्र व्यक्ति होते हैं। जिन्हें सत्ता के अधिकार दिए जाते हैं वे 'किसी एसोसिएशन के सदस्य' नही होते बल्कि या तो उसके पुराने 'साथी' या उससे 'प्रभावित अनुयायी' होते हैं।
>
> अपने नेता या सरदार के साथ उसके प्रशासनिक कर्मचारियों के संबंध, पदों के कर्तव्यों के कारण नही, बल्कि उसके प्रति कर्मचारियों की व्यक्तिगत आस्था से बनते हैं।[15]

पुश्तैनी विशिष्ट वर्ग के बीच आपसी समन्वय और एकता मोरक्को में स्पष्ट नजर आती है जहा की राजनीतिक प्रणाली कई तरह के प्राचीन संबंधों तथा आपसी हितो वाले गुटों में बंटी हुई है और प्रत्येक गुट का अपना ही विशिष्ट व्यक्ति है। मोरक्को के शाह हसन द्वितीय ने विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियो के साथ कई तरह के समझौतों के माध्यम से राजनीतिक प्रणाली पर नियंत्रण रखने का प्रयत्न किया है। उन्होंने

दृढ़ता और स्थिरता लाने के लिए सभी सरकारों को गठबंधन की प्रक्रिया का ही सहारा लेना पड़ता है।

राजनीतिक केंद्र का गठन करना

राजनीतिक स्थिति को दृढ़ करने के काम के लिए विशिष्ट व्यक्तियों के बीच काफी आपसी सहमति की जरूरत होती है ताकि सरकार का गठन हो सके। विशिष्ट व्यक्तियों का इस तरह का गठबधन अत्यंत अस्थाई होता है। हालांकि विभिन्न विशिष्ट व्यक्ति और उनके अनुयायी प्रभावशाली राजनीतिक इकाइयों की स्थापना के लिए आपस मे गठबंधन करते हैं, फिर भी वे नई व्यवस्था के अंदर अपना कुछ अलग अस्तित्व बनाए रखने पर जोर देते हैं।

इस तरह की आपसी सहमति और परस्पर समर्थन, अल्पकालिक भौतिक लाभ के लिए विशिष्ट व्यक्ति की लालसा का ही परिणाम हो सकता है। नए राजनीतिक केंद्र मे जो सरकारी व्यवस्था स्थापित होती है और जो औपनिवेशिक युग की देन तथा स्वाधीनता से पैदा होती है, वास्तव में विभिन्न स्वीकृतियां प्रदान करने का केंद्र बन जाती है, जैसे नई नौकरियो, ऋणों, आर्थिक सहायता, अनुकूल प्रशासनिक कानून आदि की स्वीकृतिया। ये सभी काम करने की सामर्थ्य के आकर्षण के कारण ही अलग अलग विशिष्ट वर्गों को एक दूसरे से मिलने की प्रेरणा मिल सकती है।

इस प्रकार के गठबधन, श्रीलका और सीयेरा लियोने मे नजर आए। श्रीलंका में प्रथम शासक दल, यूनाइटेड नेशनलिस्ट पार्टी का गठन, सिलोन नेशनल कांग्रेस, सिहला महासभा (सिंहलियों का एक सांप्रदायिक दल), आल सिलोन मुस्लिम लीग, मूर्स एसोसिएशन और कई तमिल नेताओं, जैसे अलग अलग संगठनों के विशिष्ट व्यक्ति के गठबधन से बनी।[10] पार्टी के सविधान में इस बात की अनुमति थी कि शामिल होने वाले अलग अलग दल अपने पृथक संगठन बनाए रख सकते हैं और उन्होने ऐसा किया भी।[11] इस मिलीजुली व्यवस्था को दृढ़ता मिली इस भावना मे कि सरकार पर अपना प्रभुत्व जमाया जाए। पार्टी ने 'समर्थन जुटाने और अपने नेताओं तथा विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक वर्गों के बीच एकता स्थापित करने' के लिए सरकारी पदों से प्राप्त सत्ता का उपयोग किया।[12] पार्टी की कार्यसमिति में उन एसोसिएशनों के नेता थे जिन्होने मिलकर पार्टी की स्थापना की थी। इसी प्रकार सीयेरा लियोने पीपुल्स पार्टी, प्रोटेक्टोरेट के राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों की दो एसोसिएशनों (एक की स्थापना कबीलों के सरदारों ने की थी और दूसरी राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों की थी) से मिलकर बनी थी जिससे प्रोटेक्टोरेट के सदस्यों को सीयेरा लियोने की राजनीति पर क्रियोल लोगों का प्रभुत्व

समाप्त करने की क्षमता प्राप्त हुई। विशिष्ट व्यक्तियों के ऐसे गठबंधन किसी एक पार्टी की श्रेणियों में ही नजर नही आते। सोमालिया में तीन राजनीतिक दलों के गठबंधन का प्रभाव सरकार पर था। प्रत्येक दल अलग अलग कबीलों का प्रतिनिधि था। थाईलैंड में सरकारों का गठन राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के निश्चित गुटों द्वारा किया गया।

संभवत: विभिन्न दलों के सम्मिलन का और अधिक व्यापक आधार एक तरह का पितृवाद (पैट्रिमोनिअलिज्म) है जिसमे विशिष्ट वर्गों के लोग एक पुश्तैनी (पैट्रिमोनिअल) नेता के आसपास संगठित हो जाते हैं और उस नेता के व्यक्तिगत गुणों में आस्थाओं, और उसके साथ अपने संबंधों मे मिलने वाले भौतिक लाभों के कारण आकृष्ट होते हैं।[14] लाभ यही है कि यह पुश्तैनी नेता विशेष पदों पर अपने चुने हुए अनुयायियों को नियुक्त कर सकता है। जैसा मैक्स वेबर का कहना है :

> जिस व्यक्ति का अनुसरण किया जाता है और आज्ञा मानी जाती है उसके अंदर कुछ व्यक्तिगत प्रभाव और सत्ता होती है जो उसे अपने परंपरागत दर्जे से पैतृक निधि के रूप में मिली होती है। जो संगठित दल सत्ता का संचालन करता है वह मूलत: अपने उन व्यक्तिगत आस्थाओं के संबंधों पर आधारित होता है जो शिक्षा की समान प्रक्रिया के माध्यम से बनी होती हैं। जिस व्यक्ति के अंदर सत्ता निहित है वह कोई 'अति श्रेष्ठ' व्यक्ति नही है बल्कि अपने अनुयायियों का व्यक्तिगत 'नायक' है। उसके अधीन कार्य करने वाले प्रशासनिक कर्मचारी मुख्य रूप मे अधिकारीगण नही होते बल्कि उसके परम कृपापात्र व्यक्ति होते हैं। जिन्हें सत्ता के अधिकार दिए जाते हैं वे 'किसी एसोसिएशन के सदस्य' नहीं होते बल्कि या तो उसके पुराने 'साथी' या उससे 'प्रभावित अनुयायी' होते हैं।
>
> अपने नेता या सरदार के साथ उसके प्रशासनिक कर्मचारियों के संबंध, पदों के कर्तव्यों के कारण नही, बल्कि उसके प्रति कर्मचारियों की व्यक्तिगत आस्था से बनते हैं।[15]

पुश्तैनी विशिष्ट वर्ग के बीच आपसी समन्वय और एकता मोरक्को मे स्पष्ट नजर आती है जहां की राजनीतिक प्रणाली कई तरह के प्राचीन संबंधों तथा आपसी हितों वाले गुटों मे बंटी हुई है और प्रत्येक गुट का अपना ही विशिष्ट व्यक्ति है। मोरक्को के शाह हसन द्वितीय ने विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के साथ कई तरह के समझौतों के माध्यम मे राजनीतिक प्रणाली पर नियंत्रण रखने का प्रयत्न किया है। उन्होंने

दृढ़ता और स्थिरता लाने के लिए सभी सरकारों को गठबंध
सहारा लेना पड़ता है।

राजनीतिक केंद्र का गठन करना

राजनीतिक स्थिति को दृढ़ करने के काम के लिए विशिष्ट
आपसी सहमति की जरूरत होती है ताकि सरकार का
व्यक्तियों का इस तरह का गठबंधन अत्यंत अस्थाई होता
विशिष्ट व्यक्ति और उनके अनुयायी प्रभावशाली राजनीतिक
लिए आपस मे गठबंधन करते है, फिर भी वे नई व्यवस्था के
अस्तित्व बनाए रखने पर जोर देते हैं।

इस तरह की आपसी सहमति और परस्पर समर्थन, अल
लिए विशिष्ट व्यक्ति की लालसा का ही परिणाम हो सकत
मे जो सरकारी व्यवस्था स्थापित होती है और जो औप
स्वाधीनता मे पैदा होती है, वास्तव मे विभिन्न स्वीकृति
जाती है, जैसे नई नौकरियों, ऋणों, आर्थिक सहायता
आदि की स्वीकृतियां। ये सभी काम करने की सामर्
अलग अलग विशिष्ट वर्गों को एक दूसरे मे मिलने की प्रे

इस प्रकार के गठबधन, श्रीलंका और सीयेरा लियो
प्रथम शासक दल, यूनाइटेड नेशनलिस्ट पार्टी का
सिंहला महासभा (सिंहलियों का एक सांप्रदायिक
लीग, मूर्स एसोसिएशन और कई तमिल नेताओं
विशिष्ट व्यक्ति के गठबंधन से बनी।[10] पार्टी के
थी कि शामिल होने वाले अलग अलग दल अपने
और उन्होंने ऐसा किया भी।[11] इस मिलीजुली
भावना से कि सरकार पर अपना प्रभुत्व जमाया
और अपने नेताओं तथा विभिन्न सामाजिक तथा
स्थापित करने के लिए सरकारी पदों से प्राप्त सत्ता
कार्यसमिति में उन एसोसिएशनों के नेता थे जिन्होंने
की थी। इसी प्रकार सीयेरा लियोने पीपुल्स पार्टी, प्र
विशिष्ट व्यक्तियों की दो एसोसिएशनों (एक की स्थापना क
थी और दूसरी राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों की थी) से मिल
प्रोटेक्टोरेट के सदस्यों को सीयेरा लियोने की राजनीति पर नियं

पाकिस्तान में अधिकारीतंत्र के राजनीतिज्ञों ने जिन पुश्तैनी गुटों का निर्माण किया था उन्होंने ही अंत में 1956 में राष्ट्रवादी पार्टी मुस्लिम लीग को विभिन्न खंडों में विभाजित किया।[21]

पितृवाद और सरकार में आने की समान इच्छा के साथ ही, विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आपसी एकता के संभावित स्रोत समाप्त नहीं हो जाते। सिद्धांतों के आधार पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बीच संपर्क बन सकता है। इसी तरह किसी एक पार्टी के सदस्य होने के कारण भी यह संपर्क हो सकता है या फिर दबाव डालकर भी ऐसा हो सकता है। एन्क्रूमा के शासनकाल के अंतिम वर्षों में घाना में दबाव डालकर एकता स्थापित करने का तरीका ही ज्यादा से ज्यादा अपनाया गया। केंद्रीय राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों को अन्य तरीकों से संगठित न कर पाने के कारण एन्क्रूमा ने राजनीतिक प्रणाली में उन बड़े लोगों को जबरदस्ती निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया जो उनके साथ या तो सहयोग नहीं कर सकते थे या नहीं करते थे। इस तरह के दमन से बाकी बचे कई विशिष्ट व्यक्तियों का सहयोग और समर्थन उन्हें प्राप्त हो गया।

जहां कहीं राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति 'शासक वर्ग' की श्रेणी में हैं उनके बीच की आपसी सहमति और एकता काफी नाजुक संबंधों पर टिकी होती है। जहां इस तरह की एकता है उसका आधार अक्सर व्यक्तिगत आस्थाएं होती हैं, सर्वोच्च नेता और उसके अभिन्न अनुयायियों और केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों के बीच। विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एक दूसरे को संतुष्ट रखने के आधार पर स्थापित संबंधों के जरिए भी एकता लाई जाती है।[22] केंद्र को समर्थन देने के बदले में इन विशिष्ट व्यक्तियों को एक दर्जा और कई भौतिक लाभ (राजनीतिक पद), और अपने अनुयायियों को बनाए रखने के साधन (एक संरक्षक के रूप में धन बांटकर) मिलते हैं। राजनीतिक केंद्र में अत्यंत व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर स्थापित व्यवस्था की जटिलताएं उन राजनीतिक प्रणालियों में और बढ़ जाती हैं जहां सत्तारूढ़ राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति सरकारी दायरे का विस्तार करके समाज पर अपने नियंत्रण का विस्तार करने के लिए, सैद्धांतिक रूप से वचनबद्ध हैं। यह बात विशेष रूप से पश्चिम अफ्रीका जैसे एक पार्टी वाले राज्यों पर लागू होती है।[23] वास्तव में ऐसे विशिष्ट व्यक्ति, प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं, जैसे मजदूर संगठनों, सहकार समितियों, और महिला एसोसिएशनों को पार्टी की शाखाएं बनाकर अपना नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप इन एसोसिएशनों में नेताओं के पद, राजनीतिक केंद्र में महत्वपूर्ण भूमिकाओं वाले पद हो जाते हैं। अक्सर यही होता है कि जब विभिन्न एसोसिएशनों को पार्टी की शाखाओं में बदल दिया जाता

ये समझौते करते हुए अपनी शक्ति का प्रयोग किया है और सरकार के लगभग प्रत्येक वरिष्ठ पद पर इन विशिष्ट व्यक्तियों की नियुक्तियां की हैं।[16] उनका महल, लाभों के बंटवारो और संरक्षण प्राप्ति का अंतिम केंद्र बन गया है और संरक्षक तक पहुंचने की क्षमता किसी विशिष्ट व्यक्ति में होना आवश्यक भी है क्योंकि उसे अपने अनुयायियों को अथवा गुट को संतुष्ट करना है और नेतृत्व का अपना दर्जा भी बनाए रखना है।[17] विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एकता, विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों और पुश्तैनी नेता के बीच बहुमुखी संबंधो द्वारा स्थापित होती है।

पुश्तैनी विशिष्ट वर्ग की एकता केवल परंपरागत राजनीतिक प्रणालियो की ही विशेषता नहीं है, नए राज्यों में चमत्कारी प्रभाव वाले नेता पर जो विशेष बल दिया जाता है वह वास्तव में किसी पुश्तैनी नेता का चुनाव ही होता है।[18] एन्क्रूमा, मेंघोर, तूरे, बुर्गीबा और हुफूए बोइनी जैसे नेताओं द्वारा अपने खास समर्थकों (पुश्तैनी कृपापात्रों) को महत्वपूर्ण सरकारी और राजनीतिक पदों पर नियुक्त करके अपने शासन को दृढ बनाने जैसे प्रयत्न अब अधिकांश नए राज्यों में भी होते नजर आते हैं।[19]

पुश्तैनी संबंध बिल्कुल भिन्न संस्थात्मक परिस्थितियों में भी स्थापित हो सकते हैं, जैसे किसी एक संस्था के बीच वर्गीकृत प्रणाली (उदाहरण के लिए आइवरी कोस्ट में पी० डी० सी० आई० या घाना में सी० पी० पी०), या संस्थाओं के बीच (उदाहरण के लिए पार्टी के नेता का संबंध स्वयंसेवी संस्थाओ के नेताओं से स्थापित करना), या महल के परंपरागत अथवा नवपरंपरागत अधिकारीतंत्र (बुरूंडी 1967, इथियोपिया, मोरक्को, और नेपाल), या आधुनिक अधिकारीतंत्र (जैसे 1958 से पहले पाकिस्तान और थाईलैंड)। थाईलैंड मे प्रभुत्व वाले सम्मिलन वास्तव में कुछ पुश्तैनी गुटों में मिलकर बने थे जो सत्ता में आने की समान महत्वाकांक्षा से प्रेरित हुए थे।

एडगर शोर के अनुसार :

> व्यक्तिगत अनुग्रह की सामंतवादी प्रणाली पर आधारित व्यक्तिगत गुटों ने ही अधिकारीतंत्र की आस्थाओ और विशिष्टताओं को मूल आधार दिया है। परंपरागत सामाजिक प्रणाली के संरक्षक-संरक्षित ढांचे के अधीन एक दूसरे को संतुष्ट रखने के लिए जिस प्रकार के संबंध स्थापित हुए थे उन्हीं के अनुसार कई अधीनस्थ व्यक्तियों और प्रशासनिक नेताओं के बीच लगभग अनौपचारिक एकता के संबंध बनते हैं।[20]

पाकिस्तान में अधिकारीतंत्र के राजनीतिज्ञों ने जिन पुश्तैनी गुटों का निर्माण किया था उन्होंने ही अंत में 1956 में राष्ट्रवादी पार्टी मुस्लिम लीग को विभिन्न खंडों में विभाजित किया।[21]

पितृवाद और सरकार मे आने की समान इच्छा के साथ ही, विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आपसी एकता के संभावित स्रोत समाप्त नही हो जाते। सिद्धांतों के आधार पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के बीच सपर्क बन सकता है। इसी तरह किसी एक पार्टी के सदस्य होने के कारण भी यह सपर्क हो सकता है या फिर दबाव डालकर भी ऐसा हो सकता है। एन्क्रूमा के शासनकाल के अंतिम वर्षो मे घाना मे दबाव डालकर एकता स्थापित करने का तरीका ही ज्यादा से ज्यादा अपनाया गया। केंद्रीय राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों को अन्य तरीकों से सगठित न कर पाने के कारण एन्क्रूमा ने राजनीतिक प्रणाली मे उन बडे लोगों को जबरदस्ती निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया जो उनके साथ या तो सहयोग नही कर सकते थे या नही करते थे। इस तरह के दमन मे बाकी बचे कई विशिष्ट व्यक्तियो का सहयोग और समर्थन उन्हे प्राप्त हो गया।

जहा कहीं राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति 'शासक वर्ग' की श्रेणी मे हैं उनके बीच की आपसी सहमति और एकता काफी नाजुक संबधो पर टिकी होती है। जहां इस तरह की एकता है उसका आधार अक्सर व्यक्तिगत आस्थाए होती हैं, सर्वोच्च नेता और उसके अभिन्न अनुयायियो और केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों के बीच। विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एक दूसरे को सतुष्ट रखने के आधार पर स्थापित संबंधो के जरिए भी एकता लाई जाती है।[22] केंद्र को समर्थन देने के बदले मे इन विशिष्ट व्यक्तियों को एक दर्जा और कई भौतिक लाभ (राजनीतिक पद), और अपने अनु-यायियो को बनाए रखने के साधन (एक संरक्षक के रूप मे धन बांटकर) मिलते हैं। राजनीतिक केंद्र में अत्यंत व्यक्तिगत संबंधो के आधार पर स्थापित व्यवस्था की जटिलताएं उन राजनीतिक प्रणालियों में और बढ़ जाती है जहां सत्तारूढ़ राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति सरकारी दायरे का विस्तार करके समाज पर अपने नियत्रण का विस्तार करने के लिए, सैद्धांतिक रूप से वचनबद्ध है। यह बात विशेष रूप से पश्चिम अफ्रीका जैसे एक पार्टी वाले राज्यों पर लागू होती है।[23] वास्तव मे ऐसे विशिष्ट व्यक्ति, प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं, जैसे मजदूर संगठनों, सहकार समितियों, और महिला एसोसिएशनों को पार्टी की शाखाएं बनाकर अपना नियत्रण स्थापित करने के प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप इन एसोसिएशनो में नेताओ के पद, राजनीतिक केंद्र मे महत्वपूर्ण भूमिकाओ वाले पद हो जाते हैं। अक्सर यही होता है कि जब विभिन्न एसोसिएशनों को पार्टी की शाखाओ मे बदल दिया जाता

ये समझौते करते हुए अपनी शक्ति का प्रयोग किया है और सरकार के लगभग प्रत्येक वरिष्ठ पद पर इन विशिष्ट व्यक्तियों की नियुक्तियां की हैं।[16] उनका महल, लाभों के बंटवारों और संरक्षण प्राप्ति का अंतिम केंद्र बन गया है और संरक्षक तक पहुंचने की क्षमता किसी विशिष्ट व्यक्ति में होना आवश्यक भी है क्योंकि उसे अपने अनुयायियों को अथवा गुट को संतुष्ट करना है और नेतृत्व का अपना दर्जा भी बनाए रखना है।[17] विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एकता, विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों और *पुश्तैनी नेता के बीच बहुमुखी संबंधों द्वारा स्थापित होती है।*

पुश्तैनी विशिष्ट वर्ग की एकता केवल परंपरागत राजनीतिक प्रणालियों की ही विशेषता नहीं है, नए राज्यों में चमत्कारी प्रभाव वाले नेता पर जो विशेष बल दिया जाता है वह वास्तव में किसी पुश्तैनी नेता का चुनाव ही होता है।[18] एन्क्रूमा, मेंघोर, तूरे, बुर्गीबा और हुफूए बोइनी जैसे नेताओं द्वारा अपने खास समर्थकों (पुश्तैनी कृपापात्रों) को महत्वपूर्ण सरकारी और राजनीतिक पदों पर नियुक्त करके अपने शासन को दृढ़ बनाने जैसे प्रयत्न अब अधिकांश नए राज्यों में भी होते नजर आते हैं।[19]

पुश्तैनी संबंध बिल्कुल भिन्न संस्थात्मक परिस्थितियों में भी स्थापित हो सकते हैं, जैसे किसी एक संस्था के बीच वर्गीकृत प्रणाली (उदाहरण के लिए आइवरी कोस्ट में पी० डी० सी० आई० या घाना में सी० पी० पी०), या संस्थाओं के बीच (उदाहरण के लिए पार्टी के नेता का संबंध स्वयंसेवी संस्थाओं के नेताओं से स्थापित करना), या महल के परंपरागत अथवा नवपरंपरागत अधिकारीतंत्र (बुरूंडी 1967, इथियोपिया, मोरक्को, और नेपाल), *या आधुनिक अधिकारीतंत्र (जैसे 1958 में पहले* पाकिस्तान और थाईलैंड)। थाईलैंड में प्रभुत्व वाले सम्मिलन वास्तव में कुछ पुश्तैनी गुटों में मिलकर बने थे जो सत्ता में आने की समान महत्वाकांक्षा से प्रेरित हुए थे।

एडगर शोर के अनुसार,

> व्यक्तिगत अनुग्रह की सामंतवादी प्रणाली पर आधारित व्यक्तिगत गुटों ने ही अधिकारीतंत्र की आस्थाओं और विशिष्टताओं को मूल आधार दिया है। परंपरागत सामाजिक प्रणाली के संरक्षक-संरक्षित ढांचे के अधीन एक दूसरे को संतुष्ट रखने के लिए जिस प्रकार के संबंध स्थापित हुए थे उन्हीं के अनुसार कई अधीनस्थ व्यक्तियों और प्रशासनिक नेताओं के बीच लगभग अनौपचारिक एकता के संबंध बनते हैं।[20]

पाकिस्तान में अधिकारीतंत्र के राजनीतिज्ञों ने जिन पुश्तैनी गुटों का निर्माण किया था उन्होंने ही अंत में 1956 मे राष्ट्रवादी पार्टी मुस्लिम लीग को विभिन्न खंडो में विभाजित किया।[21]

पितृवाद और सरकार मे आने की समान इच्छा के साथ ही, विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आपसी एकता के संभावित स्रोत समाप्त नही हो जाते। सिद्धांतों के आधार पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के बीच संपर्क बन सकता है। इसी तरह किसी एक पार्टी के सदस्य होने के कारण भी यह संपर्क हो सकता है या फिर दबाव डालकर भी ऐसा हो सकता है। एन्क्रूमा के शासनकाल के अंतिम वर्षो मे घाना मे दबाव डालकर एकता स्थापित करने का तरीका ही ज्यादा से ज्यादा अपनाया गया। केंद्रीय राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों को अन्य तरीकों से संगठित न कर पाने के कारण एन्क्रूमा ने राजनीतिक प्रणाली से उन बडे लोगों को जबरदस्ती निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया जो उनके साथ या तो सहयोग नहीं कर सकते थे या नही करते थे। इस तरह के दमन से बाकी बचे कई विशिष्ट व्यक्तियों का सहयोग और समर्थन उन्हें प्राप्त हो गया।

जहां कहीं राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति 'शासक वर्ग' की श्रेणी मे हैं उनके बीच की आपसी सहमति और एकता काफी नाजुक सबंधो पर टिकी होती है। जहां इस तरह की एकता है उसका आधार अक्सर व्यक्तिगत आस्थाएं होती हैं, सर्वोच्च नेता और उसके अभिन्न अनुयायियों और केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों के बीच। विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एक दूसरे को संतुष्ट रखने के आधार पर स्थापित संबंधों के जरिए भी एकता लाई जाती है।[22] केंद्र को समर्थन देने के बदले मे इन विशिष्ट व्यक्तियों को एक दर्जा और कई भौतिक लाभ (राजनीतिक पद), और अपने अनुयायियों को बनाए रखने के साधन (एक संरक्षक के रूप में धन बांटकर) मिलते हैं। राजनीतिक केंद्र में अत्यंत व्यक्तिगत संबंधो के आधार पर स्थापित व्यवस्था की जटिलताएं उन राजनीतिक प्रणालियों में और बढ जाती हैं जहां सत्तारूढ़ राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति सरकारी दायरे का विस्तार करके समाज पर अपने नियंत्रण का विस्तार करने के लिए, सैद्धांतिक रूप से वचनबद्ध हैं। यह बात विशेष रूप से पश्चिम अफ्रीका जैसे एक पार्टी वाले राज्यों पर लागू होती है।[23] वास्तव मे ऐसे विशिष्ट व्यक्ति, प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं, जैसे मजदूर संगठनों, सहकार समितियों, और महिला एसोसिएशनों को पार्टी की शाखाएं बनाकर अपना नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप इन एसोसिएशनों मे नेताओं के पद, राजनीतिक केंद्र में महत्वपूर्ण भूमिकाओं वाले पद हो जाते हैं। अक्सर यही होता है कि जब विभिन्न एसोसिएशनों को पार्टी की शाखाओं मे बदल दिया जाता

है तो उसके बाद पुश्तैनी नेता प्रत्येक पद पर अपने खास खास लोगों को नियुक्त करने की कोशिश में रहता है। उदाहरण के लिए आइवरी कोस्ट में 1959 के बाद पी० डी० सी० आई० के महासचिव जो पार्टी की नवनिर्मित युवा शाखा के नेता थे, और हुफूए बोईनी के बीच टकराव हुआ और महासचिव को पद से हटना पड़ा और उनकी जगह हुफूए बोइनी के एक खास आदमी को रखा गया।

राजनीतिक केंद्र पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति आपस में सम्मिलन का आधार तैयार करने के जो प्रयत्न करते हैं उन्हीं से एक राजनीतिक प्रक्रिया का दायरा बनता है जो उस केंद्र का क्षेत्र होता है। राजनीतिक नेता राजनीतिक केंद्र के अंदर विभिन्न दलों और संस्थाओं को अपने व्यक्तिगत संबंधों और संरक्षितों के माध्यम से एकता के सूत्र में बांधकर, केंद्र सरकार पर अपने नियंत्रण को दृढ़ करने का प्रयत्न करते हैं। साथ ही, विशिष्ट व्यक्ति अपने पदों के कारण प्राप्त सत्ता का उपयोग करके अपनी व्यक्तिगत सत्ता और अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की कोशिश करते हैं। यह प्रक्रिया मध्य युग के यूरोप की पैतृक प्रणालियों जैसी है, जिसकी विशेषता यह थी कि 'राजा अपने पुश्तैनी कृपापात्रों को संगठित करके, केंद्र की सत्ता मजबूत करने का प्रयत्न करते थे और अधीनस्थ अधिकारी स्थानीय जमीदार बनकर केंद्र की सत्ता को कमजोर करने का प्रयत्न करते थे।'[24]

राजनीतिक केंद्र द्वारा अपने आपको मजबूत बनाने के प्रयत्नों का मुकाबला विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों की इस प्रवृत्ति से होता है कि वे स्थानीय सत्ता में पुश्तैनी जमींदार के रूप में बने रहना चाहते हैं।

राईनहार्ड बेंडिक्स ने कहा है :

> पुश्तैनी शासन के विस्तार और विकेंद्रीकरण से व्यक्तिगत आश्रितों के कार्य और बढ़ सकते हैं क्योंकि अपने स्वामी के नियंत्रण से उन्हें वास्तविक स्वतंत्रता में और छूट मिलती है' ' 'यह स्पष्ट है कि पुश्तैनी शासन के विस्तार में अधीनस्थ राजनीतिक आश्रित व्यक्ति अपने शासक के सीधे नियंत्रण से दूर हो जाता है।[25]

पुश्तैनी शासन के संबंध में व्यक्त किए गए इस मत की तुलना बेनबेल्ला के शासन-काल में अल्जीरिया की स्थिति के साथ की जा सकती है :

> तात्कालिक हित साधने वाले दल आमतौर पर ऐसे व्यक्तियों से उपजते हैं,

जो या तो सरकार अथवा अधिकारीतंत्र में उच्च स्थानों पर हैं या वहां तक पहुंचने की आकांक्षा रखते हैं ··· इस बात की प्रवृत्ति हो सकती है कि विभिन्न मंत्रालय अपनी अपनी नीतियों को कार्यरूप देने के लिए अपने अपने दल गठित करें और इन नीतियों का अन्य मंत्रालयों में भी प्रचार करें ··· उदाहरण के लिए युद्ध के पुराने सैनिकों की एसोसिएशन, वयोवृद्ध सैनिक तथा सामाजिक कार्य मंत्रालय की एक शाखा है।··· प्रत्येक (एसोसिएशन) कोई संस्था या एसोसिएशन उतनी नहीं है जितनी कि प्रशासनिक इकाइयों का मोहरा।[26]

पहले कहा जा चुका है, विशिष्ट व्यक्तियों का गठबंधन, राजनीतिक प्रक्रिया के कारण काफी अस्थाई और विभाजनीय बन जाता है। इस संबंध में अगले अध्याय में आगे लिखा जाएगा। राजनीतिक केंद्र की स्थिरता इस बात पर निर्भर करती है कि विशिष्ट व्यक्ति कहा तक यह समझते हैं कि उनके सम्मिलन से उन्हें और उनके अनुयायियों को कितना फायदा हो रहा है। पुश्तैनी सत्ता की अनिश्चितता और अपने अनुयायियों को संरक्षण तथा भौतिक लाभ दिलाने की सामर्थ्य की अपेक्षाकृत कमी के कारण स्थिरता एक समस्या ही बनी रहती है।

राजनीतिक बाह्य परिधि का गठन करना

किसी शासन का अस्तित्व में बने रहना, विभिन्न आधुनिकीकरण संबंधी कार्यक्रमों को लागू करना तो बात ही अलग है, उसकी इस क्षमता पर निर्भर करता है कि वह केंद्र से बाहर कहा तक अपनी सत्ता का विस्तार कर सकता है और बाह्य परिधि पर अपने नियंत्रण को कितना दृढ़ कर पाया है। इस तरह की दृढ़ता लाने के काम में काफी हद तक इस बात से मदद मिलती है कि स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति केंद्र नियंत्रित साधनों पर निर्भर रहते हैं। केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति भिन्न भिन्न परिमाण में यह निर्धारित करते हैं कि बाह्य परिधि वाले क्षेत्रों को कितने साधन दिए जाएं। इस निर्धारण में वे केंद्रीय नियमों और सरकारी राजस्व तथा संरक्षण क्षमता पर अपने नियंत्रण का उपयोग करते हैं। साधनों को नियंत्रण में रखने की क्षमता, चाहे किसी जगह ये साधन सीमित ही क्यों न हों, न केवल केंद्र और परिधि क्षेत्रों के संबंधों का निर्धारण करती है बल्कि, क्योंकि कुछ एक स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों के गुट को किसी अन्य गुट से अधिक प्राथमिकता दी जा सकती है स्थानीय सत्ता के संबंधों को भी दिशा प्रदान करती है।

स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति और दल भी सौदेबाजी की क्षमता से हीन नहीं हैं। वे स्थानीय राजनीतिक प्रणाली में अपने निजी वित्तीय साधनों और अपने परंपरागत

सबंधियो व अनुयायियो की शक्ति का प्रयोग करके राजनीतिक दृढ़ीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान कर सकते है या उसमें रुकावटें डाल सकते हैं। इसके अलावा जहा स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति, अपने दर्जे को बनाए रखने के लिए आमतौर पर केंद्र द्वारा नियंत्रित साधनो पर निर्भर रहते हैं, वहा उन्ही साधनों का इस्तेमाल दृढता लाने के लिए करना भी स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियो की सहमति और क्षमताओं पर निर्भर करता है।

तो इस प्रकार बाह्य परिधि का सुनियोजित सगठन करने के लिए केंद्रीय और स्थानीय राजनीतिक प्रक्रियाओं के बीच बड़े नाजुक तरीके इस्तेमाल करने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि केंद्रीय और स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों ने जिस प्रकार के अनुमान और दावपेच सोच रखे हों वे आपस मे मेल न खाते हों, बल्कि हो सकता है इससे टकराव की स्थिति पैदा हो जाए। केंद्र के अंदर या स्थानीय राजनीतिक प्रणाली के अदर पारस्परिक विरोधो मे इन दोनों की एक दूसरे पर निर्भरता में कुछ परिवर्तन हो सकता है।

केंद्र के आपसी मतभेदो के कारण केंद्रीय विशिष्ट वर्ग संभवत: स्थानीय आवश्यकताओ की ओर ध्यान देने मे कोई रुचि न ले, उधर परिधि वाले क्षेत्रों में आपसी मतभेदो के कारण शक्ति और सत्ता के ऐसे सबंध उत्पन्न हो सकते हैं जिन्हे केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति मान्यता नही देते।

केंद्रीय राजनीतिक प्रणाली और स्थानीय उपप्रणालियों के बीच सबंधों को ठीक से समझना, राजनीतिशास्त्र के वैज्ञानिकों के लिए हमेशा से ही कठिन रहा है। पहली बात तो वह है जिसे मार्टिन किलमन ने 'सीमा समस्या' कहा है, 'राजनीतिक चयन और कार्य के निरपेक्ष और पवित्र मानदडों की व्यावहारिकता को समझने के काम में राजनीतिक अभिनेताओं की असमर्थता।'[27] केंद्रीय विशिष्ट वर्ग अक्सर स्थानीय विशिष्ट वर्ग की मांगों को स्वीकार करने से हिचकिचाता है क्योंकि इस तरह की मांगो को वह परंपरावाद और सकीर्ण क्षेत्रवाद से प्रेरित और इसीलिए राष्ट्र विरोधी मानता है और उसे इस बात की आशंका होती है कि यदि यह मांगें स्वीकार कर ली गई तो इसे राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को स्वीकार कर लिया जाना समझा जाएगा।[28] लेकिन सीमा समस्या स्वयं इन राजनीतिक अभिनेताओं तक ही सीमित नही है। समाजविज्ञान के विद्वान विशेषकर राजनीतिविज्ञान के विशेषज्ञ भी अक्सर यही मानते है कि परंपरावाद और संकीर्ण क्षेत्रवाद, राष्ट्र निर्माण के कार्य मे बाधक है। ऐसा माना जाता है कि ये शक्तिया संपूर्ण राष्ट्र की बजाय उससे कम के लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं और यही वास्तविक राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली के रास्ते मे बाधक होती है।[29] इस प्रकार केंद्र और बाह्य परिधि के बीच

राजनीतिक तथा आर्थिक तनाव, जिसका एक कारण सकीर्ण क्षेत्रवाद हो भी सकता है और नही भी, बहुधा राष्ट्रवाद बनाम संकीर्ण क्षेत्रवाद, या राष्ट्रवादी बनाम संकीर्णतावादी माना जाता है।

'परिधि' शब्द का जिस अर्थ मे यहा प्रयोग किया जा रहा है वह राष्ट्रवाद बनाम उपराष्ट्रवाद के सवाल से बिल्कुल भिन्न विश्लेषण करने का एक प्रयत्न है।[30] कोई 'राष्ट्रीय' राजनीतिक प्रणाली चाहे जितनी मजबूत हो, फिर भी केंद्रीय सत्ता की सस्थाओं मे दूर एक राजनीतिक परिधि विद्यमान रहती है जिसे स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओ और स्थानीय संघर्षों से आकार मिलता है।

हाल मे ऐसे प्रयत्न किए गए हैं कि केंद्र और परिधि क्षेत्रों के सबधों के बारे मे एक या अधिक संकटपूर्ण घटनाओं के सदर्भ में सिद्धात बनाए जाएं। इस तरह की घटनाएं राजनीतिक विकास की प्रक्रिया के इतिहास मे हुई है।[31] इस तरह के विशेषकर पृथक अस्तित्व, वैधता, क्रियाकलापों में भाग लेने और अपने विस्तार से संबद्ध, संकटो के विवरण में कई तरह से उस अंतर का पता चलता है जो केंद्र और परिधि के बीच है और वे कठिनाइया दर्शाई गई हैं जो इस अंतर को पूरा करने के काम मे सामने आती है। संकट योजना राजनीतिक विकास के अध्ययन के लिए सुझाई गई रूप-रेखा है हालाकि कौन सा संकट किसके बाद आएगा और इनके बीच के सबध कैसे हैं यह अस्पष्ट है इस बात को योजना बनाने वालो ने भी स्वीकार किया है।[32] फिर भी संकट योजना, केंद्र और परिधि के बीच के अंतर को पाटने और इन दोनो के बीच विद्यमान विभिन्न संपर्कों को सुचारु बनाने का एक प्रयत्न है। राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों की प्रमुख समस्या आधुनिक संस्थाओ को निर्जीव जनसमूह के अदर 'प्रविष्ट' कराना और फिर इस जनसमूह को अपने उद्देश्यों के लिए जुटाना, इतनी नहीं है जितनी कि एक ऐसे उच्च आचार संहिता वाले समाज (या समाजों) के अस्तित्व को मानना जो विभिन्न तरीको से आपसी संपर्क में हैं। और फिर इन राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों को इन पेचीदा संपर्कों को किसी न किसी प्रकार का समन्वित रूप प्रदान करने की समस्या भी हल करनी होती है।

केंद्र और परिधि के बीच एकता लाने के स्रोत

राष्ट्रवादी आदोलन से बढते हुए आगे चलकर स्वाधीन सरकार के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया के साथ साथ एक प्रक्रिया अनिवार्यतः चलती है। यह है केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा अपने प्रभाव का विस्तार करने और परिधि क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न। स्वाधीनता के बाद 'राष्ट्रवादी आदोलन' कई खंडों में विभाजित होने के कारण एकता (यदि ऐसी कोई एकता वास्तव मे रही हो) को

कमजोर करता है और इसीलिए विभिन्न खंडों के बीच एकता लाने के सभी तरीकों की खोज करना आवश्यक हो जाता है।

इस संक्रमण का अध्ययन करते हुए विद्वानों ने सैद्धांतिक विचारधारा और चमत्कार पर विशेष बल दिया है। वास्तव में दोनों ही बातें राष्ट्रवादी आंदोलन वाली एकता को पुन. स्थापित करने की अद्भुत विधियां हैं। सैद्धांतिक विचारधारा और चमत्कार या करिश्मे को दिए जानेवाले इस महत्त्व में ही यह तर्क निहित है कि विशिष्ट व्यक्तियों और अन्य लोगों के बीच सांस्कृतिक और सामाजिक अंतर इतना ज्यादा है कि इसे केवल अभूतपूर्व तरीकों से ही दूर किया जा सकता है। फिर भी, जैसाकि राष्ट्रवादी आंदोलनों के विश्लेषण से पता चलता है, विशिष्ट व्यक्तियों और अन्य लोगों के बीच आपसी संबंध बने ही रहते हैं। इस प्रकार राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्ति, जैसेकि तंजानिया में पाल बोमानी, सरकार और राजनीतिक क्षेत्र के वरिष्ठ पदों पर आसीन होते हैं और अपने अनुयायियों तथा केंद्र के बीच एक कड़ी के रूप में काम करते हैं। इसके अलावा वे पार्टी और अधिकारीतंत्र के साथ कामकाज के सिलसिले में अपने अनुयायियों के हितों के संरक्षक होते हैं। वे नए राजनीतिक ध्येयों और आदर्शों को प्रसारित करते हैं और कभी कभी स्थानीय राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करते हैं। श्रीलंका में पहले आम चुनाव में जो विशिष्ट व्यक्ति यूनाइटेड नेशनल पार्टी के उम्मीदवारों के रूप में खड़े हुए थे और जो पार्टी और सरकार के केंद्र के रूप में उभरे वे स्थानीय प्रभावशाली संपर्कों से संबद्ध थे।[33]

ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरह के व्यक्तिगत संपर्क अल्पविकसित राज्यों में सभी जगह व्याप्त हैं। हाल के शोधकार्यों में हालांकि संरक्षक-संरक्षित संबंधों को आम संपर्क का रूप माना गया है फिर भी अन्य प्रकार के द्विपक्षीय संबंधों की बात भी कही गई है, जैसे समान स्तर के दो व्यक्तियों के बीच गठबंधन, एक ऐसी मैत्री या संधि सिद्ध होते हैं जिनमें एक दूसरे के लिए काम करने का क्षेत्र बहुत सीमित रहता है। इसके अलावा पारिवारिक संबंधों और जातीय संबंधों आदि की बात भी कही गई है।[34] केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों के पास जब वित्तीय साधन और संरक्षण प्रदान करने की क्षमता होती है तो वे अपने संपर्कों का इस्तेमाल बाह्य परिधि क्षेत्रों में वस्तुएं और सेवाएं प्रदान करने के उपयोग में लाते हैं। इसके अलावा वे इन्हीं संपर्कों का इस्तेमाल स्थाई व्यक्तिगत अनुयायियों (संरक्षित) को हाथ में रखने के लिए भी करते हैं। इन बातों से, एक दूसरे के हित के लिए काम करने जैसे संबंधों का विकास होता है। संरक्षण और विशेष सुविधाएं दिए जाने के बदले संरक्षित वर्ग, विशिष्ट व्यक्ति को एक दर्जा प्रदान करता है और जब कभी आवश्यकता होती है उसे चुनावों के समय समर्थन भी दिलाता है।[35]

इन संपर्कों में निहित पारस्परिकता या आपसदारी की भावना के कारण अल्प-विकसित राज्यों के राजनीतिक दलों को ऐसे संगठन समझा गया है जो अमरीकी राजनीतिक पार्टियों के बारे में व्यापक रूप से लिखे गए साहित्य में उल्लिखित राजनीतिक व्यवस्थाओं की तरह हैं।[36] इस प्रकार की पार्टी व्यवस्थाएं पारस्परिकता और कार्यों के आधार पर बनती हैं लेकिन इनका उद्देश्य नीतियों का निर्धारण करना या सदस्यो को अनुशासन में लाना नही बल्कि चुनाव जीतना है और इसी के परिणाम-स्वरूप पार्टी के सदस्यों को नौकरियां देना भी है।

इस प्रकार भारत में :

> कांग्रेस पार्टी के नेता, राजनीति के क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने के लिए मुख्यतः इसी बात को सोचते हैं कि वातावरण के अनुसार पार्टी को बदलने के लिए आवश्यक सभी कदम उठाए जाएं··· कांग्रेस पार्टी का मूल प्रयत्न सदस्यों को भर्ती करना और उनका समर्थन प्राप्त करना है। वह लोगो को इकट्ठा करके उनका संचालन नही करती बल्कि उन्हे समूहीकृत रूप देती है जिसका उद्देश्य केवल बड़ी संख्या में लोगों को अपने सदस्य बनाना हैं। पार्टी कोई नए प्रयोग नही करना चाहती बल्कि परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढालना चाहती है। हालाकि कुछ कांग्रेसजन ग्रामीण क्षेत्रो का स्वरूप ही बदल देने का स्वप्न देखते हैं, लेकिन वास्तविक व्यवहार मे अधिकांश कांग्रेसजन केवल चुनाव जीतने में ही रुचि रखते हैं। ···एक ओर तो भारत की राष्ट्रीय सरकार और अधिकारीतंत्र विकास कार्यों पर विशेष ध्यान दे रहा है, लेकिन दूसरी ओर, स्थानीय राजनीतिज्ञ सिर्फ लाभ उठाने मे ही दिलचस्पी रखते हैं। कांग्रेस की सैद्धांतिक विचारधारा है समाजवाद लाना जिसमे सभी लोग सामाजिक और विशेषकर आर्थिक दृष्टि से समान होंगे। इसी विचारधारा *के संदर्भ में लाभों के वितरण की राजनीति वैध मानी जा सकती है।* संरक्षण प्रदान करने वाली पार्टी और सिद्धांत प्रतिपादित करने वाली पार्टी के बीच भेद करना स्वाभाविक है लेकिन यहा उल्लेखनीय बात यह है कि कौन सी विचारधारा, इस मामले में समता की अपील, संरक्षण के समर्थन के लिए किस सीमा तक उपयोग में लाई जाती है।[37]

उत्तरी नाइजीरीया का भी एक उदाहरण है :

> एन० पी० सी० (नार्दन पीपुल्स कांग्रेस) का स्वरूप कम से कम दो महत्वपूर्ण दृष्टिकोणो से पारंपरिक संबंधों की व्यवस्था में बिल्कुल सही बैठता है। एक

पहलू यह है कि सरकारी नियंत्रण हाथ मे होने से उसे जो सत्ता मिली हुई है उसके कारण यह पार्टी विशिष्ट पदों पर अपने लोगों को लाने, ऋण, छात्र-वृत्तियां, ठेके और अन्य सुअवसर प्रदान करने का प्रमुख माध्यम वनी। ये सभी काम या तो सीधे और विधिवत रूप से या परोक्ष रूप मे पार्टी अथवा पार्टी के ऐसे भूतपूर्व सदस्यो के माध्यम से किए जा सकते हैं जो सरकारी मंडलों, निगमो या आयोगो मे महत्वपूर्ण पदों पर थे।

दूसरा पहलू (और यह जनसमर्थन प्राप्त करने की दृष्टि से अधिक महत्व का है) यह है कि स्थानीय प्रशासक के निदेशालय और पार्टी के व्यक्तियों के बीच अटूट सपर्क के कारण साधारण व्यक्ति को परपरागत विशिष्ट व्यक्ति के साथ हर हालत में मिलकर चलने के लिए बाध्य होना पड़ा क्योकि यह विशिष्ट व्यक्ति पार्टी का सदस्य था। परंपरागत समाज मे जो संबंध संरक्षक-संरक्षित के बीच था और जिसके कारण निर्भरता की भावना उपजी थी, वही संबंध अब पार्टी और जन साधारण के बीच हो गया।[38]

अन्य स्थानो पर भी ये पार्टिया राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों के समूह ही हैं जो आपस मे कई तरह के व्यक्तिगत सबंधों से जुड़े हैं। इस तरह के संबंध विशेष सुविधाएं और लाभ वितरित करने के माध्यम बनते हैं। इस व्यवस्था से जनसमर्थन प्राप्त होता है क्योकि लोगों को भौतिक लाभ उन्ही से मिलते है। व्याव-हारिक रूप मे यह व्यवस्था अक्सर ऐसी होती है जिसमे ऊपर से एक व्यक्ति का समर्थन कुछ एक व्यक्ति करते हैं और इसी प्रकार नीचे आते आते व्यक्तिगत अनुयायियो का एक समूह सा बन जाता है। यानी यह एक प्रकार की पिरामिड व्यवस्था है।

विशिष्ट व्यक्तियो और आम जनता के बीच वर्तमान व्यक्तिगत सपर्कों वाली पार्टियों और परंपरा से चले आ रहे आदरभाव पर आधारित पार्टियो (आदरभाव पर आधारित पार्टियों का उदाहरण है, नाइजीरिया की नार्दर्न पीपुल्स कांग्रेस और कुछ हद तक सियेरा लियोने पीपुल्स पार्टी) और रूढिवादी व्यवस्था जिसमे ऊपर से नीचे तक के संबंध भौतिक प्रोत्साहनों पर ही आधारित होते हैं (जैसे आइवरी कोस्ट की पी० डी० सी० आई०), के बीच भेद करने के कुछ प्रयत्न किए गए हैं।[39] लेकिन वास्तव मे इस तरह के विभेद करना कठिन प्रतीत होता है। कभी कभी रूढिवादी व्यवस्था में ऐसे संपर्क भी आते हैं जो केवल भौतिक लाभों पर ही आधारित नहीं होते (उदाहरण के लिए किसी एक नेता को किसी जातीय दल का समर्थन) और वास्तव मे ऐसा लगता है कि दोनो प्रकार के संपर्कों के आधार पर भी पार्टी का गठन हो सकता है। 1950 के दशक में ऐंटी फासिस्ट पीपुल्स फ्रीडम लीग (जिसे हमेशा

ए० एफ० पी० एफ० एल० कहा जाता रहा है) गांवों में तत्कालीन संरक्षक-संरक्षित संबंधों पर आधारित थी, और कस्वो में यह भौतिक लाभों से उत्पन्न सीमित एकता पर निर्भर थी।[10]

राजनीतिक व्यवस्था के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा जा सकता है। पहली बात तो यह है कि राजनीतिक व्यवस्था के राजनीतिक पार्टियो तक ही सीमित रहने की आवश्यकता नही है।[11] मोरक्को में शासक को विभिन्न पदो पर नियुक्तिया करने का जो व्यक्तिगत अधिकार है वह वरिष्ठ सरकारी पदो के दायरे से भी आगे तक के क्षेत्र के लिए है जिसमें 'आपसी समझौतो की व्यापक प्रणाली भी शामिल है और इसके अंतर्गत मध्यमवर्गीय और छोटे मोटे अधिकारी भी बडी संख्या मे, सामान्य सरकारी सेवा के नियमो से कही ज्यादा अपना वेतन बढवा सकते है और पदोन्नति करा सकते हैं।'[12] इसके परिणामस्वरूप मोरक्को के शाह की अपनी ही व्यक्तिगत व्यवस्था है। कुछ खास खास लोगों को अपने साधनों से सहायता पहुंचाकर शाह हसन ने अपने लिए समर्थन जुटाया है और उसके माध्यम से परिधि क्षेत्र पर अपना नियंत्रण बनाया है।

इसके अलावा कभी कभी पार्टी व्यवस्था, व्यक्तिगत व्यवस्था के लिए एक पर्दा बन जाती है या उसके साथ साथ चलती है। किसी राजनीतिक पार्टी का गठन करने के प्रयत्नों मे पुश्तैनी संबंधों का भी विशेष महत्व हो सकता है। केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति अपनी पार्टी और पार्टी व्यवस्था पर अपने निजी नियंत्रण को दृढ करने के लिए महत्व-पूर्ण पदों का उपयोग कर सकते है। आइवरी कोस्ट में हुफूए बोइनी के व्यक्तिगत प्रतिनिधि ऐसे लोगों को चुनते थे जिनके बारे मे उन्हें पूर्ण विश्वास था। इन लोगो को पार्टी की माध्यमिक शाखाओं के महासचिव बनाया जाता था।[43] जो लोग इस प्रकार नियुक्त किए जाते थे वे फिर अपने स्तर पर पार्टी के पदों के लिए व्यक्तियो का चुनाव करते थे।[14] इन सब बातों से अंत में हुफूए बोइनी और पार्टी संगठन के व्यक्तिगत संपर्कों का एक जाल बिछ गया।

अधिकारीतंत्र के विशिष्ट व्यक्ति भी इस तरह की व्यवस्थाओं का गठन कर सकते हैं जिसमे वे इस तंत्र के प्रमुख व्यक्तियों और निचले स्तर के व्यक्तियों तथा सरकार की सामान्य जनता के बीच व्यक्तिगत संपर्कों का विकास कर सकते है। थाईलैंड मे वरिष्ठ अधिकारी कुछ मध्यम वर्गीय अधिकारियों के संरक्षक बन जाते है और फिर ये मध्यम वर्गीय अधिकारी निचले स्तर के अधिकारियों के संरक्षक बनते हैं। इस प्रकार प्रत्येक अधिकारी स्थानीय जनसाधारण के संपर्क सूत्र में बंध जाता है, और स्थानीय जनसाधारण इन अधिकारियों का संरक्षण चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि राजनीतिक व्यवस्था के विचार में केंद्र और परिधि के बीच विभिन्न व्यक्तिगत संपर्कों के सामंजस्य को बढ़ा चढ़ाकर बताया गया है। यहां तक कि जहा अपेक्षाकृत सुसंगठित पार्टी व्यवस्था विद्यमान है जैसे कि भारत की कांग्रेस पार्टी या आइवरी कोस्ट की पी० डी० सी० आई०, वहां भी स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति और उनके पीछे चलने वाले लोग, पार्टी की श्रेणीगत व्यवस्था में पदों पर नहीं बने रहते। इसकी बजाय, आवश्यक साधनों पर निर्भर करते हुए वे अन्य संपर्क स्थापित कर सकते हैं, जैसे अन्य राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के साथ जो पार्टी पदों के साधारण स्तर से भी दूर हैं या पार्टी से बाहर हैं, अथवा अधिकारीतंत्र के विशिष्ट व्यक्तियों के साथ, या आर्थिक क्षेत्र के बड़े लोगों के साथ। व्यवस्थाएं, चाहे वे व्यक्तिगत, दलीय या अधिकारीतंत्र की हों—साथ साथ चलती हैं और एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करती हैं। फिलीपींस मे दलीय राजनीति पर टिप्पणी करते हुए कार्ल लैंडे ने लिखा है :

> राजनीतिक नेता अपने अपने अनुयायियों को लेकर पार्टियों मे शामिल होते हैं या उनसे बाहर निकल जाते हैं और ऐसा करते हुए उन्हें किसी तरह के उत्तरदायित्व की भावना नही सताती और क्योंकि उनपर किसी तरह का कोई वास्तविक दबाव नही होता इसलिए वे अपनी पार्टी के अन्य साथियों का समर्थन करने के लिए भी अपने आपको बाध्य नही मानते। पार्टी की सदस्यता, किसी श्रेणी में शामिल होने का मामला नही बल्कि उस वर्ग में उच्च पद तक पहुंचने का मामला है।
>
> यदि कोई यह जानना चाहता है कि चुनाव अभियानों का वास्तविक ढांचा क्या है तो उसे राजनीतिक पार्टियों से हटकर, अलग अलग उम्मीदवारों और नेता-अनुयायी संबंधों की ओर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। ऊपरी तौर पर तो ये व्यक्ति एक ही जैसे नजर आते हैं क्योंकि वे एक ही पार्टी के उम्मीदवार हैं लेकिन नेता-अनुयायी संबंधों को वास्तव मे अलग मानना चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे बहुत सारी लताएं दो बड़े लेकिन खोखले पेड़ों के बीच एक दूसरे के साथ जकड़ी हुई आगे-पीछे झूल रही हों या इन पेड़ों से (राजनीतिक पार्टियों) लिपटी हुई हों।[35]

यदि हम इस उपमा में कुछ और 'लताएं' शामिल कर ले जो अधिकारीतंत्र के विशिष्ट व्यक्तियों के कभी कभार के समर्थकों का प्रतिनिधित्व करती हैं, और यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि ये विभिन्न लताएं एक दूसरे के साथ लिपटती हैं, तो केंद्र-परिधि संपर्कों तथा व्यवस्थाओं की पेचीदगियां स्पष्ट होने लगती हैं।

यह उलझाव जो पहले ही काफी अधिक होता है, उस स्थिति मे और भी बढने लगता है जब कोई सरकार परिधि के केंद्र से बाहर की ओर केंद्रीय पार्टी और सरकार को फैलाकर परिधि पर अपने नियंत्रण का विस्तार करने की कोशिश करती है, उदाहरण के लिए केंद्र से बाहर के क्षेत्रों मे राजनीतिक और प्रशासनिक पदों पर पार्टी और अधिकारियों को केंद्र द्वारा नियुक्ति करना।[46] सिद्धांत रूप में यह विकेंद्रीकरण, जिसके अंतर्गत केंद्र द्वारा नियुक्त किए गए व्यक्तियो के अधिकारो मे वृद्धि करना और पार्टी की स्थानीय शाखाओं तथा सरकारों की सत्ता को कमजोर करना शामिल है, कई ऐसी सेवाओं का विस्तार करता है जिसके लिए स्थानीय जनता को केंद्र के प्रतिनिधि का मुंह देखना पड़ता है और इसके परिणामस्वरूप, 'उन स्थानों पर केंद्र के नियंत्रण की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।'[47]

विकेंद्रीकरण नए राज्यो की राजनीतिक प्रक्रिया की विशेषता बन गया है।[48] विशेषकर जिन राज्यो मे जनसमर्थन जुटाकर कोई पार्टी सत्ता में आई है वहां केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों ने ऐसे नियुक्त अधिकारियों की श्रेणियो का क्रम स्थापित करने के प्रयत्न किए हैं जो पार्टी के राष्ट्रीय कार्यालय के प्रति उत्तरदायी होंगे और जिन्हें जिला तथा स्थानीय संगठनों की सदिच्छा पर निर्भर नही रहना होगा।[49] घाना में सी० पी० पी० ने जब एकमात्र पार्टी के राज्य को सुदृढ़ किया, तो साथ ही यह भी कोशिश की गई कि सी० पी० पी० की स्थानीय शाखाओं को और दृढ नियंत्रण के अधीन रखा जाए। पार्टी के स्थानीय संगठन को भंग कर दिया गया और उसके स्थान पर जिला तथा क्षेत्रीय पार्टी शाखाएं बनाई गईं जिनका संचालन केंद्र द्वारा नियुक्त किए गए जिला तथा क्षेत्रीय आयुक्तों द्वारा किया जाने लगा।[50]

कभी कभी एक प्रशासनिक या तकनीकी क्षेत्र के एजेंट के रूप में केंद्र सभी जगह हावी हो जाता है। बर्मा के एक गांव नानद्विन पर सरकार और प्रशासन ने जिन 'असंख्य तरीकों' से प्रभाव डाला उसके बारे में टिप्पणी करते हुए मैनिंग नैश ने लिखा है:

> गांवों, और सरकार के अन्य स्तरो के बीच बहुत सारे तथा विविध प्रकार के संबंध हैं। अत्यंत स्पष्ट संबंध हैं करों, पुलिस और न्यायालयों की एजेंसियों के माध्यम से। कर अधिकारी, पुलिस कर्मचारी और सैनिक, अपने सामान्य कार्यकलापो के सिलसिले मे गाव में आकर विभिन्न ग्रामीणो के साथ अलग अलग या ग्राम प्रधान अथवा ग्राम बड़ों की परिषद के माध्यम से काम करते हैं। ··· सड़क, वन और कृषि विभाग अपनी अपनी ओर से समुचित सेवाएं प्रदान करते हैं ··· गांववालों को कुछ निश्चित आकार के पेड़ काटने के लिए अनुमति लेनी होती है और उन्हें कभी कभी कृषि विभाग की एजेंसी से बीज खरीदने के लिए

> पैसा या ऋण मिलता है · · · सरकार कुछ चिकित्सा सेवाएं भी प्रदान करती है जिनका फायदा लोग अक्सर उठाते हैं · · · गांव के युवा वर्ग को शिक्षित करने का काम भी अब मुख्यत सरकारी एजेंसी के हाथ में है।[51]

विकेंद्रीकरण के कारण ऐसे व्यक्तियो की सख्या वढ जाती है जिनके पास साधनो तक पहुचने की सामर्थ्य होती है। इसलिए विकेंद्रीकरण से जनता में समर्थकों की संख्या मे भी विस्तार होता है और केंद्र और परिधि के बीच इनके द्वारा ही संपर्क बनता है। केंद्र सरकार के साथ अपने सपर्कों के कारण स्थानीय प्रशासनिक प्रतिनिधि एक प्रकार के अर्धसंरक्षक वन जाते हैं। इससे भी अधिक महत्व की वात यह है कि पार्टी के विशिष्ट व्यक्ति, तत्कालीन सरक्षक-संरक्षित संबधों से दूर होने के कारण अक्सर स्वयं सरक्षक और बिचौलिये बन जाते हैं। आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए सरकारी व्यवस्था के विस्तार के वारे मे काग्रेस पार्टी की प्रतिक्रिया के संबंध में मायरन वीनर ने कहा है :

> पार्टी ने प्रशासनिक गतिविधियो के विस्तार के लिए कार्य को गति देने वाले कार्यकर्ताओं के एक वर्ग का सृजन किया है जो प्रशासकों और जनता के बीच माध्यम का काम करते हैं। 'सृजन' शब्द में यह निहित है कि सोच समझकर कोई निर्णय और कार्यक्रम बनाया गया है, इसलिए यह काफी भ्रामक शब्द है। इसके अलावा यह मान लेना भी एक भ्राति है कि यह कोई नई भूमिका है। इसके विपरीत, ब्रिटिश शासन के अधीन ऐसे व्यक्तियो का एक वर्ग था जिनकी पहुंच स्थानीय प्रशासन तक थी और वे इसका उपयोग अपने या अपने दल के हितो की अभिवृद्धि के लिए करते थे। लेकिन 1937 से पहले (जब काग्रेस ने कई राज्य सरकारो पर अपना अधिकार जमाया और राज्यस्तर पर वास्तव मे राजनीतिक नियत्रण प्राप्त किया) वहुत कम काग्रेसजन यह काम करते थे। जब पार्टी ने सत्ता संभाली तो जो लोग काम को गति देते थे वे कांग्रेस मे शामिल हो गए[52]···

संक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि केंद्र और परिधि के बीच के संपर्कों के अतर्गत विविध प्रकार के व्यक्तिगत संबंध आते हैं। इस तरह के संपर्क, सरकारी साधनों और सेवाओ की स्वीकृतियां प्रदान करने के काम पर केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियो के नियंत्रण को ध्यान मे रखते हुए बनाए जाते हैं। कम से कम सिद्धांत रूप में तो परिधि क्षेत्र के लिए साधनों और सेवाओं की स्वीकृति इस प्रकार की जाती है कि सरकार को अधिक से अधिक समर्थन मिल सके। व्यावहारिक रूप में देखा जाए तो इस तरह का समर्थन अक्सर अस्थाई सा होता है।

केंद्र-परिधि संघर्ष के स्रोत

केंद्र और परिधि के बीच संपर्कों के महत्व को काफी कम करके बताया जाता है और इसी प्रकार केंद्र और परिधि के बीच संघर्ष को भी काफी गलत समझा जाता है, हालांकि यह भ्रांति भिन्न प्रकार की होती है। जैसा पहले कहा गया है, समाज-विज्ञानशास्त्रियों ने संकीर्ण क्षेत्रवाद को अक्सर परंपरावाद ही माना है। अन्य शब्दों मे, केंद्र और परिधि के बीच का संघर्ष अधिकतर राष्ट्रवाद बनाम उपराष्ट्रवाद (जैसे कबीलावाद, जातिवाद आदि), या विश्व स्तर पर, आधुनिकतावाद बनाम परंपरावाद बनकर रह जाता है। इसलिए परिधि को संगठित करने की समस्या मुख्यतः, पारंपरिक सत्ताओं, राजनीतिक आंदोलनो और नए राज्य की भौगोलिक सीमाओ के अंदर के दलों की स्वायत्तता को कम करने की है।[53] हालांकि परंपरा और आधुनिकता के बीच विभेद को इस तरह के विश्लेषणो में कुछ बढ़ा चढ़ाकर ही प्रस्तुत किया जाता है फिर भी इस प्रकार के संघर्षों या टकरावों के महत्व से इंकार नही किया जा सकता। घाना में सी० पी० पी० और विभिन्न जातीय राजनीतिक दलों (विशेषकर नार्दर्न पीपुल्स पार्टी और नेशनल लिबरेशन मूवमेंट) के बीच आपसी होड़ इस तरह के संघर्ष का एक उदाहरण है।[54] फिर भी, केंद्र और परिधि के बीच संपर्क की समस्या, एकता के संकट से कुछ अधिक है।

जहां कही इस तरह के संपर्क विद्यमान हैं और केंद्र की सत्ता को स्वीकार किया जाता है वहा भी हो सकता है कि केंद्र बाह्य परिधि पर अपने नियंत्रण को सुदृढ न बना सके। केंद्र और परिधि के बीच संघर्ष, राष्ट्रवाद के विरुद्ध एक प्रकार के पृथकतावाद का सवाल इतना नहीं हो सकता जितना कि बहुत अधिक विभाजित राजनीतिक प्रणाली को संचालित करने का।

संचालन समस्या का प्रमुख कारण केंद्र और परिधि के बीच संपर्कों की जटिलता है जो अक्सर इस बात के कारण और भी गहरी हो जाती है कि केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति परिधि क्षेत्र पर अपने नियंत्रण का विस्तार करने के प्रयत्न करते हैं। बहुत कम शासन हैं जो केंद्र और परिधि के विभिन्न संबंधों मे आपसी संपर्क में आए हुए तकनीकी, अधिकारीतंत्र और राजनीतिक क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्तियों के बीच कोई समुचित श्रेणीगत व्यवस्था बना सके हों। ऐसा बहुत कम होता है कि विकेंद्रीकरण के साथ साथ इस तरह के निश्चित निर्णय किए गए हों कि कौन किससे बड़ा है। दर्जा, सत्ता और अपने अनुयायियों को विशेष सुविधाएं प्रदान कराने की क्षमता को लेकर उत्पन्न होने वाले संघर्ष, राजनीतिक प्रक्रिया का हिस्सा बन जाते हैं। इस प्रकार के संघर्ष, नियुक्त किए गए अधिकारियों के बीच, या इन अधिकारियों और निर्वाचित अधिकारियो

के बीच, या स्थानीय राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों और स्थानीय अधिकारियों तथा तकनीकी क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्तियों आदि के बीच होने लगते हैं।

यह समस्या केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा, परिधि क्षेत्र में विभिन्न दर्जोंवाली श्रेणीगत व्यवस्था की स्थापना करने में विफल होने की समस्या नहीं है। वास्तव में बहुत कम शासनों के पास इस तरह की श्रेणीगत व्यवस्था स्थापित करने के मनमाने साधन हैं। अब चूंकि आर्थिक क्षमता बहुत कम है और इसका विकास बहुत धीमी गति से हो रहा है इसलिए अपने समर्थकों अथवा अनुयायियों को संतुष्ट रखने के लिए विशेष सुविधाओं आदि के बटवारे को अपने साधन बनाना केंद्रीय सत्तारूढ़ व्यक्तियों के लिए कठिन हो जाता है।[55] यह असमर्थता न केवल राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों, बल्कि अधिकारी तंत्र के विशिष्ट व्यक्तियों की भी है। आइवरी कोस्ट में स्थानीय अधिकारियों के बारे में टिप्पणी करते हुए एक विद्वान ने कहा है कि 'हाल के वर्षों में (स्थानीय सरकारी अधिकारियों के छोटे-बड़े पदों) के प्रसार से ऐसे ऐसे व्यक्ति नियुक्त हो गए हैं जिनकी आवश्यकता लगभग न के बराबर है और जिनके पास कोई साधन ही नहीं है। प्रमुख कस्बों से बाहर तो प्रशासकीय व्यवस्था ऐसी होती है कि बड़ी मुश्किल से शायद कार्यालय में कोई एक आध क्लर्क हो और अक्सर एक टाइपराइटर भी नहीं होता'[56]···राजनीतिक व्यवस्थाएं चाहे व्यक्तिगत हों या पार्टी अथवा नौकरशाही की हों, सभी, जैसाकि विऐनन ने कहा है . 'अल्प विकास (सीमित संसाधन और कमजोर संगठन) के सीमित संसाधनों के दुष्चक्र में फंस सकती है।'[57]

परिधि क्षेत्र में, अधिकारी तंत्र की सत्ता कहां समाप्त होती है और श्रेणीगत व्यवस्था कहां आरंभ होती है इसकी निश्चित सीमाएं नहीं हैं। नियुक्त किए गए अधिकारी, सिद्धांत रूप में, केंद्र के प्रतिनिधि हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि वे स्थानीय सहयोग पर बहुत निर्भर हैं, तभी वे कोई निश्चित ध्येय प्राप्त कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप ये अधिकारी अपने ही स्थानीय समर्थक या अनुयायी (पुश्तैनी निष्ठाओं के आधार पर) बनाने लगते हैं, जो सरकारी साधन उनके पास हैं उनका दुरुपयोग करके आमदनी अपनी जेब में डालते हैं और स्वयं एक व्यवस्था के निर्माण के लिए नियमों का दुरुपयोग करते हैं।[58] जब इस तरह की बातें होती हैं तो केंद्र और परिधि के बीच के संपर्क लगभग टूट सकते हैं।

सत्ता और संपर्क के जटिल ढांचे अनिश्चित होने का एक और परिणाम है जिसकी वजह से ये समस्याएं बढ़ जाती हैं। चूंकि स्थानीय स्तर पर सत्ता का इतना विकेंद्रीकरण है कि केंद्र तक अपनी पहुंच बनाने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति बहुधा वर्तमान व्यक्तिगत, अधिकारी तंत्र और राजनीतिक व्यवस्थाओं की अपेक्षा करके आगे बढ़ने

का प्रयत्न करते हैं और केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों के साथ आपसदारी के आधार पर अपने अपने काम कराते हैं। अन्य शब्दों में, वर्तमान व्यवस्थाएं विफल हो जाती हैं। जो भी विशेष सुविधाएं और धनराशि आदि उपलब्ध हैं वे अक्सर व्यक्तिगत संबंधों के माध्यम से प्रदान की जाती हैं जबकि यह संबध नए और अस्थाई होते हैं। इस प्रकार पुराने स्थापित संबंधों के माध्यम का प्रयोग नहीं किया जाता। केंद्र और परिधि के संपर्कों की जटिलता उस हालत में और भी बढ जाती है जब विशेष सुविधाएं प्राप्त करने वाले लोग नए संरक्षकों की खोज करने लगते हैं।

इस प्रकार घाना में :

> विभिन्न स्थानीय दलों की गतिविधियों के समन्वय के लिए एक व्यापक व्यवस्था स्थापित की गई लेकिन इसे बिना इस्तेमाल किए, सीधे मुख्यालय अर्थात क्षेत्रीय आयुक्त या स्वयं एन्क्रूमा से अपील करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक थी। कुछ लोग जो एन्क्रूमा तक पहुंचने की क्षमता रखते थे, यह मानकर चलते थे कि वे अन्य लोगों से अधिक 'पवित्र' हैं। ऐसे लोग साधारण रास्तों की बरावर उपेक्षा करते थे, और पार्टी के समाचारपत्र ने उन्हें बार बार यह चेतावनी दी कि 'राष्ट्रीय सचिवालय को केवल ऐसे ही मामले सीधे पहुंचाए जाएं जो बहुत गभीर, जटिल और कठिन हो, और जिनका असर मुख्य नीति पर पडता हो। अगर कोई भी छोटा मोटा मामला अक्करा स्थित राष्ट्रीय सचिवालय के पास भेजा गया तो यह इस बात का संकेत होगा कि कोई व्यक्ति अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहा है या पार्टी का कोई सदस्य नियमित विधि का उल्लंघन कर रहा है।'[59]

केंद्र और परिधि के बीच मतभेदों के सभी कारण परिधि मे ही नहीं हैं। उदाहरण के लिए केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति असंगत नीतियां अपना सकते हैं, या अपेक्षाकृत बहुत ही थोडे थोड़े समय बाद नीतियो में परिवर्तन कर सकते हैं। सैनेगल में पार्टी के गठन के कुछ ही समय बाद सैंघोर शासन ने कई सुधार लागू किए जिनसे वास्तव में, परिधि क्षेत्र में अधिकारियों की स्थिति दृढ करने का प्रयत्न हुआ और काफी बड़े प्रभाव वाली पार्टी, यूनियन प्रोग्रेसिस्ट सैनेगालेज का प्रभुत्व कम हो गया।[60] स्थानीय पार्टी के विशिष्ट व्यक्तियों के मुकाबले अधिकारियों को और ज्यादा सत्ता मिली और पार्टी के स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति अपने अनुयायियों को विशेष लाभ पहुंचाने की शक्ति से वंचित कर दिए गए। परिणाम यह हुआ कि यू० पी० एस० पार्टी की शाखाएं, सैनेगल के विकास संबंधी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार कि प्रयत्नों को संगठित करने की प्रक्रिया में कमजोर हो गईं।[61]

केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आपसी संघर्षों से ही केंद्र और परिधि क्षेत्र के बीच विभिन्न संपर्क कमजोर पड सकते हैं। घाना में इस प्रकार के संपर्कों के बारे में मार्टिन किलसन का कहना है कि उच्च दर्जे के विश्वविद्यालयीय विशिष्ट व्यक्तियों, जिनकी आवश्यकता सरकार चलाने के लिए थी और दूसरे वर्ग सी० पी० पी० के पदाधिकारियो के बीच प्रतिस्पर्धा और तनाव के कारण केंद्रीय नेताओं ने स्वयंसेवी संस्थाओं (मजदूर संगठन आदि) को पार्टी की शाखाओं में बदल दिया और इस प्रकार सी० पी० पी० के कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय पार्टी के पदों पर नियुक्त किया।[62] स्वयंसेवी संस्थाओ को पार्टी की शाखाओ में बदलने के काम से लक्ष्य तो प्राप्त हो गया (और साथ ही काफी गुटबंदी भी हुई) लेकिन अंततः केंद्र और परिधि के संबंधों की दृष्टि से यह हानिकर था। एक तो स्वयंसेवी संस्थाओ को अर्धसरकारी संगठनो मे बदलने से उनका प्रभाव कम हो गया क्योंकि वे अपने सदस्यों के हितों का ध्यान उतना नही रख सके जितना कि पहले रखते थे,[63] दूसरी बात यह हुई कि इस परिवर्तन से संस्थात्मक और व्यक्तिगत संपर्कों की एक नई स्थिति पैदा हो गई, जबकि स्थिति पहले ही बहुत उलझी हुई थी। उदाहरण के लिए युनाइटेड घाना फार्मर्स कौंसिल कोआपरेटिव्स ने राजनीतिक दृष्टि से वांछनीय कार्यकर्ताओं, जैसे क्षेत्रीय अधिकारियों, जिला अधिकारियो, क्रय-विक्रय अधिकारियों, भंडार अधिकारियों और ऐसे ही अन्य तीन हजार से ज्यादा व्यक्तियो को नौकरियां दीं।[64]

एक अन्य उदाहरण के अनुसार भारत में 1966 के बाद कांग्रेस हाईकमान के अंदर आपसी संघर्षों के कारण राज्यों की राजनीति पर केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा अपना प्रभाव जमाने की क्षमता में बहुत कमी आ गई। इससे पहले कांग्रेस हाईकमान, निचले स्तरों पर बराबर होने वाली गुटबंदी को पार्टी में फूट डालने मे रोकने मे सफल हुई (और विभिन्न गुटों को एक दूसरे की बातें मानने आदि के लिए बाध्य किया), लेकिन विशेषकर 1967 के बाद, हाईकमान मे आपस में ही झगड़े हो गए, और राज्यों तथा जिला पार्टियों मे एकता के लिए समझौते कराने का उसका प्रभाव बहुत कम हो गया। परिणाम यह हुआ कि व्यक्तिगत संपर्क (गुट) तेजी से बढ़े, जो कांग्रेस से अलग हो गए। परिधि क्षेत्र की स्थिति पहले की अपेक्षा अत्यंत अव्यवस्थित हो गई।

अंतिम विश्लेषण मे, अल्पविकसित राज्यों में केंद्र और परिधि के बीच आपसी संबंध लगभग परस्पर विरोधाभास वाले हैं। एक ओर तो केंद्र और परिधि के बीच असंख्य संपर्क विद्यमान हैं, और इन दोनों के बीच संपर्कों का यह विशाल जाल बराबर बदलता रहता है, दूसरी ओर, अधिक सुसंगठित संस्थाएं जैसे टांगानिकन, अफ्रीकन नेशनल यूनियन, 'क्षेत्रीय, जिला और उपजिला संस्थाओं का एक समूह है, जो एक

दूसरे के साथ संपर्क रखती हैं और दारेसलाम स्थित मुख्यालय के साथ भी कभी कभी संपर्क में आती हैं।'[65]

यह संपर्क व्यवस्था अत्यत निजी है और केंद्र तथा परिधि के बीच अलक्षित सत्ता संबंधों, और संरक्षण पर निर्भर है।

अलग अलग अभिनेताओं, सरकारी सस्थाओ, राजनीतिक पार्टियों स्वहित वाले दलो, के संदर्भ में राजनीति पर विचार करने की आदत बड़ी मुश्किल से जाती है। और फिर भी यह आदत बहुधा ऐसी वृत्ति को जन्म देती है, कि अल्पविकसित राज्यों की राजनीति के मुख्य मुख्य भेदो की उपेक्षा कर दी जाती है। ये मुख्य भेद हैं इन अल्पसंख्यक राज्यो का अस्पष्ट, अनाकार और अनियमित होना। बाह्य रूप से जो संस्थाएं नजर आती हैं, वे आतरिक दृष्टि मे वास्तव में विशिष्ट व्यक्तियों के सम्मिलन हैं और बाहरी तौर पर ये, व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित समूह हैं। ये सभी केवल सरकार और उससे प्राप्त होने वाले विशेष अधिकारों तक अपनी अपनी पहुंच के कारण उत्पन्न अस्थाई एकता के सूत्र मे बंधे हैं। संस्थाओं के निर्माण का हमेशा ही यह परिणाम नही हुआ है कि कोई स्थाई विधियां और आचार-नियम बन पाए हों। सैमुअल हंटिंगटन ने इस प्रक्रिया की विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया है : 'संस्थाएं, स्थिर, श्रद्धेय और बार बार अपनाए जाने वाले आचार-व्यवहार की प्रारूप हैं।'[66] इस बात की संभावना अधिक है कि संस्थाएं, केंद्रीय विशिष्ट व्यक्तियों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया और इस वर्ग तथा परिधि क्षेत्र के बीच की क्रिया-प्रतिक्रिया के अस्थाई और अक्सर बनने-टूटने वाले संबंधों का मुखौटा हों। अल्पविकसित राजनीतिक प्रणालियों मे जिस प्रकार का व्यक्तिगतवाद सभी जगह व्याप्त है, वह कभी कभी एक ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया का सृजन करता हुआ प्रतीत होता है जो न केवल संस्थात्मकता से परे है बल्कि वास्तव मे इसका विरोधी है।

संदर्भ

1. ये विचार एडवर्ड शिल्स के हैं। उन्होंने केंद्र की परिभाषा इस प्रकार दी है : 'समाज का सचालन करने वाले प्रतीक, मूल्य और आस्थाओं का केंद्र—यह संस्थाओं के अंदर भूमिकाओं और व्यक्तियों की गतिविधियों का ढांचा है'''केंद्रीय सस्थात्मक प्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण पदों पर पहुंचने से ही शासक वर्ग को सत्ता प्राप्त होती है। एडवर्ड शिल्स : 'सेंटर एंड पेरीफेरी', दि लाजिक आफ पर्सनल नालेज : एसेज प्रेजेंटेड टू माइकल पोलान्यी (लदन : रूटलेज एंड केगनपाल, 1961), पृ० 117, 125.

2. ऐरिस्टिड ज़ोलबर्ग . वन पार्टी गवर्नमेंट इन दि आइवरी कोस्ट (प्रिंस्टन · प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ० 323-324

3. उदाहरण के लिए देखिए, डेविड ऐप्टर . दि पालिटिक्स आफ माडर्नाइजेशन, (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967), विशेषकर पृ० 313-356.

4. डेविड ऐप्टर घाना इन ट्रांजीशन, (न्यूयार्क : एथेनियम, 1963).

5. हैनरी बिएनन . तजानिया : पार्टी ट्रासफार्मेशन ऐंड इकोनामिक डेवलपमेंट (प्रिस्टन : प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970), पृ० 5.

6. ऐरिस्टिड जोलबर्ग : क्रिएटिंग पालिटिकल आर्डर दि पार्टी स्टेट्स आफ वेस्ट अफ्रीका, (शिकागो : रैंड-मैकनेली ऐंड कपनी, 1966), पृ० 138.

7. ऐसे अध्ययनो के लिए देखिए, विशेषकर, जोलबर्ग क्रिएटिंग पालिटिकल आर्डर, और बिएनन : तंजानिया।

8. रजनी कोठारी पालिटिक्स इन इंडिया, (बोस्टन · लिटिल ब्राऊन ऐंड कपनी, 1970), पृ० 159

9. सैनिक शासनो का विश्लेषण इस पुस्तक मे अलग से किया जाएगा क्योकि इस प्रकार की घटनाएं हाल में होनी शुरू हुई हैं और इनमें वृद्धि होती जा रही है, और क्योकि सम्मिलन की इस प्रक्रिया के सबध में अधिकाश सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों के विचार बिल्कुल भिन्न है फिर भी कुछ सबद्ध तुलनाए यहा की गई हैं. देखिए अध्याय 5.

10. श्रीलंका की पार्टी प्रणाली के लिए देखिए, काल्विन वुडवर्ड : दि ग्रोथ आफ ए पार्टी सिस्टम इन सिलोन, (प्रावीडेंस ब्राउन यूनीवर्सिटी प्रेस, 1969).

11. यूनाइटेड नेशनलिस्ट पार्टी : मैनीफेस्टो ऐंड कास्टीच्यूशन (1947), अनुच्छेद 3 और 9.

12. वुडवर्ड, पृ० 73.

13. सिएरा लियोने के बारे में देखिए, मार्टिन किलसन : पालिटिकल चेंज इन ए वेस्ट अफ्रीकन स्टेट (कैंब्रिज, मैसाच्युसेट्स : हावर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1966) और जान आर० कार्टराईट : पालिटिक्स इन सिएरा लियोने 1947-1967 (टोरटो : यूनिवर्सिटी आफ टोरटो प्रेस, 1970).

14. पुश्तैनी सत्ता के सबध में मैक्स वैबर ने दि थ्योरी आफ सोशल ऐंड इकोनामिक आर्गेनाइजेशन में लिखा है. अनुवाद : टालकोट पार्संस द्वारा, (न्यूयार्क : फ्री प्रेस, 1957). वैबर ने कहा है कि पितृवाद वहां विद्यमान है 'जहां सत्ता मूल रूप से परंपराओ से मिलती है लेकिन व्यावहारिक रूप में इसका प्रयोग व्यक्तिगत सत्ता के अधिकार से होता है.' पृ० 347.

15. वही, पृ० 341

16. जान वाटरबरी · कमाडर आफ दि फेथफुल (न्यूयार्क : कोलबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970), पृ० 270

17. वही.

18. प्रारभ में जिन्हें एक स्तंभीय पार्टियां कहा गया था उनके अंदर सपर्कों का अच्छा विश्लेषण करने के लिए, पितृवाद को एक सैद्धांतिक विचार के रूप मे सबसे पहले जोलबर्ग ने प्रस्तुत किया था; क्रिएटिंग पालिटिकल आर्डर, पृ० 141-142; और विशेष रूप से ग्वेंथर राथ : 'पर्सनल रूलरशिप, पैट्रीमोनियेलिज्म, ऐंड एंपायर बिल्डिंग इन दि न्यू स्टेट्स', वर्ल्ड पालिटिक्स XX, 2 (1968), 194-203. जोलबर्ग, पितृवाद को ऐसी स्थितियों तक ही सीमित रखना चाहते हैं जहां करिश्मा एक 'दैनिक' बात बन चुका है जे० सी० विलियम ने, पैट्रीमोनियालिज्म,

ऐंड पालिटिकल चेंज इन दि कांगो (स्टेन्फोर्ड : स्टेन्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972) में इस विचार का प्रयोग करने का प्रयत्न किया है लेकिन विलियम ने 'पितृवाद के युग' को कांगो में उसी अवधि में ही रखा है जब निजी सेनाए एक दूसरे से लड़ती थी (1960-1965)

19. इन नेताओं और उनके राज्यो के बारे में पहले बताए गए अध्ययन देखिए : एच० एल० ब्रेटन की दि राइज ऐंड फाल आफ क्वामे एन्क्रूमा (लदन प्रेजर, 1967) मे एन्क्रूमा के व्यक्तिगत प्रभावों से शासन चलाने के बारे मे काफी बढा चढाकर कहा गया है, फिर भी इस पुस्तक मे काफी सूचना मिलती है.

20. एडगर शोर : दि थाई ब्यूरोक्रेसी, ऐडमिनिस्ट्रेटिव सायंस क्वार्टरली, V, (जून 1960), 70 थाईलैंड के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए, डेविड ए० विल्सन पालिटिक्स इन थाईलैंड, (इथाका : कोर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962)

21. इस तर्क के विस्तार के लिए देखिए, जेरल्ड ए० हीगर 'ब्यूरोक्रेसी, पालिटिकल पार्टीज ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट', वर्ल्ड पालिटिक्स, XXV, 4, (जुलाई 1973), 600-607

22. पारस्परिकता का सिद्धात सबसे पहले किलसन ने रखा था . पालिटिकल चेंज इन ए वेस्ट अफ्रीकन स्टेट (कैंब्रिज मैसाच्यूसेट्स · हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966), विशेष रूप से देखिए, पृ० 252-280

23. एक पार्टी विचारधारा पर काफी टिप्पणी हुई है विशेषकर देखिए, चार्ल्स ऐंड्रेन . डिमोक्रेसी ऐंड सोशलिज्म, आइडियोलाजीज आफ अफ्रीकन लीडर्स, डेविड ई० ऐप्टर (सपादित) : आइडियोलाजी ऐंड डिसकंटेंट, (न्यूयार्क . फ्री प्रेस, 1964), 157-169, जोल्बर्ग . क्रिएटिंग पालिटिकल आर्डर पृ० 37-65; जेम्स हीफी : दि आर्गनाइजेशन आफ ईजिप्ट इनेडिकेसीज आफ ए नान पालिटिकल माडल फार नेशन बिल्डिंग, 'वर्ल्ड पालिटिक्स, XVIII', 2 (1966), 177-183 और देखिए, बर्नार्ड त्रिक : इन डिफेंस आफ पालिटिक्स (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1972).

24. लायड फालर्स और आड्री रिचर्ड्स (सपादित) दि किंग्स मेन, (लदन · आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ० 99

25. राइनहार्ड बेंडिक्स . मैक्स वेबर : ऐन इटेलेक्चुअल पोर्ट्रेट, (गार्डन सिटी, न्यूयार्क डबल डे ऐंड कपनी, 1962), पृ० 336.

26. क्लीमेंट एच० मूर · पालिटिक्स इन नार्थ अफ्रीका (बोस्टन : लिटिल, ब्राउन ऐंड कपनी, 1970), पृ० 204

27. मार्टिन किल्सन : 'दि ग्रासरूट्स इन घानयन पालिटिक्स', फिलिप फोस्टर और ऐरिस्टिड जोल्बर्ग (सपादित) : घाना ऐंड दि आइवरी कोस्ट (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1971), पृ० 116

28. इस सीमा समस्या से बचने वाली नीतियो के बारे मे विचारो के लिए देखिए, मैक्किम मैरियट : 'कल्चरल पालिसीज इन दि न्यू स्टेट्स', क्लिफर्ड गीर्त्स (संपादित) : ओल्ड सोसायटीज ऐंड न्यू स्टेट्स, (न्यूयार्क : फ्री प्रेस, 1963).

29. विशेष रूप से देखिए, क्लिफर्ड गीर्त्स : 'दि इंटिग्रेटिव रिवोल्यूशन : प्रिमोर्डियल सेंटीमेंट्स ऐंड सिविक पालिटिक्स इन दि न्यू स्टेट्स', 3 पूर्वोक्त में, पृ० 105-157

30. परिधि (या उसका कुछ भाग) वास्तव में कब और किन परिस्थितियों में उपराष्ट्रीय बनती है, ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें यदि एक ही जैसा मान लिया जाए तो उनका महत्व ही नहीं रहेगा, इस विषय पर, और इससे संबद्ध विषयों पर चौथे अध्याय में लिखा गया है.

31. *संकट उत्पन्न होने के कारणों और परिस्थितियों आदि के बारे में लियोनार्ड बिंडर और अन्य* लेखकों ने बताया है. क्राइसिस ऐंड सीक्वेंसिज इन पालिटिकल डेवलपमेंट, (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971) और देखिए रेमंड ग्रिय, 'क्राइसिस आफ पालिटिकल डेवलपमेंट', वाशिंगटन डी० सी० में अमरीकन पालिटिकल सायंस एसोसिएशन की 1972 में हुई वार्षिक बैठक में पढ़ा गया निबंध.

32. *सिडनी वर्बा 'सीक्वेंसेज ऐंड डेवलपमेंट', बिंडर और अन्य, पृ० 286-316 पर*

33. वुडवर्ड, पृ० 178

34. उदाहरण के लिए देखिए, कार्ल एच० लैंडे 'नेटवर्क्स ऐंड ग्रुप्स इन साउथ ईस्ट एशिया : सम आब्जर्वेशन इन दि ग्रुप थ्योरी आफ पालिटिक्स', अमरीकन सायंस रिव्यू, LXVII, (1973), 103-127

35. इस संबंध में लैमरचंद का कहना है : 'राजनीतिक दक्षता का सारतत्व है आर्थिक लाभ पहुंचाकर, अपने समर्थकों को अपने अनुयायी बनाए रखने की क्षमता'. रेने लैमरचंद 'पालिटिकल क्लायंटेलिज्म ऐंड एथनीसिटी इन ट्रापीकल अफ्रीका : कापीटिंग सालिडेरिटीज इन नेशन बिल्डिंग' अमरीकन पालिटिकल सायंस रिव्यू, LXVI, 1, (1972), 79.

36. अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था के बारे में देखिए, सी० ई० मेरियम और एच० एफ० गोस्नेल : दि अमरीकन पार्टी सिस्टम (न्यूयार्क मैकमिलन ऐंड कंपनी, 1949); और एडवर्ड बैनफील्ड पालिटिकल इन्फ्लूएंस (न्यूयार्क फ्री प्रेस, 1961). अफ्रीकी राजनीतिक पार्टियों के मामले में व्यवस्था के आदर्श को लागू करने के हैनरी बिएनन सबसे अधिक समर्थक रहे हैं देखिए उनकी पुस्तक, तंजानिया, पृ० 3-15, उनकी, 'पालिटिकल मशीन्स इन अफ्रीका' माइकेल लाफ्ती (संपादित) : दि स्टेट आफ नेशन्स कंस्ट्रेंट्स आन डेवलपमेंट इन इंडिपेंडेंट अफ्रीका *(बर्कले ऐंड लास ऐंजिल्स यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1971); और उनकी 'वन* पार्टी सिस्टम्स इन अफ्रीका' सैमुअल पी० हंटिंगटन और क्लीमेंट एच० मूर (संपादित) : अथारिटेरियन पालिटिक्स इन माडर्न सोसायटी (न्यूयार्क बेसिक बुक्स, 1970), पृ० 99-127.

37. मायरन वीनर पार्टी बिल्डिंग इन ए न्यू नेशन (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967), पृ० 14-15, 473.

38. *सी० एम० व्हिटेकर : दि पालिटिक्स आफ ट्रेडीशन (प्रिंस्टन प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस,* 1970), पृ० 375.

39. लैमरचंद, पृ० 86

40 ए० एफ० पी० एफ० एल और बर्मा के बारे में देखिए, फ्रैंक एन० ट्रेजर : बर्मा : फ्राम किंगडम टु रिपब्लिक, (न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए० प्रेजर, 1966), पृ० 166-214 और रिचर्ड बटवेल : *ऊ नू आफ बर्मा, (स्टेनफोर्ड : स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966) पृ० 146-171.*

41. ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों को एक ही मानने की वृत्ति इस तथ्य से उपजी कि अमरीकी व्यवस्थाएं लगभग हमेशा ही राजनीतिक पार्टियां थीं. इस प्रकार, बैनफील्ड ने इन व्यवस्थाओं की परिभाषा दी, 'वे पार्टियां जो राजनीतिक सिद्धांतों में निष्ठा के बजाय भौतिक लाभों के आकर्षण पर अधिक निर्भर करती हैं' (पृ० 237).

42. वाटरबरी, पृ० 269 इथियोपिया, ईरान और बुरुंडी में 1962 से 1968 के बीच, राजमहलों में ऐसी ही व्यवस्थाएं थी

43. रिचर्ड ई० स्ट्राइकर : 'पालिटिकल ऐंड ऐडमिनिस्ट्रेटिव लिंकेज इन दि आइवरी कोस्ट', फोस्टर और जोलवर्ग में, पृ० 86-87

44. वही, पृ० 87.

45. लैंडे, पृ० 116

46 परपरा से ही, 'विकेंद्रीकरण' केवल प्रशासनिक और तकनीकी वर्गों का ही किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए देखिए, एम० जे० कैंपबैल और अन्य दि स्ट्रक्चर आफ लोकल गवर्नमेंट इन वेस्ट अफ्रीका (दि हेग : एम० निझाफ,1965) हम चकि यह कह रहे है कि स्थानीय स्तर पर पार्टी के व्यक्तियो की नियुक्ति किया जाना, अकसर इसलिए होता है कि स्थानीय शाखाओ के बदले केंद्रीय पार्टी की शक्ति बढ़े, इसलिए 'विकेंद्रीकरण' शब्द, राजनीतिक पार्टियो पर भी समान रूप से लागू प्रतीत होता है

47. जोलबर्ग : क्रिएटिंग पालिटिकल आर्डर, पृ० 115

48. तीन राज्यो में इस प्रकार के श्रेष्ठ तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए, डगलस ऐशफोर्ड नेशनल डेवलपमेंट ऐंड लोकल रिफार्म (प्रिंस्टन प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967)

49. उदाहरण के लिए देखिए, बिएनन तजानिया, विशेषकर, पृ० 112-157

50. डेनिस एल० कोहन : 'दि कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी आफ घाना · रिप्रजेंटेशनल आर सालिडेरिटी पार्टी', कनेडियन जर्नल आफ अफ्रीकन स्टडीज, VI, 2 (1970), 177

51. मैनिंग नैश : दि गोल्डन रोड टु माडर्निटी, (न्यूयार्क जान वाईली ऐंड सन्स, 1965) पृ० 93-94 यह ठीक है कि सभी गावो में इस प्रकार की गतिविधिया नही होती, लेकिन यह ध्यान देने योग्य बात है कि नैश एक ऐसे युग के बारे में लिख रहा है जबकि राजनीतिक केंद्र में राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई थी, और लगभग सैनिक विद्रोह की स्थिति थी

52 मायरन वीनर : 'रोल परफार्मेंस ऐंड दि डेवलपमेंट आफ माडर्न पालिटिकल पार्टीज : दि इडियन केस जर्नल आफ पालिटिक्स, XXVI, 4, (नवबर 1964), 835

53. इन मतो का विश्लेषण किया गया है, लायड आई० रूडोल्फ और सूसन होबर रूडोल्फ की पुस्तक, दि माडर्निटी आफ ट्रेडीशन, (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967) में

54. देखिए, डेनिस आस्टिन : पालिटिक्स इन घाना, 1946-1960 (लदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970) पृ० 250-315. यहा इन सघर्षों के बारे में लिखा गया है.

55 बिएनन : 'पालिटिकल मशीस इन अफ्रीका', पृ० 204.

56. स्ट्राइकर, पृ० 93.

57. बिएनन : तजानिया, पृ० 412.

58 समाज में भ्रष्टाचार के प्रभावो का विषय बड़ा जटिल है. इसपर विचारो के लिए देखिए, जेम्स सी० स्काट : ' दि एनालिसिस आफ करप्शन इन सोसायटी ऐंड हिस्ट्री, XI, 3 (जून 1969), 315-341; और उनकी पुस्तक, कंपेरेटिव पालिटिकल करप्शन (एगलवुड क्लिफ्स, एन० जे० प्रेंटिस हाल, 1972).

59 मेल्विन रियान . 'दि थ्योरी ऐंड प्रैक्टिस आफ अफ्रीकन वन पार्टीइज्म : दि सी० पी० पी० रिइग्जामिंड, कनेडियन जर्नल आफ अफ्रीकन स्टडीज, IV, 2 (1970), 157; पार्टी क्रानिकल, XXXVI के (जून 1964) का हवाला देते हुए.

60 क्लीमेंट कार्टिघम . 'पालिटिकल कसालीडेशन ऐंड सेंटरलोकल रिलेशंस इन सेनेगल', कनेडियन जर्नल आफ अफ्रीकन स्टडीज, IV, 1 (1970), 103

61 वही.

62 विल्सन · 'दि ग्रासरूट्स इन घानयन पालिटिक्स', पृ० 119

63. 'पार्टी राज्य' के साथ किसी कार्यकारी दल के सबधो के अध्ययन के लिए देखिए, विलियम टारडाफ : 'ट्रेड यूनियनिज्म इन तंजानिया', 'जर्नल आफ डेवलपमेंट स्टडीज, II, 4 (1966), 408-430.

64 विल्सन, पृ० 120

65. विण्नल . तंजानिया, पृ० 413.

66 सैमुअल हटिंगटन पालिटिकल आर्डर इन चेंजिंग सोसायटीज, (न्यू हेवन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968) पृ० 12

4

अस्थिरता की राजनीति

हाल के वर्षों में लगभग प्रत्येक अल्पविकसित देश को किसी न किसी रूप मे राजनीतिक अस्थिरता का सामना करना पड़ा है : सैनिक क्रांतियां और विद्रोह, विप्लव, राजनीतिक हत्याएं, दंगे, अस्तव्यस्त गुटों के नेताओं में आपसी संघर्ष आदि। शिकायत की गई है कि इस प्रकार की अस्थिरता की घटनाएं, समाजविज्ञान के विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार नहीं हुई क्योंकि 'संघर्षों और अव्यवस्था की घटनाओं का कोई संबंध, परिवर्तनीय स्थितियों, जैसे उपनिवेशवाद, आकार, पार्टियों की सख्या, और आर्थिक तथा सामाजिक विकास' के साथ नजर नही आया।[1]

इस अस्थिरता के स्रोत और कारण क्या हैं ? पिछले डेढ़ दशक के दौरान इन प्रश्नों के जो उत्तर मिले हैं, वे सभी एकरूपता लिए हुए हैं। अल्पविकसित राज्य इसलिए अस्थिर हैं क्योंकि उनकी राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के परिणामों का संचालन करने की क्षमता नही रखती। इस तर्क को कई भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. अल्प विकसित राज्यों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव बहुत असंतुलित है।

> हालांकि नई राजनीतिक इकाइयों ने एक ऐसा क्षेत्रीय ढांचा प्रस्तुत किया जिसके अंदर औपनिवेशिक सत्ता के साथ साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए, हमें इस बात की बराबर चेतना हो रही है कि यद्यपि ये प्रक्रियाएं आपस मे संबद्ध हैं फिर भी उनमे भिन्नता अनिवार्यतः बहुत 'तालबद्ध' नही है अर्थात ऐसा नही है कि यह एक ही गति से हुई हों ` ` `।[2]

संभवत· आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की प्रमुख विशेषता यह है कि यह असंतुलित रही है · · · विशेषकर परिवर्तन की प्रक्रिया, और 'केंद्रीय' और 'स्थानीय' स्तरों के बीच संक्रमण की प्रक्रिया के संबंधों की दृष्टि से।[3]

2 आधुनिकीकरण का अर्थ है मांगों में तेज वृद्धि, विशेषकर उन आधुनिक दलों की ओर से, जिनपर नई राजनीतिक प्रणाली सबसे अधिक निर्भर करती है।

सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन · · राजनीतिक मांगों को बढ़ाते हैं, और राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेने वालों की संख्या में वृद्धि करते हैं। इन परिवर्तनों में राजनीतिक सत्ता और राजनीतिक संस्थाओं के परंपरागत स्रोतों का प्रभाव कम हो जाता है, ये परिवर्तन राजनीतिक एसोसिएशनों के नए आधार और नई राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना की समस्याओं को अत्यंत जटिल बना देते हैं।[4]

जिस किसी भी देश में जनसाधारण को साथ लेकर चलने की प्रक्रिया शुरू होती है वहां इसके साथ साथ राजनीतिक विचारों से प्रभावित लोगों की संख्या में भी वृद्धि होती है। जब लोग भौतिक और बौद्धिक दृष्टि से अपने सीमित स्थानीय दायरे तथा अपनी पुरानी आदतों और परंपराओं की सीमाओं से उखाड़े जाते हैं, तो वे अपनी आवश्यकताओं में भी बहुत बड़े परिवर्तन का अनुभव करते हैं। हो सकता है कि अब उन्हें मकान और नौकरी, सामाजिक सुरक्षा, चिकित्सा सुविधा, और समय समय पर होने वाली बेरोजगारी के खतरे से सुरक्षा, अपने और अपने बच्चों के लिए शिक्षा तथा प्रशिक्षण की सुविधा की आवश्यकता महसूस होने लगे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उन्हें बहुत बड़े परिमाण में विभिन्न प्रकार की नई सरकारी सेवाओं की आवश्यकता होने लगती है।[5]

(अ) व्यक्तियों के तीन निर्णायक वर्ग हैं जिनकी ओर से चुनौती मिल सकती है। ये वर्ग हैं सरकार के असैनिक कर्मचारी, सैनिक कर्मचारी और युवा वर्ग · · · राजनीतिज्ञों के बाद समाज में सरकारी कर्मचारियों का ही वर्ग ऐसा है जो आय और प्रतिष्ठा की दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट वर्ग है। · · · अपने कार्य और प्रशिक्षण के कारण, सरकारी कर्मचारियों ने अपने यूरोपीय पूर्ववर्तियों जैसी जीवन पद्धति अपना ली है। वे सोचते हैं कि अन्य देशवासियों की अपेक्षा वे क्षमता और प्रशिक्षण की दृष्टि से इस योग्य हैं कि शासन का संचालन करें, न कि, केवल नीतियों को कार्यरूप देने के माध्यम मात्र रहें। जल्दी जल्दी

पदोन्नतियों के कारण जिन्हें पदोन्नति मिली है वे और जिनको पदोन्नतियां नहीं हो पाई हैं वे भी महत्वाकांक्षी हो जाते हैं। ··· सैनिक कर्मचारी भी अन्य सरकारी कर्मचारियों की भांति व्यवहार करने लगते हैं। ···

···लगभग प्रत्येक संस्था के क्षेत्र में पीढ़ियों के बीच अंतर देखा जा सकता है···। (ऐसा) संघर्ष, युवा वर्ग के असंतोष के कारण और तीव्र हो जाता है। यह असंतोष इस बात से झलकता है कि युवा वर्ग पुराने स्थापित नियमों और मानदंडों का उल्लंघन करने लगता है। साथ ही यह असंतोष समान आयु के लोगों के आंदोलनों और संगठनों के उभरने में भी व्यक्त होता है। ये आंदोलन और संगठन औद्योगिक दृष्टि से विकसित समाज के युवक दलों का व्यावहारिक रूप हैं, जो अपना अलग अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं और राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्र होकर काम करना चाहते हैं।[6]

3. मांगों में वृद्धि और अनुपलब्ध साधनों के लिए विभिन्न संप्रदायों के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण संप्रदायों का राजनीतिक विभाजन हुआ है और इनके आपसी तनावों में भी वृद्धि हुई है।

अफ्रीका में विभिन्न दलों के बीच पहले से विद्यमान भेदभावों में कुछ अन्य दलों ने वृद्धि की जो यूरोपजन्य परिवर्तन के असंतुलित प्रभाव से उपजे थे ·· साधारणतया, दो समूहों के बीच प्रायः कोई भी भेद या अंतर, राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बन सकता है।[7] ··· सामाजिक संघटन और प्रतिस्पर्धारत आधुनिक क्षेत्र की इस पृष्ठभूमि में ही, बहुत सी संस्कृतियों वाले समाज में सांप्रदायिक संघर्ष को समझने की जरूरत है··· बहुसांस्कृतिक समाज के सदस्यों में यह प्रवृत्ति होती है कि वे प्रतिस्पर्धा से भरे इस विश्व को सांप्रदायिक नजरिए से देखते हैं और सांप्रदायिक भावनाओं के लिए की गई अपीलों के प्रभाव में आ जाते हैं। इसलिए सांप्रदायिकता एक प्रकार का अवसरवाद बन जाती है। इस बात की कोई चिंता नहीं होती कि किसी एक प्रतिस्पर्धा के परिणाम के लिए सांप्रदायिक मानदंडों की कोई आवश्यकता नहीं है। महत्व की बात यह है कि आमतौर पर यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्तियों का भाग्य उनके संप्रदाय और संपर्कों पर निर्भर करता है।[8]

4. आधुनिक राजनीतिक संस्थाएं अभी इतनी नई हैं कि उनमें बढ़ी हुई मांगों को पूरा करने की क्षमता नहीं है।

राजनीतिक संस्थानीकरण के संदर्भ में देश का राजनीतिक पिछड़ापन सरकार

के लिए विभिन्न मांगों को विशेषकर उन मांगों को जिन्हें वैध तरीकों से व्यक्त किया जाता है और जिनको राजनीतिक प्रणाली के अंदर साधारण एकीकृत रूप में रखना होता है, पूरा करना असंभव नही तो कम से कम कठिन अवश्य बना देता है। इसीलिए राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने वाले व्यक्तियो की सख्या बहुत बढ जाती है जिससे राजनीतिक अस्थिरता की आशंका उत्पन्न हो जाती है।[9]

इस सामान्य तर्क के साथ बहुधा एक और बात कही जाती है। अक्सर यह कहा जाता है कि अस्थिरता ऐसे नेताओं के कारण आती है जो 'सुयोग्य' नही होते, इस अर्थ मे कि उनमे 'आधुनिकीकरण की वृत्ति और सरकार चलाने का औपचारिक कौशल बहुत कम होता है।'[10]

यहां उदाहरण के साथ दिया गया तर्क सांकेतिक है और एक ऐसे नाजुक राजनीतिक केंद्र का चित्र प्रस्तुत करता है जिसपर परिधि का परंपरावाद हावी है। लेकिन इस तर्क और इसके द्वारा प्रस्तुत किए गए चित्र, दोनों को लेकर कुछ कठिनाइयां हैं।

पहली बात तो यह है कि संस्थानीकरण (इंस्टिट्यूशनलाइजेशन) और संस्थात्मक क्षमता को जो विशेष महत्व दिया गया है वह वैसा ही पक्षपातपूर्ण है जैसाकि इस पुस्तक के प्रारभ मे बताया गया है। पक्षपातपूर्ण इस संदर्भ मे है कि परिवर्तन तो अनिवार्य है और आवश्यकता केवल इसके समुचित संचालन की है। अस्थिरता को इस अर्थ में अनिवार्य माना जाता है कि यह अस्पष्ट विचारों वाले या भ्रष्ट नेताओ, गलत ढंग से नियोजित आर्थिक कार्यों, अपर्याप्त रूप से नियंत्रित जनसहयोग आदि की चरम परिणति है। इसके साथ ही यह इन अर्थों मे अनिवार्य नही है कि ये सभी विकार दूर किए जा सकते है या इनमे परिवर्तन लाया जा सकता है। नए नेता चुनकर, और अच्छी योजनाएं बनाकर और अधिक अनुशासन लागू करके इस तरह का परिवर्तन किया जा सकता है। लेकिन इस बात का प्रमाण बहुत कम है कि विकारों को दूर करने से संबंधित कथन सत्य है। अनुभव से यही सिद्ध हो रहा है कि अस्थिरता भयंकर रूप में है। कभी ऐसा नजर नही आता कि नेता बहुत अच्छे स्तर के हों, या योजनाएं काफी प्रगतिशील हो। अब सवाल यह उठता है कि अल्पविकसित राज्यों में, चाहे किसी राज्य का शासन चलाने वाले कितने ही बुद्धिमान क्यों न हों, राजनीतिक अस्थिरता किस सीमा तक अनिवार्य है। अल्पविकसित राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया में अस्थिरता अंतर्निहित है। राजनीतिक केंद्र में राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियो के बीच आपसी सामंजस्य का उतना सुदृढ़ न होना, उनके गठबंधन अल्पकालिक होना और उनके आपसी झगड़ो के कारण इनकी संधियों के टूटने का खतरा सदा बने रहना,

ये कुछ ऐसी बाते हैं जिनसे लगभग अनिवार्यतः कोई भी राजनीतिक सस्था दुर्बल और खोखली हो जाती है।

दूसरी बात है मांगों में वृद्धि की। सिद्धात रूप में तो यह बात बड़ी प्रभावशाली लगती है लेकिन वास्तव में यह कुछ अस्पष्ट सी है। कितनी वृद्धि को अत्यधिक माना जाए? हमें इसका पता कैसे लगे? क्या हमें इन बातों का पता तभी लग सकता है जबकि कोई प्रणाली ढह गई हो और अपने पीछे अपर्याप्त जानकारी छोड गई हो जिससे कोई दूसरे कारण खोजे जा सकें? बहुधा ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिकीकरण के कारण, माग और राजनीतिक गतिविधियों मे शामिल होने वालो की संख्या में वृद्धि का बोझ केंद्र पर उतना नही पड़ता जितना कि उसे व्यक्तिवाद और गुटबंदी से खतरा होता है।

इस कथन और वर्तमान तर्क के बीच अंतर बहुत सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण है। यह कहने के बजाय कि अस्थिरता का स्रोत राजनीतिक गतिविधियों मे लोगों का अधिक संख्या में शामिल होना ही है, यह कहा जा रहा है कि स्वयं राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति ही अस्थिरता के प्रमुख कारण हैं। उनकी आपसी एकता का कमजोर होना, और राजनीतिक प्रणाली में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति, ये दोनो ऐसी बाते हैं जिनमे केंद्र अस्थिर हो जाता है। सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों की संख्या में वृद्धि मे यह समस्या बढ़ती ही है क्योंकि राजनीतिक केंद्र में सत्ता के महत्वपूर्ण पदो की संख्या भी बढ़ती है।

विशिष्ट व्यक्तियो के आपसी संघर्ष के कारण अल्पविकसित राज्यों में पृथक समूहीकरण होने लगता है। पुराने जमाने मे ही इस समूहीकरण को पृथक्तावादी प्रणालियों के साथ संबद्ध किया जाता रहा है। किसी झगड़े से संबद्ध विशिष्ट व्यक्ति के संपर्क वाले दल और अन्य विशिष्ट लोग भी उस विवाद मे उलझ जाते हैं और धीरे धीरे कई बड़े बड़े गुट उभर आते हैं।[11] इस तरह के सघर्ष से एक तरह की गुटबंदी की प्रक्रिया शुरू होती है क्योंकि संघर्षरत विशिष्ट व्यक्ति, व्यक्तिगत समर्थन के लिए अपने समर्थकों का दायरा विस्तृत करने का प्रयत्न करते हैं। इसी तरह अन्य विरोधी विशिष्ट व्यक्ति भी अपने अपने अनुयायियो को जुटाने लगते हैं।

इस तरह की गुटबंदी या दल विरासत निर्माण (पैट्रिमनी बिल्डिंग) की वृत्ति अलग अलग तरीकों से उभरती है। राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति अपने समर्थको को अपने पीछे लगाए रखने के लिए परंपरागत संबंधों की दुहाई दे सकते हैं या सैद्धातिक मामलो को उठाकर अपील कर सकते हैं। या फिर वे अधिकारीतंत्र और सेना के विशिष्ट

व्यक्तियों को शामिल करने के लिए व्यक्तिगत आधार पर गठजोड़ कर सकते हैं। अन्य शब्दों में, विशिष्ट व्यक्तियों के बीच संघर्ष और गुटबंदी अक्सर सांप्रदायिकता और सैनिक हस्तक्षेप की घटनाओं का रूप ले लेते हैं।

गुटबदी और विरासत निर्माण

इस बात को लेकर कोई मतभेद नहीं है कि अल्पविकसित राज्यों के राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के बीच गुटबंदी की प्रवृत्ति क्षेत्रीय है। लेकिन, गुटों को इस प्रकार से परिभाषित करने की प्रवृत्ति भी है, कि विभाजनों में, लगभग अनिवार्य और कभी न दूर होने वाले मतभेद प्रतिबिंबित होते हैं। इसका एक उदाहरण है विशिष्ट व्यक्तियों के आपसी संघर्ष का सैद्धांतिक दृष्टि से विश्लेषण। उदाहरण के लिए जान काट्स्की ने राष्ट्रवादी विशिष्ट व्यक्तियों (जिन्हें वे 'आधुनिक रूप देने वाले' कहते हैं) के बीच स्वाधीनता के बाद उपजे संघर्षों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सबसे पहले सैद्धांतिक मतभेदों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।[12] अन्य तथाकथित अनिवार्य मतभेदों जैसे राष्ट्रवादी आंदोलन के अंदर ही अलग अलग पीढ़ियों के लोगों के बीच संघर्ष और विभिन्न जातीय पृष्ठभूमियों वाले विशिष्ट व्यक्तियों के बीच के संघर्ष की ओर भी विशेष रूप से ध्यान दिलाया गया है।

इस प्रकार के सामान्यीकरण से समस्या यह नहीं उठती कि विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आपसी मतभेद वास्तविक और लाभकारी नहीं हैं, बहुधा ये वास्तविक और लाभकारी होते हैं, बल्कि समस्या उठती है कि उनके ये विभाजन अनिवार्य या पूर्वनिश्चित नहीं हैं।[13] आधुनिकीकरण से सामाजिक अस्मिता विशेषकर, और साथ ही राष्ट्रीय अस्मिता की संभावनाएं बढ़ती हैं। अल्पविकसित राज्यों में सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से पृथक अस्तित्वों की संख्या बहुत अधिक है और ज्यादातर यह पृथकता अपरिपक्व होती है परिणामस्वरूप अव्यवस्थित भी। असली सवाल यह नहीं है कि सामाजिक विभेद उभरकर सामने आएंगे या नहीं बल्कि प्रश्न यह है कि मुख्य राजनीतिक मतभेद इस विभेद का कौन सा रूप ग्रहण करेंगे। राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के बीच संघर्ष को समझने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि शुरुआत उनके सामाजिक, आर्थिक और सैद्धांतिक मतभेदों से नहीं बल्कि उनको इस तरह की फूट को राजनीतिक दृष्टि से अपने लिए महत्वपूर्ण और लाभकारी बनाने के प्रयत्नों से की जाए।

जैसा पहले कहा गया है, अल्पविकसित राज्यों के राजनीतिक केंद्रों में विकेंद्रीकरण की बहुत तीव्र प्रवृत्ति पाई जाती है। किसी भी केंद्रीय सम्मिलन अथवा गठबंधन की स्थिरता विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के इस दृष्टिकोण पर निर्भर करती है कि इस

सम्मिलन में भाग लेने से कुछ लाभ हो रहे हैं। यह स्थिरता इस बात पर भी निर्भर करती है कि ये विशिष्ट व्यक्ति अपने अपने अनुयायियो पर नियंत्रण बनाए रखने में कहा तक सक्षम हैं। इसके अलावा स्थिरता इस बात पर भी निर्भर है कि जहा पितृवाद के अंकुर विद्यमान हैं वहा ये पुश्तैनी नेता अपने व्यक्तिगत अनुयायियो को अपने अपने राजनीतिक प्रभावक्षेत्र बनाने से रोकने मे किस सीमा तक सफल होते हैं।[14] इन सभी बातों को पूरा करने के मार्ग मे आने वाली स्पष्ट कठिनाइयो से ही विभिन्न गुटों के उस सघर्ष को समझा जा सकता है जो अक्सर अल्पविकसित राज्यो में पैदा होता है।

विकेंद्रीकरण विशेष रूप से उत्तरी नाईजीरिया, सिएरा लियोने और श्रीलका जैसे इलाकों में नजर आता है जहा परंपरागत विशिष्ट व्यक्तियो ने राजनीतिक केंद्र के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तरी नाईजीरिया मे नार्दर्न पीपुल्स काग्रेस ने 'अर्ध प्रभुसत्ता संपन्न 'स्वायत्तशासी' राज्यो के रूप मे अमीरों के परपरागत अस्तित्व को प्रतिबिंबित किया और मान्यता दी।'[15] एन० पी० सी० की कार्यकारिणियों ने स्वयं को उच्च अधिकारों वाली ऐसी संस्थाओ के रूप मे स्थापित करने के बजाय जिनके निर्णयों को विभिन्न अमीरों को स्वीकार करना ही होता था, समान हित के मामलो तक ही अपने आपको सबद्ध रखा।[16] विकेंद्रीकरण के दबाव तंजानिया जैसे देशो मे भी उपस्थित थे जहा के नेता अधिक आधुनिकतावादी थे। सरकार के मत्रालय और व्यक्तिगत अनुयायी भी निजी विरासत का आधार बन सकते हैं।

> सरकारी नेता स्वय टी० ए० एन० यू० सगठन के नेता हैं जो कुछ हद तक स्वाधीनता आदोलन के नेता होने के कारण सत्ता मे हैं लेकिन साथ ही इसलिए भी उनकी सत्ता है कि उन्होंने इसे औपनिवेशिक शासको से उत्तराधिकार मे प्राप्त किया। वे सरकारी तंत्र का नियंत्रण करने वाले पदों पर पहुंचे हैं, अपनी स्थिति के अनुकूल वेतन लेते हैं और सत्ता के प्रतीकों, राजभवन, बड़ी बडी मोटरगाड़ियों, और उपाधियो, पर अपना एकाधिकार रखते हैं। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सत्ता के क्षेत्र मे वे प्रथम उत्तराधिकारी हैं। चूंकि नए नेता स्वदेशी शासन चलाने वाले पहले व्यक्ति हैं इसलिए उन्हें प्रतीको पर एकाधिकार बनाए रखने के अधिक अवसर हैं और अपनी ही परिकल्पना के अनुसार नई संस्थाओ का सृजन करने की अधिक स्वतंत्रता है।[17]

उत्तरी नाइजीरिया और तंजानिया दोनो में एक दृढ़ केंद्रीय पार्टी कर्मचारी सगठन का विकास करके केंद्रीयकरण को प्रोत्साहन देने के प्रयत्नों को, स्वयं निर्वाचित राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों ने ही निरुत्साहित किया।[18]

विकेंद्रीकरण की यह लगभग स्वाभाविक प्रक्रिया कई तरह से तीव्र होती है। एक तो यह कि केंद्रीय नेता अक्सर सरकार के प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करके केंद्र और परिधि पर नियत्रण प्राप्त करने के प्रयत्न करते हैं। यह विस्तार विकास एजेंसियों का गठन करके और स्वयंसेवी संस्थाओं को सीधा सरकार में मिलाकर किया जाता है। विशिष्ट व्यक्तियो को विरासत के नए स्रोत देकर ये नई एजेंसिया गठबंधनों अथवा सम्मिलनो की जटिलता और विशिष्ट व्यक्तियों के बीच पारस्परिक स्पर्धा की सभावनाए वढा देती है।

विकेंद्रीकरण का यह नमूना घाना मे 1960 के बाद विशेष रूप से स्पष्ट दिखाई दिया। अपनी लोकप्रियता मे कमी, दूसरे और तीसरे वर्ग के सक्रिय व्यक्तियों (जिन्होंने स्वयसेवी संस्थाओ का नेतृत्व किया) के बीच बढते हुए असंतोष, और पार्टी में आम बेचैनी को देखते हुए, एन्क्रूमा और सी० पी० पी० के महासचिव तवाया एडमाफियो ने सारी पार्टी का पुनर्गठन किया। पार्टी से संबद्ध स्वयसेवी संस्थाओं, ट्रेड यूनियन काग्रेस, यूनाइटेड घाना फार्मर्स काउंसिल, नेशनल काउंसिल आफ घाना विमेन, घाना यंग पायोनियर्स और दि कोआपरेटिव मूवमेंट को सी० पी० पी० की शाखाओ में बदल दिया गया (और इसीलिए ये अर्धसरकारी एजेंसिया हो गई)। विभिन्न एसोसिएशनो के नेताओ की पार्टी के पदो पर नियुक्त किए जाने की मांगें पूरी की गईं और सिद्धात रूप मे पार्टी के सगठनात्मक और सैद्धातिक विचारधारा के प्रभावक्षेत्र का विस्तार किया गया।[19] पार्टी का एक नया हरावल तैयार किया गया जिसका केंद्र, नेशनल एसोशिएशन आफ सोशलिस्ट स्टूडेंट्स आर्गनाइजेशन (एन० ए० एस० एस० ओ०) और क्वामे एन्क्रूमा आईडियोलाजीकल इंस्टीच्यूट थे। जल्दी ही इन सभी दलो ने सी० पी० पी० मे, और घाना की राजनीतिक प्रणाली में अपना अपना प्रभाव जमाने के प्रयत्न शुरू कर दिए। इससे भी पहले, कोको परचेजिंग कंपनी लिमिटेड जैसी एजेंसिया न केवल सी० पी० पी० के लिए बल्कि इनका संचालन करने वाले खास खास विशिष्ट लोगों के लिए वित्तीय संरक्षण प्रदान करने का माध्यम वन गई थी।[20]

सरकारी उद्यमों अथवा प्रतिष्ठानो ने थाईलैंड मे भी स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अधिकाश सरकारी उद्यमों और विकास एजेंसियो पर कुछ खास लोगो के किसी न किसी गुट का नियंत्रण रहा है और इनका उपयोग विभिन्न गुटों के समर्थन और विस्तार के लिए किया गया है।[21] टी० एच० सिलकोक के अनुसार, विरासत निर्माण के काम मे बैंको का व्यापक उपयोग किया गया, और अलग अलग बैंकों पर अलग अलग गुटो का नियंत्रण था। वे इनका इस्तेमाल अपने गुट के सदस्यों को ऋण, नौकरियां और व्यवसाय दिलाने के लिए करते थे।[22]

दूसरी बात यह है कि विकेंद्रीकरण को राजनीतिक नेताओं ने भी गति प्रदान की है। ये नेता अधिकतर योग्यता के स्तर से नीचे ही हैं। अल्पविकसित राज्यों के कई शासकों को, विचारधारा की हठधर्मी और सीमित समझबूझ के कारण, 'अपनी प्रारंभिक राजनीतिक वैधता का अधिकार, लाभों के वितरण की क्षमता, और प्रभाव को अनावश्यक कामों में लगाकर' व्यर्थ गंवाना पड़ा है।[23] इससे भी बडी बात यह है कि कभी कभी पुश्तैनी नेता को अपनी स्वायत्ता और सत्ता बनाए रखने के लिए जो प्रयत्न करने पड़े हैं वे आत्मविफलता ही लाए हैं। एन्क्रूमा ने विभिन्न गुटों को एक दूसरे से लड़ाने के जो प्रयत्न किए उनसे इन गुटों के समक्ष उनकी साख कम हो गई और वे 'दिनों दिन एक डरे हुए, सबसे कटे हुए नेता बनते चले गए जो एक जड राजनीतिक ढाचे के शिखर पर बैठे थे।'[24] 1963 तक 'एन्क्रूमा ने अपने सभी दुश्मनों का सफाया कर दिया था लेकिन स्पष्ट है कि उनके दोस्त गिने-चुने ही रह गए।'[25]

इस प्रकार के अयोग्यतापूर्ण नेतृत्व और तेजी से बढती हुई सरकारी गतिविधि के परिणामस्वरूप अक्सर गुटों के बीच आपसी संघर्ष बढ जाता है। अनुयायियों को अपने पीछे लगाए रखने के लिए उत्सुक लेकिन केंद्र में सीमित साधनों की समस्या में उलझे विशिष्ट व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हित साधने के लिए कई तरह के स्रोतों का उपयोग करते हैं। विशिष्ट व्यक्ति एक दूसरे को पारस्परिक आधार पर संतुष्ट रखने की जिस भावना को लेकर चलते हैं वह टूट जाती है और प्रत्येक विशिष्ट व्यक्ति मिलेजुले सत्तारूढ़ सम्मिलन या पुश्तैनी नेता के लिए साधन जुटाने के बजाय अपने लिए ही कार्य करने लगता है। इस प्रकार राष्ट्रनिर्माण की जगह गुटनिर्माण होने लगता है।

कभी कभी गुटों में मूलतः विचारधारा संबंधी संघर्ष भी हो सकता है। 1958 में सत्तारूढ़ सिएरा लियोने पीपुल्स पार्टी में मिल्टन मारगाई और अल्बर्ट मारगाई के बीच जो झगड़ा हुआ था उसका मुख्य कारण अल्बर्ट मारगाई और उनके समर्थकों की तीव्र सामाजिक सुधार लाने की इच्छा थी।[26] इस झगड़े का नतीजा यह हुआ कि बाद में अल्बर्ट मारगाई ने एक विपक्षी दल बना लिया। इसी प्रकार सिंगापुर में पीपुल्स ऐक्शन पार्टी भी सैद्धांतिक मतभेदों को लेकर कम्यूनिस्ट और गैर कम्यूनिस्ट गुटों में बट गई।[27] 1969 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उच्च कमान के विघटन का कारण भी विचारधारा संबंधी मतभेद ही थे।

लेकिन आम तौर पर यह देखा गया है कि गुटों के संघर्ष विशिष्ट व्यक्तियों के आपसी झगडों से पैदा होते हैं। ये विशिष्ट व्यक्ति अपने व्यक्तिगत समर्थन को सुदृढ करने के प्रयत्नों के कारण ही आपस में झगड बैठते हैं। गुट निर्माण केंद्रित होता है व्यक्तिगत

व्यवस्थाओं के विकास पर जिनके माध्यम से कोई नेता अपने लिए समर्थकों को आकृष्ट कर सकता है। ज्यादातर ये व्यवस्थाएं इस बात पर निर्भर करती हैं कि नेता की पहुंच सरकारी लाभों और संरक्षण प्रदान करने वाले पदों तक बनी रहे। अब चूंकि गुटों के नेताओं को इस पहुंच की आवश्यकता होती है इसलिए वे सरकार में ही बने रहना चाहते हैं। हां वे संभवत: यह इच्छा उस हालत में छोड़ सकते हैं जबकि उन्हें काफी बड़ा पारंपरिक दर्जा मिला हुआ हो या अपने अनुयायियों को अपने साथ रखने के लिए उनके पास समुचित निजी संपत्ति हो, या जब वे यह स्पष्ट रूप से जान लें कि विपक्ष के विशिष्ट व्यक्ति, सचमुच ही सरकार का नियंत्रण (और संरक्षण) अपने हाथ में ले सकते हैं।[28]

आम तौर पर गुटों का संघर्ष शासन के दायरे में ही सीमित रहता है। संघर्षरत विशिष्ट व्यक्ति मंत्रालयों और पार्टी के विभिन्न अंगों पर अपने नियंत्रण का उपयोग, अपने वर्तमान समर्थकों को विशेष लाभ पहुंचाने और नए समर्थकों को आकृष्ट करने के लिए करते हैं। उल्लेखनीय है कि भ्रष्टाचार इस प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। विशिष्ट व्यक्ति अपने तथा अपने समर्थकों के लाभ के लिए राजस्व की हेराफेरी करते हैं।[29]

व्यक्तिगत व्यवस्था के निर्माण में ऊपरी तौर पर तो सांप्रदायिक और क्रांतिकारी बातों को लेकर अपील की जाती है जबकि वास्तव में यह व्यक्तियों का संघर्ष होता है। इस तरह की अपीलों में संघर्षरत विशिष्ट व्यक्तियों को समर्थक आकृष्ट करने और अपने लिए समर्थन सुदृढ़ करने का एक और साधन मिल जाता है। श्रीलंका में यह गुटवाद सबसे पहले उस समय सामने आया जब एस० डब्ल्यू० आर० डी० भंडारनायके और शेष यूनाइटेड नेशनलिस्ट पार्टी के बीच नीति संबंधी झगड़े हुए और शायद इससे भी महत्वपूर्ण घटना थी प्रधानमंत्री पद के लिए मनोनीत होने के भंडारनायके के विफल प्रयास। अंतत: वे यू० एन० पी० से अलग हो गए और विपक्ष से जा मिले। इस विघटन से पहले ही भंडारनायके ने व्यक्तिगत संपर्कों, स्थानीय सामाजिक व्यवस्थाओं, और जनसमर्थन को एक गुट का रूप देना आरंभ कर दिया था। इस काम में उन्होंने अपनी निजी संपत्ति, आल सिलोन विलेज कमेटी कान्फ्रेंस के अध्यक्ष पद पर अपनी सत्ता और सांप्रदायिक सिंहल महासभा के नेता पद का उपयोग किया और सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भाषायी पुनरुत्थान की अपीलें कीं।[30]

केंद्र के विस्तार की प्रक्रिया और गुट निर्माण के बीच बड़ा अनिश्चित सा अंतर है। वास्तव में ये दोनों एक ही हैं। जैसा पहले हम देख चुके हैं, केंद्र और परिधि के संपर्कों का विस्तार परोक्ष है जो किसी एक विशिष्ट व्यक्ति और उसके अनुयायियों के बीच व्यक्ति-

गत संपर्कों पर निर्भर करता है। इस तरह के संपर्क, केंद्र (सत्ता का औपचारिक स्थल) के लिए समर्थन जुटाते हैं या किसी एक नेता के लिए (एक गुट), यह इस बात पर निर्भर करता है कि पुराने नेता में अपने परम अनुयायियों पर प्रभाव बनाए रखने की क्षमता कितनी है (जबकि इन अनुयायियों के अपने ही और अनुयायी होते हैं), और केंद्र में विशिष्ट व्यक्तियों और उनके अनुयायियों को भौतिक लाभ पहुंचाने की कितनी सामर्थ्य है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि गुटवाद, अलग अलग खंडों में विभाजन का परिणाम इतना नहीं है (खंड तो पहले से विद्यमान हैं) जितना कि यह विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के बीच एकता के संबंधों के ढह जाने का परिणाम है।

विशिष्ट व्यक्तियों के आपसी संघर्ष का परिणाम शेष राजनीतिक प्रणाली के लिए क्या हो सकता है, इस संबंध में आसानी से पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। केंद्र और परिधि के बीच, और स्वयं परिधि के अंदर ही बनने-बिगड़ने वाले इन संबंधों से राजनीतिक गतिविधियों का अस्तित्व अलग राजनीतिक अखाड़ों में बना रहता है, संघर्ष का प्रत्येक क्षेत्र अलग अलग समस्याओं और व्यक्तियों के कारण अपनी विशिष्टता लिए हुए रहता है। किसी एक स्तर पर होने वाला गुटवाद, किसी दूसरे स्तर पर प्रभाव डाल भी सकता है और नहीं भी। भारत में केंद्र के विशिष्ट व्यक्तियों के *आपसी संघर्ष का प्रभाव, संपूर्ण राजनीतिक प्रणाली पर बहुत मामूली* सा रहा है। कांग्रेस अध्यक्ष के पद के लिए न चुने जाने पर 1951 में आचार्य कृपलानी द्वारा कांग्रेस पार्टी छोड़ देने का असर पार्टी में अन्य कहीं भी वास्तव में नहीं पड़ा। यहां तक कि आचार्य कृपलानी की विचारधारा के दृढ़ समर्थकों पर भी इस घटना का कोई असर नहीं हुआ।

कभी कभी राजनीतिक अखाड़ों, और गुटों, के बीच व्यक्तित्वों के कारण संपर्क बने रहते हैं। उदाहरण के लिए कीनिया में ओगिंगा ओडिंगा और टाम एंबोया के बीच व्यक्तिगत मतभेदों का प्रभाव पार्टी के निचले स्तरों पर केवल उन्हीं जिलों में पड़ा जहां ओडिंगा के सक्रिय व्यक्तिगत अनुयायी थे। इन मतभेदों के कारण 1966 में ओडिंगा ने कानू (के० ए० एन० यू०) पार्टी छोड़ दी थी। सेंट्रल न्यांजा जिले में, जो ओडिंगा का अपना क्षेत्र था, के० ए० एन० यू० की शाखा पर ओडिंगा और उनके समर्थकों का बोलबाला था और ओडिंगा द्वारा पार्टी से अलग हो जाने के बाद सेंट्रल न्यांजा जिले की सारी शाखा ही नई पार्टी में बदल गई।[31] 1969 में भारत में कांग्रेस पार्टी के विघटन से भी ऐसे ही संपर्क का स्वरूप नजर आता है। केंद्र में सिंडीकेट ग्रुप (संगठन कांग्रेस) मुख्यतः मैसूर और गुजरात राज्य में कांग्रेस सरकारों पर अपना प्रभाव और नियंत्रण जमाए हुए था क्योंकि इन राज्यों में सिंडीकेट के कई सदस्यों का व्यक्तिगत प्रभाव था। कीनिया और भारत में अन्य स्थानों पर भी विभिन्न स्तरों पर

परस्पर विरोधी गुटों के बीच जो थोड़ा बहुत संपर्क था, वह अपने अपने हितों की दृष्टि में बना हुआ था।

निचले स्तर के गुटों ने अपने आपको किसी केंद्रीय गुट के साथ इतना संबद्ध इसलिए नहीं किया कि वे ओडिंगा या सिंडीकेट का व्यक्तिगत या सैद्धांतिक समर्थन करते थे बल्कि इसलिए किया कि उनके स्थानीय विरोधी गुट ने अपने आपको केंद्र के अंदर किसी अन्य गुट से संबद्ध कर लिया था। इसके परिणामस्वरूप गुटों की ये श्रृंखलाएं अक्सर असमान तत्वों की कड़ियों से जुड़ी होती हैं जो अपेक्षाकृत अस्थिर रहती हैं। इसके अलावा ये गुट किसी निश्चित प्रक्रिया के कारण नहीं बनते, बल्कि किसी एक क्षण में ये एक दूसरे का साथ देने लगते हैं। गुटों की श्रृंखला की कड़ियां जोड़ने वाले तत्व तो पहले से ही विद्यमान रहते हैं।[32]

गुटों के बीच विभिन्न स्तरों पर, सैद्धांतिक संपर्क भी बन सकते हैं। घाना में एन० ए० एस० एस० ओ० यानी नेशनलिस्ट एसोसिएशन आफ सोशलिस्ट स्टूडेंट्स आर्गनाइजेशन, ऐसे ही सैद्धांतिक संपर्कों वाले गुट का उदाहरण है। यह गुट पार्टी के विभिन्न स्तरों पर अस्तित्व में आ गया है। आइवरी कोस्ट के अध्ययन में मार्टिन स्टेनीलैंड ने कहा है कि एक 'विकासोन्मुख गुट' अस्तित्व में है, जिसके सदस्यों को 'उनके इस दावे के आधार पर पृथक रूप में देखा जा सकता है कि वे जिन आधुनिक 'तर्कसंगत' मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं वे विकास के वास्तविक हित में हैं और इसीलिए वे (अपनी शिक्षा और प्रशासन चलाने की योग्यता के आधार पर) राजनीति में भाग लेने 'विशेषकर बीच के स्तरों पर (सरकार और पार्टी के अंतरवर्ती स्तर) भाग लेने के अधिकारी हैं। कभी कभी केंद्रीय विशिष्ट व्यक्ति जिनके बीच का मतभेद आंशिक रूप से सैद्धांतिक होता है ऐसे दलों को अपने समर्थन में जुटा सकते हैं। लेकिन इस तरह के गुट अल्पकालिक होते हैं। जैसा स्टेनीलैंड ने कहा है: 'संभवतः इस वर्ग को गुट नहीं अपितु मनोवैज्ञानिक जुटाव, दल नहीं अपितु कुछ व्यक्तियों की एक ही स्थल पर उपस्थिति कहा जाना चाहिए।'[33]

विपक्ष गुटबदी की इस प्रक्रिया का एक अविभाज्य अंग है। यह सरकारी दल के अंदर ही आपसी गठबंधनों और विलय आदि की स्थितियों पर निर्भर है। विपक्षी पार्टियां बहुधा विशिष्ट वर्ग के गुटवाद से बनती हैं। यह बात कीनिया के उदाहरण से स्पष्ट है। भारत के बारे में रजनी कोठारी ने लिखा है:

> इस प्रकार राजनीतिक मतभेद, समाज के राजनीतिक केंद्र में विभाजन की प्रक्रिया का परिणाम है न कि सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में अपने अपने हितों

के लिए स्वतंत्र रूप से कार्य करने की वृत्ति का परिणाम। विरोधात्मक गतिविधियों को समाजिक हितों की विभिन्नता से नही, बल्कि राजनीतिक दलो के विभाजन से बल मिला।

असहमति की प्रक्रिया पर कही गई इस बात से भारत की राजनीति की एक और विशेषता स्पष्ट होती है। यह विशेषता है सरकार, सत्तारूढ पार्टी के अंदर असंतुष्ट गुटों, विपक्षी पार्टियों और उनके अदर के विपक्षी गुटो के बीच अस्पष्ट, परस्परव्यापी विभेदो का होना।[34]

इस प्रकार का बेतुकापन भारत में ही नही है।

आज के विद्वान जिस तरह से राजनीतिक संस्थाओ का विश्लेषण करते हैं उसी प्रकार वे राजनीतिक विरोध, विशेषकर विपक्षी पार्टी के स्वरूप, को भी मूर्त रूप देना चाहते हैं। राजनीतिक पार्टियो को सामान्यतया 'सरकारी संस्थाओ से भिन्न अलग संगठनों के रूप में देखा जाता है जो जोर-शोर से व्यक्त किए गए 'समर्थनो' और 'पृथक अस्तित्वों' के आधार पर कार्य करते हैं। इन्हें संसदीय सरकार की प्रातिनिधिक प्रणाली का हिस्सा मात्र माना जाता है जो चुनाव लड़ते हैं, समाज के अंदर विद्यमान विभाजनों या खंडो को अपने साथ मिलाते हैं और इसे आधुनिक राजनीति की गतिविधियों को चलाने की पूजी का अश समझते है।'[35] इस दृष्टि से विपक्षी पार्टिया लगभग पूरी तरह उन सामाजिक वर्गो और व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सत्तारूढ पार्टी के साथ नही हैं। दूसरे शब्दों मे इस तरह से देखने पर विपक्षी पार्टियों और सरकारी पार्टियों के ढाचे में कोई वास्तविक सरचनात्मक अंतर नही है। दोनों ही पृथक संगठन हैं जिनका मुख्य उद्देश्य निश्चित समाजिक हितों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना है।

लेकिन वास्तविकता यह है कि जिन विघटनो से विपक्ष का जन्म होता है वे अक्सर विशिष्ट वर्ग के आपसी झगड़ों से पैदा होते हैं। विपक्षी पार्टियों को सरकारी पार्टियों की तरह संरक्षण प्रदान करने या अन्य सरकारी साधन जुटाने का मौका नही होता इसलिए वे संरचनात्मक रूप से बहुधा सरकारी पार्टियो की अपेक्षा कम सुसंगठित होती हैं। जैसा हम कह चुके हैं, विशिष्ट व्यक्तियों और दलों का कामचलाऊ गठबंधन, सरकार पर नियंत्रण और उस तक पहुंच से बनता है।

इसका मतलब यह नही है कि विपक्षी दलों का कोई सामाजिक (जातीय, वर्गीय आदि) आधार नही है। विपक्षी दल उभरते हैं सामाजिक दलों जैसे क्षेत्रीय, जातीय,

भापायी और वर्गीय दलो से, जो शासक विशिष्ट वर्ग की सत्ता को चुनौती देते हैं। घाना की एन० एल० एम० पार्टी और श्रीलंका की तमिल पार्टिया ऐसी ही विपक्षी पार्टी का बढ़िया उदाहरण हैं। कुछ विपक्षी पार्टिया भिन्न प्रकार की सैद्धांतिक परंपरा का आश्रय लेती हैं और इस प्रकार एक तरह से वे सदा ही विरोधात्मक रही हैं।[36] जहा कोई विपक्षी पार्टी किसी विशिष्ट वर्ग के गुटो के आपसी झगडो मे बनी है वहां भी असंतुष्ट नेताओ की अपीलों के परिणामस्वरूप यह पार्टी समाज के अलग वर्गो का समर्थन प्राप्त कर सकती है। एजिला बर्जर ने भारत के उत्तर प्रदेश राज्य की विपक्षी पार्टियो के अध्ययन मे कहा है कि अतत: ये पार्टिया सामाजिक गुटों का समर्थन प्राप्त करने की ओर तब प्रवृत्त हुई थी जब उनका गठबंधन सरकारी दल के साथ हो गया था।[37] सिएरा लियोने मे विपक्षी दल पी० एन० पी० का गठन अल्बर्ट मारगाई ने किया और इसका नेतृत्व विशिष्ट व्यक्तियो के ऐसे वर्ग ने किया जो शासक दल से भिन्न नही थे और यह विपक्षी दल अपने लिए काफी बडा जनसमर्थन जुटाने में सफल हुआ।

विशिष्ट व्यक्तियो के आपसी झगडे और सामाजिक मतभेद, व्यावहारिक दृष्टि से एक दूसरे से लाभ उठा सकते हैं। 1958 मे मोरक्को में जो ग्रामीण उपद्रव हुआ वह किसी सीमा तक रिफ कबीले के लोगों की इस भावना का परिणाम था कि उन्होंने स्वाधीनता संग्राम मे जो योगदान किया था उसका सरकार की ओर से समुचित इनाम नही मिला। किसी हद तक यह उपद्रव, इस्तिकलाल विशिष्ट वर्ग के साथ, राजतंत्र के झगड़ो का नतीजा भी था।[39] इस्तिकलाल के प्रतिसतुलन के लिए राजतंत्र ने उस क्षेत्र के प्रभावशाली राजनीतिक नेता अहरदेन को इस्तिकलाल के मुकाबले अपनी राजनीतिक पार्टी बनाने का प्रोत्साहन दिया। विद्रोह का एक कारण इस पार्टी की यह मांग थी कि इस्तिकलाल सरकार उसे विधिवत मान्यता दे।[39]

दूसरे शब्दों में, विपक्षी दल अक्सर केंद्र मे असंतुष्ट विशिष्ट व्यक्तियों, उनके निकटतम अनुयायियो और, उनके असतोष, या असंतुष्ट विशिष्ट व्यक्तियों की अपीलो के कारण परिधि क्षेत्र के भिन्न भिन्न विशिष्ट व्यक्तियों तथा दलो के बीच एक कड़ी का काम करते है। इसमे आश्चर्य नही कि ऐसी दलबंदिया प्राय. कमजोर तथा अल्पकालिक होती हैं। जो सामाजिक वर्ग अपेक्षाकृत कुछ विलंब से किसी दल के साथ जुडे है वे एक दूसरे से अलग थलग पड जाते हैं और इन सबके बीच एक ही समानता होती है कि उन्हें शासक दल तक पहुंचने का अवसर नही मिलता। सरकारी पार्टी में रह गए विशिष्ट व्यक्तियो और असहमत विशिष्ट व्यक्तियों के बीच नीति सबंधी या विचारधारा संबंधी जितने मतभेद होते है उससे कहीं अधिक मतभेद विपक्षी पार्टी के विभिन्न तत्वों के बीच हो सकते हैं। असंतुष्ट विशिष्ट व्यक्ति मूल भावनाओ को

उभारने वाली अपीलों के जरिये जनसमर्थन जुटाने का जो प्रयत्न करते हैं वह अंततः विघटनकारी सिद्ध हो सकता है। जबकि विपक्षी दल इन्ही पारंपरिक संपर्कों पर आधारित दलों का सम्मिश्रण होते हैं। अंतिम बात यह है कि अलग अलग खंडों को एकता के सूत्र में बांधने के साधनों के अभाव के कारण विपक्षी पार्टियों में सत्तारूढ़ विशिष्ट व्यक्तियों के प्रभाव के प्रवेश पा जाने की आशंका हो जाती है। अल्प-विकसित राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया के विभाजित स्वरूप से ही यह निश्चित होता है कि विपक्ष और सत्तारूढ़ दल का स्वरूप क्या होगा।

सांप्रदायिकता की राजनीति

अल्पविकसित राज्यों की राजनीति मे जातीयता की भूमिका पर विशेष बल दिया जाता है, यह देखते हुए यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि विभिन्न जातीय इकाइयों के स्वरूप और सीमाएं अक्सर अपेक्षाकृत सुनिश्चित समझी जाती हैं और इन्हें 'प्रदत्त' माना जाता है जिनके आधार पर इन राज्यों मे राजनीतिक क्रियाकलापों का विश्लेषण शुरू किया जा सकता है।[10] रिश्तेदारी, भाषा, जाति और धर्म के आधार पर विभाजित वर्गों के बीच अंतर को पाटना होगा। यह काम बहुत बडा है क्योंकि ये सामाजिक विभाजन, अटूट परंपराओं के परिणाम हैं। इस दृष्टि से, अल्पविकसित राज्यों की राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणालियां अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणालियों जैसी बन जाती हैं जिनमे काफी हद तक सुनिश्चित अभिनेता होते हैं। जैसाकि डोनाल्ड राथचाईल्ड ने कहा है:

> चूंकि नए राज्यों के अंदर सामाजिक और सांस्कृतिक विभाजनों का स्वरूप इतना आधारभूत होता है, इसलिए इन खंडों के आपसी संबंध वैसे ही होते हैं जैसेकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक व्यवस्था में देखने को मिलते हैं।[11]

इस सैद्धांतिक दृष्टिकोण से यह पता नहीं चलता कि समाज का एक खास वर्ग किसी अन्य वर्ग से अधिक राजनीतिक महत्व का क्यों है। इसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता और राष्ट्रीय एकता की बड़ी समस्या का विश्लेषण किसी एक राज्य में सभी संभव सामाजिक विभेदों की पड़ताल सूचियों के द्वारा ही किया जा सकता है।[12] इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मत में किसी एक सामाजिक संघर्ष, और संघर्षरत दलों को एक ऐतिहासिक अनिवार्यता मान लिया जाता है जो संभवतः उचित न हो।

अल्पविकसित राज्यों के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बदलते हुए सामाजिक प्रतिमानों ने उन विधियों को बहुत बदल दिया है जिनसे व्यक्ति स्वयं को और अपने दलों को पृथक अस्तित्व में रखते हैं। भारत में जहां परंपरा से ही ऐसा होता आया है

कि जाति का उद्गम स्थल गाव, या ग्राम समूह रहा है, जाति ने एक विस्तृत भौगोलिक अर्थ ग्रहण किया है।[43] संचार के सुधरे हुए साधनों, पश्चिमी शिक्षा और नए आर्थिक अवसरों ने स्थानीय जातियों (या उपजातियों जिन्हें आमतौर पर गोत्र कहा जाता है) को भौगोलिक दृष्टि से विस्तृत संपर्कों में आने की सामर्थ्य प्रदान की।[44] नगरों में जातीय अनन्यता या तो और दृढ़ हो जाती है, या बदल सकती है। किसी एक ही स्थान, प्रदेश या गाव मे आने वाले लोग नगर के एक ही हिस्से मे इकट्ठे रह सकते हैं और एक प्रकार की समान पहचान की भावना का विकास कर सकते हैं, जो पहले के किसी भी ग्रामीण जातीय समूह की भावना से कहीं अधिक होती है।[45] अन्य स्थानों मे, नए शहरी वातावरण के अनुसार पृथक जातीयता की भावना बदल सकती है। कोई व्यक्ति जब शहर मे रहने के लिए आता है तो उसे जो नई शहरी कबीलाई पहचान (अर्बन ट्राइबल आइडेंटिटी) मिलती है, उसके संदर्भ मे या तो वह अपनी जाति के बंधनों से निकल सकता है या और अधिक उसकी जकड़ मे आ जाता है।[46] आर्नल्ड एपस्टीन ने उत्तरी रोडेशिया के ताबा क्षेत्र के शहरों मे रहने वाले समूहों के अध्ययन में बताया है कि न्यासालैंड (मलावी) से आए विभिन्न जातीय समूह के लोगों को 'न्यासालैंडवासी' कहा जाता था और स्वयं उन्होंने भी अपना यही नाम स्वीकार किया।[47]

प्रशासनिक विधियों, जैसे जनगणना से भी व्यक्ति समूहों की पृथक जातीयता पर प्रभाव पड सकता है। अंग्रेजो ने हिंदुओं के प्राचीन वर्णभेद — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, का अपने प्रशासन में जो उपयोग किया उससे कई जातीय एसोसिएशनों के गठन को प्रोत्साहन मिला।[48]

जब किसी जाति के पढ़े-लिखे विशिष्ट व्यक्तियों ने अपनी जातियों और उपजातियों के लिए ऊंचा दर्जा प्राप्त करने के प्रयत्न शुरू किए तो उन्होंने जल्दी ही यह अनुभव किया कि जातीय दावों मे एकरूपता लाने के लिए क्षेत्रीय उपजातियों को संगठित करने की आवश्यकता है।[49]

जब यह मान लिया जाता है कि आधुनिकीकरण और प्रशासनिक निर्णयों से पृथक जातीयता में परिवर्तन लाया जा सकता है या इसका नया सृजन किया जा सकता है तो भी मूल समस्या बनी ही रहती है। वह समस्या यह है कि कोई एक जातीय समूह या बहुत सारे जातीय समूह किसी एक निश्चित समय पर राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कैसे बन जाते है। भारत में जातीयता की भावना से कई राजनीतिक अभिनेताओं का उदय हुआ है: जैसे जातीय संगठन जो भौगोलिक दृष्टि से अलग अलग जगह पड़े हुए समान उपजातियों के सदस्यों को संपर्क मे लाते है या जातीय

भारत में कांग्रेस के असंतुष्ट विशिष्ट व्यक्तियों ने अपने लिए राजनीतिक समर्थन के नए आधार बनाने के प्रयत्न में अक्सर जाति, वंश, क्षेत्र और भाषा का सहारा लेकर अपीलें की है और अपने इन प्रयत्नों मे उन्होंने बहुधा जाति, भाषा और सांस्कृतिक संस्थाओं को सगठनात्मक आधार बनाया है।[53] सिएरा लियोने मे पी० एन० पी० का एक संगठनकर्ता जो एस० एल० पी० पी० का भूतपूर्व नेता था कुछ व्यक्तिगत कारणो को लेकर इन दोनो पार्टियों के सम्मिलन से अलग हो गया और उसने एक और पार्टी बना ली। उसने नई पार्टी के लिए जिस प्रकार की अपीलें की उनके कारण नई पार्टी साम्प्रदायिकता की भावनाओं से भरी हुई थी।[54]

साप्रदायिक राजनीतिक गतिविधि का बहुभागीय क्रम मचय (मल्टिपल पर्म्युटेशस) करना सभव है लेकिन यह इस बात पर निर्भर करता है कि विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों का संघर्ष किस प्रकार का है, किसी एक समुदाय या संप्रदाय में कितना विकास हुआ है, या कोई संप्रदाय अन्य जातीय समूहों से किस सीमा तक अलग थलग है और वर्तमान नेता-अनुयायी संपर्क, विभिन्न जातीय दलों मे फैले होने के बजाय किसी एक जातीय समूह मे कहां तक समाए हुए हैं।

जिन समाजों में विशिष्ट व्यक्ति और उनके अनुयायी एक ही संप्रदाय में सीमित होते हैं वहां साप्रदायिक भावनाओं पर आधारित अपीलें तो वर्तमान व्यक्तिगत, बिरादरी, और संरक्षक-सरक्षित संबंधों को केवल और दृढ करने के लिए ही होती हैं। वर्तमान सामाजिक ढाचों के साथ साथ साप्रदायिक भावनाओं की अपीलों के सम्मिश्रण से किमी एक मंप्रदाय के अंदर एकता लाई जा सकती है, लेकिन साथ ही यह सम्मिश्रण विभिन्न मंप्रदायों के बीच अंतरआकर्षण पैदा करने, या राष्ट्रीय एकता लाने के काम मे अड़चन भी डाल मकता है। मलयेशिया, बर्मा और लाओस के बारे मे लिखते हुए स्काट ने कहा है :

> किसी राजनीतिक ढांचे के शिखर को छोड़कर जहा किसी एक नेता के साथ अनुयायियों के रूप में छोटे छोटे साम्प्रदायिक दलों के नेता हो सकते हैं, अधिकाश संरक्षकों या बड़े नेताओं के अनुयायी वे होते हैं जो केवल उनके अपने ही संप्रदायों मे हों। विभिन्न संप्रदायों के बीच एकता किसी राजनीतिक ढांचे के शिखर के पास जाकर ही आती है। प्रत्येक सांप्रदायिक समूह का आधार मुख्यत. अलग अलग रहता है।[55]

विशिष्ट व्यक्तियों के इस प्रकार के अंतर्साम्प्रदायिक संपर्क वैसे ही हैं जिनका विवरण आरेंड लिजफार्ट ने पश्चिमी यूरोप के 'सहयोगी लोकतंत्रों' (कंसेशनल डिमाक्रेसी)

संबंध टूट सकते हैं। इस प्रकार संरक्षक और संरक्षित के बीच जितने अधिक सांस्कृतिक मतभेद होंगे, और इन दोनों के बीच सामाजिक दूरी जितनी ज्यादा होगी, उतनी ही अधिक उग्रता के साथ जातीय संघर्ष, तीव्र सामाजिक समूहीकरण की परिस्थितियों मे होने की समावनाएं हैं।[60]

मेरे कहने का मतलब यह है कि बहुजातीय समाज में सांप्रदायिक संघर्ष अनिवार्य नही है। यदि इस बात को मान लिया जाए कि समाज मे विभिन्न दलों के बीच प्रतिस्पर्धा शुरू होने से जो सामाजिक समूहीकरण होता है उसके कारण यह प्रतिस्पर्धा साप्रदायिक रूप ले लेती है और इस आधार पर जो समूहीकरण होता है उससे समाज मे दलीय विभेद बढ़ जाते हैं और फूट बढती चली जाती है,[61] यह बात भी माननी होगी कि सांप्रदायिक फूट भी प्राय किसी वर्गीय या क्षेत्रीय फूट मे अलग, स्पष्ट रूप से परिभाषित नही की जा सकती।

परंपरागत अस्मिता (ट्रेडीशनल आइडेंटिटी), स्थानीय संबंधों के संदर्भ मे सुनिश्चित होती है। इस मायने मे साम्प्रदायिक अस्मिता को परंपरागत नही कहा जा सकता और इसमे समावेशन की दृष्टि से काफी परिवर्तनों की संभावना होती है।

इसके परिणामस्वरूप संप्रदायवाद एक निश्चित राजनीतिक रंग लिए हुए होता है जो एक निश्चित संदर्भ में खास मामलों और व्यक्तियों को लेकर बनता है।[62] जैसा एक अध्ययन मे कहा गया है: 'राजनीतिक समुदाय में प्रत्येक अभिनेता चाहे वह कितना ही महत्वहीन क्यों न हो, सामाजिक संघटन का केंद्रबिंदु बनने की बहुमुखी क्षमता रखता है। उसकी भूमिका क्या होगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि स्थिति कैसी है। या यह कहा जा सकता है कि भूमिका का निर्धारण इस बात पर निर्भर करेगा कि अभिनेता किसी स्थिति को किस तरह लेता है।'[63] लेकिन इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'अभिनेता द्वारा स्थिति का मूल्यांकन' संयोग की बात नही है। बहुधा यही होता है कि यह मूल्यांकन राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों की अपीलों के आधार पर किया जाता है। नाईजीरिया मे एक 'वर्ग' द्वारा 1964 मे लागोस, इबादान और अन्य महत्वपूर्ण नगरों मे आम हड़ताल में सफलता प्राप्त करने के बावजूद कई महीने बाद जो संसदीय चुनाव हुए, उनमें इन्ही मजदूर संगठन कार्यकर्ताओं ने मजदूर संगठन नेताओं को राजनीतिक उम्मीदवारों के रूप में अस्वीकार कर दिया, और साम्प्रदायिक दल के उम्मीदवारों को वोट दिया।[64] लेकिन अलग अलग राजनीतिक दायरे अपने आप नही बने, बल्कि प्रतिस्पर्धारत राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों ने इनका स्वरूप फिर से बनाया, और जातीय समूहों के संगठनों और व्यक्तिगत व्यवस्था के राजनीतिक महत्व को फिर सक्रिय किया।[65]

के सम्मिश्रण वाले देशों में सैनिक क्रांतियों की जो बाढ़ आई है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरह की क्रांतियां, कहीं भी और किसी भी कारण अथवा कारणों से हो सकती है, और इनका संबंध ऊपर बताई गई परिवर्तनशील बातों से होना अनिवार्य नहीं है।[73] दूसरी बात यह है कि क्रांतियों के संबंध में जो स्पष्टीकरण दिए गए हैं अथवा कारण बताए गए हैं उनसे अल्पविकसित राज्यों में सेना का स्वरूप विकृत प्रतीत होता है। सैनिक हस्तक्षेप के संबंध में साधारण तौर पर जो विश्लेषण किया गया है वह प्रभुता वाली राष्ट्रवादी पार्टियों के उदय से संबद्ध उस विश्लेषण जैसा ही है जो दूसरे अध्याय में किया गया। जिस प्रकार पहले यह कहा गया था कि इस तरह की पार्टियां अपने प्रतिद्वंद्वियों के मुकाबले संगठनात्मक श्रेष्ठता की द्योतक हैं उसी प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि संगठनात्मक दृष्टि से सेना अन्य सामाजिक, और राजनीतिक संगठनों से श्रेष्ठ है। यह कहा जाता है कि सेना एक 'वजनदार' (heavy) संस्था है और इसीलिए वह अधिक प्रभुता वाली है। लेकिन कुछ उल्लेखनीय अपवादों को छोड़ दें तो यह बात सही नहीं है। विशेषकर अफ्रीका में आम तौर पर सेना बहुत छोटी है और उसका प्रशिक्षण बड़े निम्न स्तर का है। सेना, 'एक आदर्श श्रेणीगत संगठन' और अपनी संगठनात्मकता के आधार पर प्रभुतासंपन्न होने की क्षमता रखने के बजाय, 'कुछ ऐसे सशस्त्र व्यक्तियों का समूह मात्र होती है जो अपने अधिकारियों के आदेशों का पालन कर सकते हैं या नहीं भी कर सकते।'[74]

और अंतिम बात यह है कि इन सभी स्पष्टीकरणों में हालांकि सेना द्वारा राजनीतिक गतिविधि के प्रति पश्चिम की नफरत पर काबू पाने की पूरी कोशिश की गई तथापि सेना को एक ऐसा अभिनेता समझा गया है जिसकी भूमिका आम तौर पर राजनीतिक प्रक्रिया से बाहर है। सैनिक हस्तक्षेप, सेना की कुछ आंतरिक बातों (जैसे व्यावसायिक वृत्ति का होना या उसका अभाव) अथवा बाह्य बातों (जैसे आर्थिक जड़ता और राजनीतिक गतिविधि का ह्रास) का परिणाम है या नहीं, लेकिन परिस्थितियां यह बात सिद्ध करती हैं कि जो वास्तव में होना चाहिए वह नहीं हुआ है। अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि विकृत परिस्थितियां ही सैनिक क्रांति का मानदंड हैं। फिर भी विचारधारा का झुकाव बना हुआ है और बहुत हद तक इसका प्रभाव स्थिति के विश्लेषण पर पड़ता है।

अनिवार्यतः, सैनिक क्रांतियों का स्पष्टीकरण किसी असामान्य घटना या घटनाक्रम के संदर्भ में किया जाता है।

इस प्रकार के स्पष्टीकरणों में नए राज्यों की संस्थात्मक स्थिरता और एकता पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है। राजनीतिक केंद्र, चाहे किसी पुश्तैनी

वे सफल हों या न हों, सेना की भूमिका काफी व्यापक हो जाती है। जैसा एक विद्वान का मत है :

> जब अधिकार के उपयोग का स्थान बलप्रयोग ले लेता है तो इसके साथ साथ तत्कालीन व्यवस्था के सापेक्ष 'बाजार भाव' में भी परिवर्तन आता है। नए अफ्रीकी राज्यों मे, राजनीतिक पार्टियों और नागरिक प्रशासन के मूल्य में एक प्रकार का ह्रास हुआ है जबकि पुलिस और सेना का मूल्य बहुत बढ़ गया है।[79]

राबर्ट सी नार्थ द्वारा सुझाए गए शब्दों का प्रयोग करें तो यही कहा जाएगा कि 'हिंसा के विशेषज्ञ', 'प्रतीकों के विशेषज्ञों' से अधिक महत्व प्राप्त कर लेते हैं।[80] यह बात अपर वोल्टा, सोमालिया, बर्मा और तुर्की जैसे स्थानों के लिए भी सही सिद्ध हुई है जहां सेना को एक हथियार के रूप मे खुल्लमखुल्ला इस्तेमाल करने का प्रयत्न नही किया गया है लेकिन जहां सशस्त्र संघर्ष, दंगे, हड़तालें और विद्रोह, (ये सभी विशिष्ट व्यक्तियों के आपसी संघर्षों के कारण हुए) सभी तरफ फैल गए है।[81] इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक प्रणाली की व्यक्तिगत गुटबंदी सेना को भी गुटों के गठन की प्रक्रिया में उलझा लेती है या गुट निर्माण के कारण तेज होने वाले संघर्षों मे भी सेना को उलझना पड़ता है।

अल्पविकसित राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया में सेना के शामिल होने को, किसी बाह्य संगठन द्वारा राजनीतिक प्रणाली में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता बल्कि गुटों के संघर्ष का विस्तार होने के कारण सेना के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा इस प्रक्रिया में उलझना कहा जा सकता है। किसी राजनीतिक प्रणाली मे उलझने (विशेषकर ऐसी प्रणाली में जिसमे सशस्त्र संघर्ष शुरू हो गया हो) से सेना के विशिष्ट व्यक्तियों के हावी हो जाने की संभावना पैदा हो जाती है, क्योंकि उनमें डराने-धमकाने और दबाव डालने की क्षमता होती है। 30 सितंबर 1965 को इंडोनेशिया मे कम्यूनिस्टों के नेतृत्व में सेना के विरुद्ध जो क्रांति हुई थी और जिसमें सेना के छ: बड़े अधिकारियों की हत्या कर दी गई थी उसे जनरल सुहार्तो, नसूतियों और अन्य वरिष्ठ सैनिक कमांडरों ने जवाबी हमला करके बड़ी तेजी से कुचल दिया था। अंतिम विश्लेषण मे यही कहा जा सकता है कि शासन वही करेगा जिसके पास सामरिक महत्व का दबाव डालने की क्षमता है।

लेकिन इस बात को ध्यान में रखना होगा कि दबाव डालने की क्षमता बहुत अधिक होना जरूरी नहीं है। राजनीतिक केंद्र में विशिष्ट व्यक्तियों के सम्मिश्रण बड़े नाजुक

बंधनों पर आधारित होते हैं और केंद्र तथा परिधि क्षेत्र के बीच संपर्क अस्थिर होते हैं जिसके कारण राजनीतिक केंद्र में दबाव डालने की क्षमता बहुत सीमित होती है। जोलबर्ग का कहना है कि अफ्रीका की दो लघुतम सेनाओं ने अपने हस्तक्षेप के समय बड़ी सरलता से सफलता प्राप्त कर ली थी। इनमें से एक मे टौगो के ढाई सौ सैनिक थे जिन्होंने 1963 में हस्तक्षेप किया और दूसरी थी मध्य अफ्रीकी गणराज्य की छः सौ व्यक्तियों की सेना जिसने 1966 मे सफलता प्राप्त की थी।[82] दक्षिण कोरिया में क्रांति करने वाले सैनिकों की संख्या तो बहुत कम थी (अनुमानतः साढ़े तीन हजार सैनिक) और सेना के बाकी लोग शुरू में या तो क्रांति के विरोधी थे या तटस्थ रहे। राजधानी सिओल पर शीघ्र नियंत्रण कर लेने के कारण क्रांति को जो सफलता मिली उससे शेष सैनिक भी क्रांति के नेताओ के साथ आ मिले। इसी प्रकार यदि किसी सरकार का नियंत्रण सेना की सामरिक महत्व की यूनिट पर है तो वह क्रांति को रोक सकती है चाहे उन परिस्थितियों मे गुटो के संघर्ष रहे हों या अव्यवस्था फैली हुई हो। सेनेगल मे सेघोर ने वायुसेना की एक बटालियन पर अपने नियत्रण के माध्यम से ममदू दिया के समर्थक सैनिकों का सफलतापूर्वक मुकाबला कर लिया।[83]

क्रांति की स्थिति अगणित कारणों से पैदा हो सकती है। इनमे कुछ कारण, सेना और राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के बीच मतभेद, सेना के अदर राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई भावना, सेना में व्यापारिक क्षेत्र के प्रति रुचि का उदय होना और सेना के अंदर जातीय दलों के बीच सघर्ष से उत्पन्न विभाजन, हो सकते हैं। सारांश यह है कि हाल के अनुभवो से यह पता चलता है कि अल्पविकसित राजनीतिक प्रणाली में संघर्ष को लगभग किसी भी स्थिति में क्रांति हो सकती है।

किसी देश की विशेष परिस्थितियो से ही यह तय होता है कि क्रांति किन मांगों को लेकर, किस समय होगी और इसके अभिनेता कौन होगे। अल्पविकसित राज्यो के बीच एक ही समानता है कि उनके अंदर गुटो के संघर्ष है जो अक्सर बड़ा रूप ले लेते हैं। इस बात का पूर्वानुमान लगाना कठिन है कि किस संघर्ष मे कौन से सैनिक विशिष्ट व्यक्ति उलझेंगे। इसमे संदेह नही कि अंततः संघर्ष मे सेना के विशिष्ट व्यक्तियों के उलझने की पूरी संभावना रहती है, और संघर्ष की उग्रता में वृद्धि होने से ये विशिष्ट व्यक्ति लगभग स्वाभाविक रूप से ही हावी हो जाते है।

अल्पविकसित राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया बड़ी विरोधाभासी है। इन राज्यों मे दृढ़ीकरण का आधार है पुश्तैनी और भौतिक लाभ, जिनसे विकेंद्रीकरण के साधन उपलब्ध होते हैं। पुश्तैनी सत्ता का सीमित स्थायित्व, और भौतिक लाभों के साधनों का अभाव बने रहना, ऐसी बातें है जो गुटवाद और विघटन की प्रवृत्ति को लगभग

अनिवार्य बना देती है। पिछले अध्याय के अंत में यह कहा गया था कि राजनीतिक प्रक्रिया संस्थात्मकता लाने की प्रक्रिया के प्रतिकूल है।

न केवल केंद्र और परिधि के विशिष्ट लोगों के व्यक्तिगत संपर्क बनते बिगड़ते रहते हैं बल्कि अपने अपने प्रभावक्षेत्र बनाने के राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के प्रयत्नों (व्यक्तिगत गुटों, पार्टी की शाखाओं पर प्रभुत्व स्थापित करके या मंत्रालयों पर अपना नियंत्रण जमाकर) से उन स्थापित विधियों और संस्थाओं के काम में भी अड़चनें पड़ती हैं जिनके माध्यम से दृढ़ीकरण किया जा सकता है। ऐसे वातावरण में गुटों, संप्रदायों, विपक्ष और सेना के संघर्ष, एक विकृति नहीं बल्कि नियमित घटना बन जाते हैं। अस्थिरता की राजनीति प्रशासनिक व्यवस्था के छिन्न भिन्न हो जाने या राजनीतिक ह्रास का परिणाम नहीं बल्कि यह विघटित राजनीतिक प्रक्रिया में ही अंतर्निहित है।

संदर्भ

1. एरिस्टिड जोलबर्ग 'दि स्ट्रक्चर आफ पालिटिकल कान्फ्लिक्ट इन दि न्यू स्टेट्स आफ ट्रापिकल अफ्रीका', अमरीकन पालिटिकल साइंस रिव्यू LXII; 1 (1968), 70.
2. वही, पृ० 71
3. एस० एन० ईसेंस्टाट: 'सोशल चेंज ऐंड माडर्नाइजेशन इन अफ्रीकन सोसायटीज साऊथ आफ दि सहारा', काहियर्स दि एट्यूड्स, अफ्रीकेंस V, 3 (1965), 453-471.
4. सैमुअल हंटिंगटन: पालिटिकल आर्डर इन चेंजिंग सोसायटीज, (न्यू हैवन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), पृ० 5
5. कार्ल डब्ल्यू० डायश: 'सोशल मोबिलाइजेशन ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट', अमरीकन पालिटिकल रिव्यू, LV, 3 (1961), पृ० 498
6. जोलबर्ग, पृ० 76
7. वही, पृ० 73-74
8. राबर्ट मेलसन और हार्व वोल्प 'माडर्नाइजेशन ऐंड दि पालिटिक्स आफ कम्यूनलिज्म: ए थ्योरीटिकल पर्सपेक्टिव', अमरीकन पालिटिकल रिव्यू, LXIV, 4 (1970) 1115.
9. हंटिंगटन, पृ० 55.
10. जेम्स ओ' कोनेल. 'दि इनएविटेबिलिटी आफ स्टेबिलिटी' दि जर्नल आफ अफ्रीकन स्टडीज, 5, 2 (1971), 188
11. अफ्रीकन समाज में संघर्ष के संबंध में लिखा गया है लायड फालर्स की इस पुस्तक में: 'पालिटिकल सोशयोलाजी ऐंड दि एंथ्रोपोलाजिकल स्टडी आफ अफ्रीकन पालिटिक्स,' आर्काइव्स यूरोपियनेज दि सोशयोलाजी, IV, 2 (1963) 311-329.
12. जान काट्स्की. दि पालिटिकल कांसीक्वेंसेज आफ माडर्नाइजेशन (न्यूयार्क: जान वाईली ऐंड सन्स, 1972) पृ० 139-142.

13 इन विपटनों के दो श्रेष्ठ अध्ययनों के लिए देखिए विक्टर टी० लेवाइन पालिटिकल लीडरशिप इन अफ्रीका ' पोस्ट इंडिपेंडेंस जेनरेशनल कानफ्लिक्ट इन अपर, वोल्टा, सेनेगल, नाईजर, दाहोमी, दि सेंट्रल अफ्रीकन रिपब्लिक (स्टैनफोर्ड . हूवर इंस्टीच्यूशन आन वार, रिवोल्यूशन ऐंड पीस, 1967), और विलियम बी० क्वाट, रिवोल्यूशन ऐंड पालिटिकल लीडरशिप अल्जीरिया, 1954-1968, (कैंब्रिज, मैसाच्यूसेट्स : एम० आई० टी० प्रेस, 1969).

14. पुश्तैनी नेताओं के लिए इसे प्राप्त करना कितना कठिन है, इसके उदाहरणों के लिए देखिए, हैनरी बिएनन : तंजानिया ' पार्टी ट्रांसफारमेशन ऐंड इकानामिक डेवलपमेंट (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970), पृ० 158-167, 185-195; और एच० एल० ब्रेटन . दि राईज ऐंड फाल आफ क्वामे एन्क्रूमा (न्यूयार्क, प्रेजर, 1967).

15. सी० एस० व्हिटेकर दि पालिटिक्स आफ ट्रेडीशन (प्रिंस्टन . प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970), पृ० 365.

16 वही.

17. बिएनन, पृ० 195

18 वही, पृ० 196-197; व्हिटेकर, पृ० 366

19. डेनिस एल० कोहन . 'दि कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी आफ घाना'. रिप्रेजेंटेशनल आर मानिडैरिटी पार्टी', कनेडियन जर्नल आफ अफ्रीकन स्टडीज, IV, 2 (1970), 178-179.

20. गवर्नमेंट आफ घाना रिपोर्ट आफ दि कमीशन आफ इन्क्वायरी इन टू दि अफेयर्स आफ दि कोको पर्चेजिंग कंपनी, लिमिटेड (अकरा . गवर्नमेंट प्रिंटर्स, 1956).

21. फ्रेड रिग्स : थाईलैंड . दि माडर्नाइजेशन आफ ए ब्यूरोक्रेटिक पोलिटी (होनोलूलू ईस्ट वेस्ट सेंटर प्रेस, 1966), पृ० 242-310.

22. टी० एच० सिलकाक : 'मनी ऐंड बैंकिंग', टी० एच० सिलकाक (संपादित) : थाईलैंड : सोशल ऐंड इकानामिक स्टडीज इन डेवलपमेंट (दरहम, एन० सी० ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967), पृ० 183-185

23. जोनबर्ग, पृ० 72.

24. बारबरा कैलवे और एमिली कार्ड ' 'पालिटिकल कस्ट्रेंट्स आन इकानामिक डेवलपमेंट इन घाना', माइकिल लाफयाई (संपादित) : दि स्टेट आफ दि नेशंस : कस्ट्रेंट्स आन डेवलपमेंट इन इंडिपेंडेंट अफ्रीका, (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स . यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1971), पृ० 73.

25. डेविड एप्टर : 'एन्क्रूमा, कैरिस्मा, ऐंड दि कू', डेडालस, XCVII, 3 (1968), 784.

26. जान आर० कार्टराईट : *पालिटिक्स इन सिएरा लियोने 1947-1967;* (टोरांटो : यूनिवर्सिटी आफ टोरांटो प्रेस, 1970), पृ० 109, किंतु यहां भी गुटवाद के कुछ और पहलू थे. उदाहरण के तौर पर, यहां का असंतुष्ट दल कुछ कम आयु के लोगों का था और ज्यादा पढ़ा-लिखा था.

27. थामस जे० बेल्लोज : दि पीपुल्स ऐक्शन पार्टी आफ सिंगापुर : इमर्जेंस आफ ए डामीनेंट पार्टी सिस्टम, मोनोग्राफ सिरीज न० 14, (न्यू हैवन : येल यूनिवर्सिटी साउथईस्ट एशिया स्टडीज, 1970), पृ० 35-44.

28 यह अंतिम बात, 1967 के बाद भारत में कांग्रेस पार्टी छोड़कर दल बदलने के मामलों में बड़ी महत्वपूर्ण रही

29 जेम्स सी० स्काट का कहना है कि ऐसे भ्रष्टाचार के लाभ भी हैं, क्योंकि समर्थकों को आकृष्ट करने की प्रतिस्पर्धा मे आम लोगों को भ्रष्टाचार का फायदा मिलता है देखिए, जेम्स स्काट द्वारा लिखित, 'ऐन एस्से आन दि पालिटिकल फंक्शस आफ करप्शन', एशियन स्टडीज, V, 3 (1967), 501-523.

30. देखिए, काल्विन वुडवर्ड . दि ग्रोथआफ ए पार्टी सिस्टम इन सिलोन (प्रोवीडेंस · ब्राऊन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969), पृ० 76-79, और राबर्ट एन० केयर्नी . कम्यूनलिज्म ऐंड लैंग्वेज इन दि पालिटिक्स आफ सिलोन, (दरहम एन० सी० · ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967), पृ० 63-67.

31. कीनिया और 1966 के चुनावों के लिए देखिए, चैरी गर्तजेल · दि पालिटिक्स आफ इंडिपेंडेंट कीनिया, 1963-1968 (इवास्टन, इल्लीनाय . नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970).

32. भारत में गुटों के संघर्ष पर लिखी गई सामग्री में, भारतीय राजनीति का लगभग संपूर्ण अध्ययन सम्मिलित है विशेषकर देखिए, पाल ब्रास . फैक्शनल पालिटिक्स इन ऐन इंडियन स्टेट (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स · यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1969), रिचर्ड सिसन · दि कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स : यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1972); मायरन वीनर · स्टेट पालिटिक्स इन इंडिया (प्रिंस्टन . प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968) : और इक्बाल नारायण . स्टेट पालिटिक्स इन इंडिया, (मेरठ, भारत · मीनाक्षी प्रकाशन, 1957).

33. मार्टिन-स्टानीलैंड · 'सिंगल-पार्टी रेजीम्स ऐंड पालिटिकल चेंज दि पी० डी० सी० आई० ऐंड आइवरी कोस्ट पालिटिक्स', कोलिन लीज संपादित पालिटिक्स ऐंड चेंज इन डेवलपिंग कंट्रीज (कैंब्रिज, इंग्लैंड . कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969) में पृ० 173 पर.

34. रजनी कोठारी . पालिटिक्स इन इंडिया, (बोस्टन · लिटिल, ब्राउन ऐंड कंपनी, 1970), पृ० 161

35. वही, पृ० 159

36. उदाहरण के लिए देखिए, गेराल्ड ए० हीगर : 'डिसिप्लिन वर्सिस मोबिलाइजेशन · पार्टी बिल्डिंग ऐंड दि पंजाब जनसंघ', एशियन सर्वे, XII, 10 (1972), 864-878

37. एंजिला वर्जर · अपोजीशन इन ए डामीनेंट-पार्टी सिस्टम, (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स : यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1969).

38. मोरक्को में ग्रामीण विद्रोहों और विशिष्ट व्यक्तियों के पारस्परिक संघर्षों के साथ इनके संबंध के बारे में देखिए, अर्नेस्ट गेलनर : 'पैटर्न्स आफ रूरल रिबेलियन इन मोरक्को · ऐन माइनारिटीज' आर्काइव्स यूरोपियन्स दे सोशियोलाजी *III, 2 (1962), 297-311*; अर्नेस्ट गेलनर : 'ट्राइबलिज्म ऐंड सोशल चेंज इन नार्थ अफ्रीका', डब्ल्यू० एच० लेविस (संपादित) : फ्रेंच स्पीकिंग-अफ्रीका : 'दि सर्च फार आईडेंटिटी (न्यूयार्क : वाकर, 1965), पृ० 107-108; और डब्ल्यू० एच० लेविस : 'फ्यूडिंग ऐंड सोशल चेंज इन मोरक्को', जर्नल आफ कान्फ्लिक्ट रेजोल्यूशन, (1961), 43-54.

39. गेलनर, पृ० 116.

40. उदाहरण के लिए देखिए, गीर्त्स, पृ० 105-157. गीर्त्स ने राष्ट्रीय एकता की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'स्वाधीन अस्तित्व वाले, निश्चित पारंपरिक तथा प्राचीन जनसमूहों का आपस में मिलकर बड़े और व्यापक दृष्टिकोण वाले समूहों में परिवर्तित होना, जो केवल स्थानीय हितों को ही नहीं, बल्कि 'राष्ट्र' के हितों को देखते हैं' ' ' (पृ० 163), गीर्त्स का कहना है, प्राचीनता की भावना का मतलब है ऐसी भावना जो 'प्रदत्त' से उपजती है या यह कहा जाए कि क्योंकि ऐसे मामलों में अनिवार्यतः संस्कृति का संबंध रहता है इसलिए यह सामाजिक अस्तित्व के 'प्रदत्त' माने जाते हैं, (पृ० 109).

41. डोनाल्ड रायचाईल्ड : 'एथनिसिटी ऐंड कान्फ्लिक्ट रेवोल्यूशन', वर्ल्ड पालिटिक्स, XXII, 4, (1970), 597

42. गीर्त्स, पृ० 112-113 : एमर्सन फ्राम एम्पायर टू नेशन, अध्याय 6, 7, 8. विकसित राष्ट्रों के संबंध में ऐसी ही जांच सूचियों के लिए देखिए, सेमोर मार्टिन लिपसेट और स्टीन रोकन (संपादित) . पार्टी सिस्टम्स ऐंड वोटर एलाइनमेंट्स (न्यूयार्क . फ्री प्रेस, 1967): और रिचर्ड रोज तथा डेरेक अर्विन, 'सोशल कोहिजन, पालिटिकल पार्टीज ऐंड स्ट्रेंस इन रेजीम्स', कंपेरेटिव पालिटिक्स V, 1 (1969), 7-67.

43. लायड आई० रुडोल्फ और सूसन होबर रुडोल्फ दि मार्डनिटी आफ ट्रेडीशन (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967), पृ० 30

44. वही, पृ० 31.

45. इस संबंध में देखिए, मे एडेल *'अफ्रीकन ट्राइबलिज्म . सम रिफ्लेक्शंस आन युगांडा'*, पालिटिकल सायंस क्वार्टर्ली, LXXX, 3 (1965), 357-72

46. इमैन्युअल वालस्टीन : 'एथनिसिटी ऐंड नेशनल इंटीग्रेशन इन वेस्ट अफ्रीका', कोहियर्स दि एट्यूड्स अफ्रीकंस, I, 3 (1960), 131

47. आर्नल्ड एल० एप्स्टीन पालिटिक्स इन ऐन अर्बन अफ्रीकन कम्यूनिटी, (मैनचेस्टर, इंग्लैंड . मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1958), पृ० 236

48. एम० एन० श्रीनिवास : कास्ट इन माडर्न इंडिया ऐंड अदर एस्सेज (बंबई एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1962), पृ० 18. रुडोल्फ ऐंड रुडोल्फ ने भी पृ० 116-117 पर, भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने के काम में 1901 में हुई जनगणना की भूमिका बताई है

49. कुछ ऐसी ही बात युगांडा और कांगो में भी हुई प्रशासनिक तौर पर यह निश्चित किया गया कि कौन से लोग किस कबीले के हैं। इन्हीं विभाजनों के आधार पर जातीय समूहों का निर्धारण हुआ। देखिए, क्रॉफोर्ड यंग पालिटिक्स इन दि कांगो (प्रिंस्टन न्यू जर्सी : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965) पृ० 245-246; और नेल्सन कास्फिर, 'कल्चरल सबनेशनलिज्म इन युगांडा', वी० ए० ओलोरुनसोला (संपादित) . दि पालिटिक्स आफ कल्चरल सबनेशनलिज्म, (गार्डन सिटी, *न्यूयार्क : डबल डे ऐंड कंपनी, 1972*), पृ० 61

50. जाति और भारत की राजनीति में जाति के बारे में बहुत सामग्री है. भारत में जाति के आधार पर समर्थन जुटाने के राजनीतिक परिणामों के संबंध में सैद्धांतिक विचारों के लिए देखिए, रुडोल्फ ऐंड रुडोल्फ पृ० 15-154

51. सामाजिक समर्थन जुटाने और सम्प्रदायवाद के बीच संबंध के बारे में विस्तृत तर्क के लिए देखिए, मैल्सन और वोल्पे.

52. रिचर्ड सक्लार : 'पालिटिकल सायंस ऐंड नेशनल इंटीग्रेशन—ए रैडीकल अप्रोच' दि जर्नल आफ माडर्न अफ्रीकन स्टडीज, V, 1, (1967), 7

53. ऐसे ही एक मामले के लिए देखिए, गेरल्ड ए० हीगर : 'पालिटिक्स आफ इंटीग्रेशन : कम्यूनिटी पार्टी ऐंड इंटीग्रेशन इन पंजाब', (पी-एच० डी० के लिए थीसिस, यूनिवर्सिटी आफ शिकागो, 1971) और देखिए ज्योतीन्द्र दास गुप्त, लैंग्वेज, कान्फ्लिक्ट ऐंड नेशनल डेवलपमेंट, (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स : यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1970), विशेषकर अध्याय 7 और 8

54. मार्टिन विल्सन पालिटिक्स चेंज इन ए वेस्ट अफ्रीकन स्टेट (कैंब्रिज, मैसाच्युसेट्स : हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966) पृ० 271-272

55. जेम्स सी० स्काट 'पैट्रन-क्लायंट पालिटिक्स ऐंड पालिटिकल चेंज इन साउथ ईस्ट एशिया', अमरीकन पालिटिकल सायंस रिव्यू, LXVI, 1, (1973), 105.

56. आरेंड लिजफार्ट : 'कान्सोसिएशनल डिमोक्रेसी', वर्ल्ड पालिटिक्स, XXI, 2, (1969), 207-226 और देखिए, आरेंड लिजफार्ट : दि पालिटिक्स आफ एकमोडेशन : प्ल्यूरलिज्म ऐंड डिमाक्रेसी इन दि नीदरलैंड्स (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स : यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1968).

57. *सिंथिया एच० एनलो एथनिक कान्फ्लिक्ट ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट, (बोस्टन : लिटिल ब्राउन ऐंड कंपनी, 1973) पृ० 169-170 में भी ऐसा ही तर्क है.*

58. यह घटना उपरोक्त पुस्तक के पृ० 175-178 पर संक्षेप में दी गई है; और देखिए, सिंथिया एच० एनलो ' मल्टी-एथनिक पालिटिक्स ' दि केस आफ मलयेशिया (बर्कले : सेंटर फार साउथ ऐंड साऊथईस्ट एशिया स्टडीज, 1970), और के० जे० रत्नम और आर० एस० मिल्ने : 'दि 1969 पार्लियामेंटरी इलेक्शन इन वेस्ट मलयेशिया', पैसिफिक अफेयर्स, XLIII, 2, 1070), 203-226

59. हीगर 'दि पालिटिक्स आफ इंटीग्रेशन', विशेषकर पृ० 264-331.

60. रेने लैमरचंद, 'पालिटिकल क्लायंटेलिज्म ऐंड एथनीसिटी इन ट्रापीकल अफ्रीका : कांपीटिंग सालिडेरिटीज इन नेशन-बिल्डिंग', अमरीकन पालिटिकल सायंस रिव्यू, LXVI, 1, (1972), पृ० 84

61. मेल्सन ऐंड वोल्पे, पृ० 1114.

62. यह कथन उसी को दोहराता है जो मेल्सन और वोल्पे का है (पृ० 1126) और इसमें मैक्स ग्लुकमैन के लेख से कुछ लिया गया है', 'ट्राइबलिज्म इन माडर्न ब्रिटिश सेंट्रल अफ्रीका', केहियर्स दि एट्यूड्स अफ्रीकन्स, 1 (1960), 55-70, ए० एल० एप्स्टीन पालिटिक्स इन ऐन अर्बन अफ्रीकन कम्यूनिटी (मैनचेस्टर, इंग्लैंड मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1958); तथा क्लाइड मिचेल दि कालेला डान्स (मैनचेस्टर, इंग्लैंड मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956) सभी का यह कहना है कि स्थिति से पृथक अस्तित्व का निर्धारण होता है अर्थात सामाजिक [illegible] में, [illegible] के लिए [illegible] आदि के काम में, [illegible] होता [illegible]। [illegible], अधिक [illegible] में, [illegible] के लिए [illegible] के [illegible] में, [illegible] की [illegible] अधिक हो सकती है.

63. [illegible] (1967), पृ० 60

64. राबर्ट मेलसन : 'आईडियालाजी ऐंड इनकसिटेंसी : दि याग प्रेशर्ड नाईजीरियन वर्कर', अमरीकन पालिटिकल सायम रिव्यू, LXV, 1, (1971) 161-171

65. पूर्वी नाईजीरिया में इस व्यवस्था के सबध में देखिए, आड्री सी० स्मोक . इबो पालिटिक्स : दि रोल आफ एथनिक यूनियंस इन ईस्टर्न नाईजीरिया (कैंब्रिज, मैसाच्यूसेट्स हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971).

66. मैनकर ओलसन : 'रैपिड ग्रोथ ऐज ए डिस्टैब्लिशिंग फोर्स', जर्नल आफ इकानामिक हिस्ट्री, XXIII, (1963), 529-532, राबर्ट डी० पुटनम . 'टुवर्ड एक्सप्लेनिंग मिलिट्री इटर्वेशन इन लैटिन अमरीका', अमरीकन पालिटिकल सायस रिव्यू LX, (1966), 616-626.

67. अधिकतर यही माना जाता है कि यह मत सैमुअल हंटिंगटन का है, पृ० 142-263, और इसके कई रूप है. स्वयं सेना को, अन्य संस्थाओं की तुलना में उसके 'वजन' और उसकी आधुनिकता की दृष्टि से महत्व दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए देखिए, गाए पाकेर : 'साऊथ ईस्ट एशिया ऐज ए प्राब्लम एरिया इन दि नेक्स्ट डिकेड', वर्ल्ड पालिटिक्स, XI, 3, (1959)' 325-345; लूसियन डब्ल्यू० पाई आर्मीज इन दि प्रोसेस आफ पालिटिकल माडर्नाइजेशन'; जान जे० जानसन (सपादित). दि रोल आफ दि मिलिट्री इन अडर डेवलप्ड कट्रीज (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962), मारिस जैनाविट्ज · दि मिलिट्री इन दि पालिटिकल डेवलपमेंट आफ न्यू नेशस (शिकागो यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1964), मैरियन जे० लेवी जूनियर : माडर्नाइजेशन ऐंड दि स्ट्रक्चर आफ सोसायटीज द्वितीय खड, (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966), पृ० 571-605, और हेनरी विएनन 'दि बैकग्राउड टु दि कांटेंपररी स्टडी आफ मिलिट्रीज ऐंड माडर्नाइजेशन, (शिकागो : एलडाईन – एथर्टन, 1971), पृ० 1-34; असैनिक संस्थाओं के सुचारु रूप से कार्य न करने के परिणामस्वरूप सेना की भूमिका के विस्तार के सदर्भ में देखिए, मोशे लिसाक 'माडर्नाइजेशन ऐंड दि रोल एक्सपैंशन आफ दि मिलिट्री इन डेवलपिंग कट्रीज', कपेरेटिव स्टडीज इन सोसायटी ऐंड हिस्ट्री, IX, 3(1967), 233-255 जिस वातावरण में यह 'वजनदार' सस्था होती है, उसको विशेष महत्व दिया जा सकता है, उदाहरणार्थ सैनिक शासनाधीन समाज, जहा समाज की सभी शक्तियां राजनीति-प्रवृत्त होती है।' देखिए हंटिंगटन और एमास पर्लमटर : 'प्रेटोरियन स्टेट ऐंड दि प्रेटोरियन आर्मी : टुवर्ड्स ए थ्योरी आफ सिविल-मिलिट्री रिलेशंस इन डेवलपिंग कट्रीज,' कंपेरेटिव पालिटिक्स, I, 3 (1969), 382-404

68. विशेषकर देखिए, सैमुअल फिनर : दि मैन आन हार्सबैक (न्यूयार्क फ्रैडरिक ए० प्रेजर, 1962); और मर्ले क्लिंग : 'वायलेंस ऐंड पालिटिक्स इन लैटिन अमरीका', पी० हालमोस (सपादित) : लैटिन अमरीकन सोशयोलाजीकल स्टडीज (सोशयोलाजीकल रिव्यू मोनाग्राफ II, 1967), पृ०119-131.

69 फ्रैड वोन देर मेहदेन और जी० डब्ल्यू० ऐंडर्सन . 'पालिटिकल ऐक्शन बाइ दि मिलिट्री इन डेवलपिंग एरियाज', सोशल रिसर्च, XXVIII, 4 (1961), 459-480, कार्ल हार्पकिंस 'सिविल-मिलिट्री रिलेशस इन डेवलपिंग कट्रीज', ब्रिटिश जर्नल आफ सोशयोलाजी, XVII,: 2 (1966), 165-182; एम० डी० फेल्ड . 'प्रोफैशनलिज्म, नेशनलिज्म ऐंड दि एलियनेशन आफ दि मिलिट्री', जेकब वान डूर्न (सपादित) आर्म्ड फोर्सेज ऐंड सोसायटी (दि हेग माऊटोन ऐंड कपनी, 1966), पृ० 55-70 इन्हीं से सबद्ध है, राबर्ट एम० प्राईस . 'ए थ्यूरीटिकल अपरोच टु मिलिट्री रूल इन दि न्यू स्टेट्स : रेफरेंस ग्रुप थ्योरी ऐंड दि घानयन केस', वर्ल्ड पालिटिक्स, XXIII, 3 (1971), 399-430 लेकिन प्राइस का कहना है कि घाना

की सेना में व्यावसायिकता की भावना के कारण सेना के विशिष्ट व्यक्ति स्वय को ब्रिटिश सेना के समरूप मानने लगे और जब एन्क्रूमा ने ब्रिटिश पद्धति को चुनौती दी और कम्यूनिस्ट राष्ट्रों के साथ सपर्क स्थापित करने के प्रयत्न किए तो सेना ने हस्तक्षेप किया इस मामले में हस्तक्षेप, राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित होकर नही बल्कि अधिराष्ट्रीय स्वार्थपरता के कारण किया गया था

70 सैमुअल हटिंगटन दि सोलजर ऐंड दि स्टेट, (न्यूयार्क · रैंडमहाऊस, 1957). जिन परिस्थितियो में सेना का एक सस्था या व्यावसायिक स्वरूप बनता अथवा टूटता है, उनके बारे में हाल के वर्षों में काफी सिद्धात प्रतिपादित किए गए है विशेषकर देखिए, ए० स्टीपान, दि मिलिट्री इन पालिटिक्स चेंजिंग पैटर्न्स आफ सिविलियन मिलिट्री रिलेशनशिप्स इन ब्राजील (प्रिस्टन : प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971), रेने लैमरचद . 'सिविलियन-मिलिट्री रिलेशंस इन बेल्जियन अफ्रीका दि मिलिट्री ऐज ए कोटेक्स्च्युअल एलीट', वाशिंगटन डी० सी० मे, 1972 में अमरीकन पालिटिकल सायस एसोसिएशन की वार्षिक बैठक में पढ़ा गया निबध , और राबिन लकहैम . दि नाईजीरियन मिलिट्री · ए सोशयोलाजीकल एनालिसिस आफ अथारिटी ऐंड रिवोल्ट, 1960-1967 (कैंब्रिज, इग्लैंड कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971).

71 क्लाड वैल्च 'दि रूट्स ऐंड इम्प्लीकेशस आफ मिलिट्री इटरवेंशन', क्लाड वैल्च जूनियर (सपादित) सोलजर ऐंड स्टेट इन अफ्रीका (इवास्टन इलीनाय नार्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी प्रेस 1970), पृ० 26-27 पर

72 राबर्ट डाऊज · 'दि मिलिट्री ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट', लो द्वारा सपादित पृ० 213-214, यहा उद्धृत वाक्य लिमाक से है, (देखिए, सदर्भ 67).

73 जोलबर्ग · 'दि स्ट्रक्चर आफ पालिटिकल कान्फ्लिक्ट', पृ० 78

74 वही, पृ० 72

75 जान क्राम 'पालिटिकल चेज कान्फ्लिक्ट ऐंड डेवलपमेंट इन घाना', फिलिप फॉस्टर और एरिस्टिड आर० जोलबर्ग (सपादित) घाना ऐंड दि आइवरी कोस्ट (शिकागो यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1971) पृ० 59-60

76 इस प्रयत्न के बारे में देखिए, मुहम्मद अय्यूब खान फ्रैंड्स, नाट मास्टर्स ए पालिटिकल आटोबायोग्राफी (लदन आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967)

77 वही

78 डब्ल्यू० ए० ई० स्कुनिक 'दि मिलिट्री ऐंड पालिटिक्स दाहोमी ऐंड अपर वोल्टा', वैल्च में पृ० 68-79

79 एरिस्टिड जोलबर्ग 'मिलिट्री इटरवेंशन इन दि न्यू स्टेट्स आफ ट्रापीकल अफ्रीका', हेनरी बिएनन (सपादित) दि मिलिट्री इटरवीन (न्यूयार्क रसल सेज फाउडेशन, 1968), पृ० 80

80 राबर्ट सी० नार्थ . 'चाईनीज कम्यूनिस्ट ऐंड कुओमिनारी एलीट्स', हैरल्ड लासवेल और डैनियल लर्नर (सपादित) . वर्ल्ड रिवोल्यूशनरी एलीट्स (कैंब्रिज, मैसाच्यूसेट्स : एम० आई० टी० प्रेस, 1965), पृ० 319-455, 455

81. सोमालिया के बारे में देखिए, आई० एम० लेविस 'दि पालिटिक्स आफ दि 1969 सोमाली कू', 'दि जर्नल आफ माडर्न अफ्रीकन स्टडीज, X, 3 (1972), 383-408

82. जोलबर्ग · 'दि स्ट्रक्चर आफ पालिटिकल कान्फ्लिक्ट', पृ० 79

83. वही.

5

सेना सत्ता में

सत्ता हथियाने के बाद सेना के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा बनाई गई सरकारें विद्वान लोगों के लिए एक पहेली सिद्ध हुई हैं। ऐसे शासनों की स्थापना के समय प्रभावोत्पादक ढंग से राष्ट्र पुनर्निर्माण, राष्ट्रीय एकता, और जिन राजनीतिज्ञों से सैनिक नेताओं ने सत्ता हथियाई होती है उनके विरुद्ध अभियोग लगाने की मांग की जाती है। जैसा जोसफ मोबुतू ने घोषणा की थी -

> सैनिक उच्च कमान क्या कर सकती थी? केवल वही, जो उसने किया: राजनीतिज्ञों को सत्ता से निकाल बाहर करना ... उन्हें (राजनीतिज्ञों को) सत्ता, और सत्ता में आने से वे अपने लिए क्या कुछ कर सकते हैं इसके सिवाय और किसी बात से मतलब नहीं था ...।' अपनी अपनी जेबें भरना, कांगो, और उसके निवासियों का शोषण करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य प्रतीत होता था।[1]

यह शब्दाडंबर नए शासकों की क्षमता का संकेत कहां तक है? क्लाड वैल्च ने सवाल उठाया था: 'क्या सेना पर आधारित सरकार उन कठिनाइयों को अधिक सफलतापूर्वक निपटा सकती है जो असैनिक सरकार के सामने थी? क्या इनमें से कुछ समस्याएं ऐसी हैं जो सत्ताधारी सैनिक परिषद के अनुकूल तरीकों से ही सुलझाई जा सकती थी, और क्या ये तरीके असैनिक सरकारों के वश की बात नहीं है?'[2]

सैनिक सरकारों के संबंध में व्यापक आंकड़ों के अभाव में विद्वान लोग ऐसे शासकों के

बारे में अपने सैद्धांतिक विचारों की हवा में इधर उधर डोलते रहे हैं। 1950 के दशक के अंतिम वर्षों में, और 1960 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में कुछ 'दृढ़ मत वाले' उदारतावादियों के ये तर्क-वितर्क चलते रहे कि सेना एक 'औद्योगिक ढंग' के सामाजिक संगठन के रूप में, विशेष रूप से अल्पविकसित समाजों को आधुनिक बनाने के लिए पूरी तरह उपयुक्त है।[3] लेकिन हाल में एक अलग दृष्टिकोण सामने आया है। इसमें आधुनिकीकरण के लक्ष्य प्राप्त करने में सेना की क्षमता में संदेह प्रकट किया गया है। इस मत के अनुसार, सेना का अपने ही ढंग का संगठन आधुनिकीकरण का साधन नहीं, बल्कि उसके मार्ग में अड़चन है।

> सेना के हरावल दस्ते, कंधे से कंधा मिलाकर, मार्च करते हुए सैनिक, मोर्चे बांधना, आक्रमण करना, महान लक्ष्य : यह परिकल्पना, पैदल सेना के आक्रमण की भांति जानी पहचानी है। आदेश और अनुशासन, निर्देश और गति हर बात के लिए महत्व रखते हैं···निश्चित यदि राष्ट्र की मुश्किलें और बीमारियां इतनी सरलता से दूर की जा सकती तो सैनिक क्रांति का कभी मौका ही न आता। राजनीतिक क्षेत्र कोई संकीर्ण सीमित घाटी नहीं है। असैनिक सरकारी कर्मचारी पंक्तिबद्ध होकर मार्च करते हुए कानूनी व्यवस्था नहीं चला सकते। आर्थिक योजनाएं तैयार करने वाले विशेषज्ञ, मोर्चों पर आक्रमण करके उत्पादन नहीं बढ़ा सकते···और सबसे बड़ी बात यह है कि राजनीति के लक्ष्यों पर सदा ही संदेह किया जाता है। सैनिक अधिकारियों की जो प्रशासक परिषद पवित्र लेकिन अनिर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंचने की अपेक्षा करती है, और समझती है कि वह कुछ ही घंटों या सप्ताहों में इसे प्राप्त कर लेगी, ऐसी परिषद को मोहभंग के लिए तैयार रहना चाहिए···[4]

जैसा ऐन रुथ विल्नर ने कहा है, हाल का इतिहास न केवल इन व्यापक सर्वसामान्य सिद्धांतों की अनिश्चितता को बल्कि वर्धमान असमान घटनाओं, जिन्हें एक साथ आम तौर पर 'सैनिक शासन' कह दिया जाता है, की अनिश्चितता भी दर्शाता है।[5] फिर भी क्लाड वैल्च द्वारा उठाए गए प्रश्न बने ही रहते हैं, बल्कि वास्तव में ये उस हालत में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं जब सैनिक शासन अपने आप को अफ्रीका और एशिया में एक अपवाद के रूप में नहीं, बल्कि एक आदर्श प्रतिमान के रूप में स्थापित कर लेते हैं। अल्पविकसित राज्यों में सैनिक शासन हाल ही में स्थापित हुए हैं इसके बावजूद, और ऐसे शासनों के बारे में जानकारी का अभाव होते हुए भी, इन प्रश्नों के कुछ कामचलाऊ उत्तर खोजने की कोशिश तो होनी ही चाहिए।

सैनिक शासनों का विश्लेषण इस बात से प्रारंभ किया जा सकता है कि आम तौर

पर यह माना गया है कि सारी सशस्त्र सेना, शासन नहीं करती। सैनिक शासन एक ऐसी सरकार है जिसमे सेना के कुछ खास विशिष्ट व्यक्ति ही शासन चलाते हैं। इन व्यक्तियों को शेष सशस्त्र सेना का समर्थन प्राप्त हो भी सकता है और नही भी। वास्तव में सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति बराबर इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं कि वे शेष सेना का समर्थन प्राप्त करें और उसे बनाए रखें। तो इसी संदर्भ मे यह तर्क कि सेना जिस निश्चित ढंग के सामाजिक संगठन का प्रतिनिधित्व कर रही है वह राजनीतिक विकास का प्रभावशाली माध्यम है या नही, एक ऐसी बात के बारे में तर्क है जिसका बहुधा, अस्तित्व ही नही होता। अल्पविकसित राज्यो मे सशस्त्र सेनाए, कभी कभी बिल्कुल अनुशासनविहीन और अक्सर जातिगत भावनाओं को लेकर विघटित, अधिकारियों और सैनिकों के बीच वैमनस्य और स्वयं अधिकारी वर्ग के बीच आपसी झगड़ों के कारण—कुछ अपवादों को छोड़ आम तौर पर सुसंगठित नही रही है। इसके अलावा सेना के अंदर की फूट सत्ता हथिया लिए जाने के बाद और बढ़ जाती है और यह दरार उस हालत मे बढ़ती चली जाती है जब कुछ सैनिक अधिकारी सरकारी पदों पर आ जाते हैं, और कुछ को इन पदो से वंचित रहना पड़ता है।

अपने पूर्ववर्ती असैनिक शासकों की तरह सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों को भी ऐसी खंडित राजनीतिक प्रणालियों का सामना करना पड़ता है जिनपर वे एक अत्यधिक अनुशासनबद्ध नेता के रूप मे, अथवा एक स्तंभीय संगठन के रूप में नही, बल्कि प्रमुखता की खोज में लगे विशिष्ट व्यक्तियों के रूप मे शासन चलाना चाहते हैं। (वैसे यह प्रमुखता या प्राधान्य अनिवार्यतः एक अस्थाई बात ही होती है)। राजनीतिक दृढ़ीकरण, सेना द्वारा समाज पर शासन चलाने से उत्पन्न एक निश्चित तथ्य बनने के बजाय, एक प्रमुख लक्ष्य के रूप में ही रहता है चाहे वह अग्राह्य ही हो।

लेकिन अपने पूर्ववर्ती असैनिक अधिकारियों के विपरीत, सैनिक शासक राजनीतिक दृढ़ीकरण के बारे मे समान मत रखते हैं जो राजनीति विरोधी है। सैनिक शासक खुले तौर पर राजनीतिज्ञों के विरोधी होते हैं और जनसहयोग के प्रति संदेहात्मक दृष्टिकोण रखते हैं और वास्तव में सामान्य राजनीति में भी उनका कोई विश्वास नहीं है। ऐसे सैनिक शासकों ने, 'एक अराजनीतिक शांति जो गुप्त संस्थाओं के अनिश्चित आंदोलनों से भंग नही होती', स्थापित करने की कोशिश की है…[6]। उनके प्रयत्न विफल रहे हैं। फिर भी हाल की घटनाओं से पता चलता है कि राजनीति में विश्वास न रहने के कारण, सैनिक शासन एक परस्पर विरोधी शासन की संभावनाओं से भरा पड़ा है। यह ऐसा शासन है जिसमें हालाकि सैनिक विशिष्ट व्यक्ति सारी सत्ता को एक ही जगह केंद्रित करना चाहता है, फिर भी विकेंद्रीकरण की 'शक्तिया' पहले से कही अधिक तीव्र होती हैं।

सैनिक शासक जिस प्रकार अपने सामने आने वाली समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोणों को व्यक्त करते हैं उन तरीकों में आश्चर्यजनक समानताएं हैं। सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति सामान्य रूप से सामाजिक संघर्षों के प्रति और हर ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया के प्रति गहरा अविश्वास रखते हैं जो इस तरह के संघर्ष को वैध मानती है। जैसा जोलबर्ग ने कहा है :

> वे राष्ट्रीय एकता को 'समरूपता' मानते हैं, और इसमें वे क्षेत्रवाद, स्थानीय परंपरावाद जैसे जातीय या धार्मिक संबंधों से उपजने वाले सामाजिक संघर्ष के अभाव को देखते हैं। सभी राष्ट्रों में 'जातीय पृथक्तावाद' की निंदा की गई है, और इसे स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से उभरने नहीं दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उद्देश्य यह है कि राजनीतिक अधिकार के माध्यम से समरूपता लाई जाए मानो शासक वास्तव में यही मानते हों कि संघर्ष का अभाव किसी न किसी प्रकार से राष्ट्रीय एकता पैदा करता है।[7]

इन मतों को अक्सर 'गैर राजनीतिक' कहा गया है और तर्क दिया गया है कि इन्हें एक पार्टी वाले अफ्रीकी राज्यों के कई नेता मानते हैं।[8] लेकिन सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों और असैनिक नेताओं के विचारों में महत्वपूर्ण भिन्नता है। सैनिक विशिष्ट व्यक्ति खुल्लमखुल्ला इतने राजनीति-विरोधी नहीं हैं, जितने कि अराजनीतिक। एक पार्टी वाले राज्यों के नेताओं जैसे एन्क्रूमा और तूरे, के लिए सर्वसम्मति प्राप्त करने का माध्यम, जनसहयोग को बढ़ावा देना था। जब तक जनसमर्थन जुटाने की प्रक्रिया पर विशिष्ट व्यक्तियों के एक ही गुट का नियंत्रण था, तब तक जनसमर्थन जुटाना और जनसहयोग प्राप्त करना, नए लक्ष्यों और नई राजनीतिक शब्दावली के प्रसार के प्रमुख माध्यम थे। समर्थन और सहयोग के आह्वान ने लोगों को अपने संकीर्ण क्षेत्रवाद के दायरे से बाहर निकाला। इसके विपरीत, सैनिक शासक न केवल अनेक व्यक्तियों की हिस्सेदारी के प्रति संदेह रखते थे, बल्कि उन्हें स्वभावत. हिस्सेदारी में भी कोई विश्वास नहीं था। उनका विचार है कि सहयोग अनिवार्यतः एक से अधिक लोगों के बीच होता है और इसलिए यह अनिवार्यतः विघटनकारी है। राजनीतिज्ञों द्वारा जनता में जोड़-तोड़ करने और उनके क्रियाकौशल से साधारण जन सदैव ही 'कबीलावाद, गुटबंदी और पारिवारिक पृष्ठभूमि की चेतना' के शिकार होते रहते हैं।[9]

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सैनिक शासनों ने आम तौर पर राजनीतिक

गतिविधियों पर कड़ा अंकुश लगाया है। उन्होंने अक्सर सभी राजनीतिक पार्टियों पर यहां तक कि उन पार्टियों पर भी प्रतिबंध लगाया है जो सेना द्वारा सत्ता से हटाए गए शासकों का विरोध करती थी। पाकिस्तान और दक्षिण कोरिया में बहुत बड़ी संख्या में राजनीतिज्ञों को सार्वजनिक गतिविधियों में भाग लेने की मनाही हो गई।[10] नाईजीरिया में तो सैनिक शासन ने स्थानीय राजनीतिज्ञों के स्तर तक सभी निर्वाचित अधिकारियों को सेवा मुक्त कर दिया।[11] यह देखने पर कि ये लोग पृथक्तावाद को उकसा रहे हैं, बहुधा क्षेत्रीय सीमाओं में भी परिवर्तन किया गया। कांगो में जनरल मोबूतू ने 22 प्रांतों को मिलाकर 12 प्रांत बनाए। नाईजीरिया में जनवरी 1966 की सैनिक क्रांति के बाद जनरल इरोंसी ने नाईजीरिया को एकात्मक राज्य घोषित कर दिया। दूसरे शब्दों में राजकार्य में जनता को शामिल होने से रोका गया, और इसके लिए उन सामाजिक भेदभावों को बलपूर्वक समाप्त किया गया जो कुछ एक व्यक्तियों की स्वार्थपूर्ति कर सकते थे। इसके अलावा जनता को ऐसे व्यक्तियों से दूर किया गया जो अपने स्वार्थों के लिए जनता में जोड़-तोड़ कर सकते थे। ये व्यक्ति थे असैनिक राजनीतिज्ञ।

जहां जनसहयोग की अनुमति दी गई वहां इसे काफी सीमित रखा गया। पाकिस्तान में जनरल अयूब खां के सत्ता में आने के एक साल बाद जो मूल लोकतंत्रीय प्रणाली (बेसिक डेमोक्रेसी) गठित की गई उसमें पंचस्तरीय पद्धति के सबसे निचले स्तर पर ही सामान्य मताधिकार की अनुमति दी है।[12] इंडोनेशिया में सरकार ने निर्दलीय विधायकों की संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से निर्वाचन क्षेत्रों में परिवर्तन लाने की कोशिश की।[13] घाना में यह सुझाव दिया गया कि केवल पढ़े-लिखे लोग ही मतदान करें। शासन ने जो थोड़े बहुत उदार सांविधानिक प्रस्ताव रखे थे वे भी जनहित के काफी प्रतिकूल थे।[14] हर हालत में लोगों को राजनीतिज्ञों के चंगुल से दूर रखा गया। पाकिस्तानी शासन के एक समर्थक की दलील है:

> यदि एकदलीय प्रणाली को उसके अलोकतांत्रिक खतरों के साथ स्वीकार नहीं किया जाना है तो सबसे उपयुक्त प्रणाली राष्ट्रपति के शासन की ही है। क्योंकि जहां यह प्रणाली लोगों को अत्यंत संगठित राजनीतिक पार्टियों के साथ नहीं बांधती और वे, पार्टी के प्रति अपने कर्तव्यों तथा निष्ठा की मजबूरी से स्वतंत्र रह सकते हैं, वहां लोगों को अपने मताधिकार का प्रयोग करने और अपनी पसंद की सरकार चुनने का मौका भी मिलता है।[15]

राजनीतिज्ञों और खुल्लमखुल्ला राजनीतिक गतिविधियों पर कई अस्थाई प्रतिबंध लगाने से ज्यादा, 'राजनीति विरोधी' रवैया, जैसा इस शब्द से ही स्पष्ट है, हर प्रकार के

राजनीतिक आदान-प्रदान पर एक तरह का आक्रमण है। सैनिक शासनों ने आम तौर पर व्यावसायिक वर्गों की आर्थिक सौदेबाजी को रोका है, और मजदूर संगठनों जैसे संगठनात्मक दलों पर कड़ा अंकुश लगाया है। कोई आश्चर्य नहीं है कि राजनीति पर अंकुश के साथ साथ, प्रशासनिक ढांचे का भी अक्सर तीव्र विस्तार हुआ है। राजनीतिक भूमिकाओं को प्रशासनिक भूमिकाओं में बदल दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक दृढ़ीकरण को, प्रशासनिक ढांचे के प्रभावशाली पुनर्गठन का अनिवार्य परिणाम समझा जाने लगा है, न कि केंद्र के अंदर, और परिधि तथा केंद्र के बीच के पारस्परिक संबंधों की देन। मिस्र के बारे में जेम्स हीफी ने इस राजनीति विरोधी मत के संबंध में जो बात कही है वह अन्य सैनिक शासनों पर भी उतनी ही लागू होती है।

> यह कल्पना (विकास की) एकरूपता चाहती है न कि मतभेद या व्यक्ति के लिए अपने विवेक के अनुसार कार्य करने की क्षमता। मिस्र के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा अपनी कल्पना में राजनीति को प्रतिष्ठापित करना मूल्यों का विरोधाभास होगा क्योंकि इन व्यक्तियों ने एक ऐसी सुचारु व्यवस्था की कल्पना की है जो तीव्र आर्थिक विकास की सुनियोजित आवश्यकताओं को तर्कसंगत ढंग से पूरा करेगी। राजनीति के अप्रिय और अनिश्चित पहलुओं को सम्मिलित करके एक राजनीतिक आदर्श बनाना, एक अवांछनीय लक्ष्य होगा।[16]

क्वामे एन्क्रूमा के कथन को अगर उलटकर कहा जाए तो, 'राजनीतिक साम्राज्य' को यदि कभी प्राप्त करना है तो यह प्रयत्न सबसे अंत में होना चाहिए।

राजनीतिक केंद्र में एकता और संघर्ष

सत्ता हथियाने के बाद सेना के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा संगठित प्रारंभिक शासन संरचना प्रायः अस्थिर सी रहती है जिससे उनकी उभयभावी वैधता, उनका जल्दबाजी में बनाया जाना तथा उनमें भाग लेने वाले सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों के बीच अपेक्षतया नए गठजोड आदि बातें प्रतिबिंबित होती हैं। अधिकांश मामलों में शुरू में तो शासन व्यवस्था एक संकटकालीन रूप में होती है जिसमें अपनी तरह की एक क्रांतिकारी परिषद होती है जिसके सदस्य वे लोग होते हैं, जिन्होंने क्रांति में प्रमुख भाग लिया हो। मिस्र में रिवाल्यूशनरी कमांड कौंसिल, घाना में राष्ट्रीय मुक्ति परिषद (नेशनल लिबरेशन कौंसिल) और सिएरा लियोने में राष्ट्रीय सुधार परिषद (नेशनल रिफार्मेशन कौंसिल) इस प्रकार की सरकारों के कुछ उदाहरण हैं। इस तरह की परिषदों में सत्ता का केंद्र अनिश्चित सा रहता है। वास्तव में बहुत कम क्रांतियों का कोई एक नेता रहा है। इनमें से अनेक सरकारों के बनते ही इनमें शामिल विभिन्न

व्यक्तियों के बीच सत्ता, नीति निर्धारण अथवा शासनकार्य में सेना की भावी भूमिका के बारे में मतभेद उठ खड़े होते हैं। इस तरह के कुछ उदाहरण हैं इराक में कासिम और आरिफ, और मिस्र में नासिर तथा नगीब के बीच, या तुर्की मे सैनिक शासन चलते रहने के समर्थक सक्रियतावादियों और इसके विरोधी रूढ़ीवादियों के बीच के संघर्ष।

अनिश्चितता और अस्थिरता, न केवल सैनिक प्रशासक परिषद में ही होती है, बल्कि यह राजनीतिक केंद्र में अन्य अभिनेताओं और सैनिक परिषद के बीच भी रहती है। सैनिक परिषद के विशिष्ट व्यक्तियों और सेना के शेष विशिष्ट व्यक्तियों के बीच संपर्क लगभग होता ही नहीं है, विशेषकर उस स्थिति में जबकि सैनिक क्रांति करने वाले लोगों की संख्या, सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों के मुकाबले बहुत कम हो। अक्सर क्रांति में मुख्यतः छोटे अधिकारी ही होते हैं। उदाहरण के लिए, तुर्की मे मई 1960 मे जो क्रांति हुई थी उसमें विभिन्न पदों वाले 38 अधिकारियो का एक षड्यन्त्रकारी दल था, और सेना के शेष लोग इस सैनिक परिषद को बड़ी संदेह की दृष्टि से देखते थे। हालांकि क्रांति के बाद नए वरिष्ठ सैनिक कमांडर नियुक्त किए गए थे, जिसका ऊपरी तौर पर उद्देश्य यह था कि सैनिक परिषद और शेष सेना के बीच संबंध अच्छे बने, फिर भी ऐसा लगता था कि ये जनरल खास तौर पर यह चाहते थे कि सेना को राजनीति से अलग रखा जाए। उनकी यह चिंता उस समय और भी बढ़ी, जब सैनिक परिषद के अंदर ही गुटबंदी शुरू हो गई और विभिन्न गुटों ने अन्य सैनिक अधिकारियों को अपने साथ मिलाना शुरू किया। उच्च कमान ने, सक्रियतावादी गुट के निर्वासन के सुझाव का समर्थन किया और सैनिक परिषद के सभी सदस्यों की छानबीन करके उन्हें सेना मे निकाल दिया और दोबारा सेना में आने की अनुमति नही दी।[17] दक्षिण कोरिया में छोटे और बड़े सैनिक अधिकारियों के बीच आपसी झगड़ों के कारण ही क्रांति हुई जिसका नेतृत्व छोटे अधिकारियों ने किया था और दोनों पक्षों के संबंधो में तनाव रहा। जहा सत्ता में आने वाले सैनिक विशिष्ट व्यक्ति बडे पदों वाले हों, और जहां सैनिक क्रांति मे सारी सेना शामिल हुई हो, वहा भी फूट पैदा हुई है। डंक्वार्ट रस्टो का कहना है :

> सैनिक परिषद को अपने षड्यंत्र की सफलता के कारण ही राजधानी और उसके आसपास के महत्वपूर्ण पद उन अधिकारियों को देने होंगे, जिनकी सहायता से यह परिषद सत्ता में आई। क्योंकि कोई भी व्यक्ति एक ही समय में अर्थ मंत्रालय और टैंकों की बटालियन का निर्देशन नही कर सकता। अपनी प्रमुख चाल चलने के बाद सैनिक शासकों को दूसरे लोगो को भी अवसर देना होगा और हो सकता है उनके सामने भी ऐसी ही चालों की चुनौतियां आएं।[18]

घाना में एक युवा लेफ्टीनेंट और उसकी स्क्वाड्रन ने बड़ी धीमी गति से पदोन्नतियां किए जाने पर असंतुष्ट होकर 1967 में सैनिक शासन का तख्ता लगभग पलट ही दिया था। दाहोमी में सेना के सत्ता में आने के दो वर्ष बाद दिसंबर 1967 में छोटे सैनिक अधिकारियों ने सफलतापूर्वक क्रांति की। उन्होंने इसे उचित बताया और कहा कि जो सैनिक अधिकारी सत्ता में आए थे उन्होंने छोटे अधिकारियों के साथ कभी कोई परामर्श नहीं किया और इन बड़े अधिकारियों ने असैनिक नागरिकों का समर्थन प्राप्त करने के प्रयत्न किए।

सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति आम तौर पर सत्ता में आने के बाद नागरिक सेवा के अधिकारियों पर बहुत निर्भर रहते हैं। यह एक ऐसी बात है जो अधिकांश सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों के राजनीति विरोधी विचारों को देखते हुए, आश्चर्यजनक नहीं है। अगर हम यह भी मान लें कि सैनिक परिषद और शेष सेना के बीच घनिष्ठ संबंध है, फिर भी ऐसे सैनिक नेता बहुत कम रहे हैं जिनके पास प्रशासन पर सीधा नियंत्रण चलाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति रहे हों। बहुत से नेताओं ने भी इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि यदि इस तरह के व्यक्ति सैनिक परिषद के पास होते तो स्वयं सेना की क्या स्थिति रहती? उदाहरण के लिए अयूब खान ने घोषणा की :

> यह अत्यंत आवश्यक था कि सेना को पीछे ही रखा जाए क्योंकि देश के सामान्य जीवन में उसका वही स्थान है। यदि वह नागरिक प्रशासन में सीधे तौर पर उलझ जाती, तो इसका असर यह होता कि मनोबल और कम हो जाता, और नागरिक सत्ता छिन्न भिन्न हो जाती। इसके अलावा, सेना को बाद में नागरिक जीवन में हटाकर अपने सामान्य कार्यक्षेत्र में काम करने के लिए वापस लाना और कठिन हो जाता। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं था कि यदि सेना को नागरिक प्रशासन चलाने या आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में बहुत अधिक उलझा लिया जाता, तो वह खत्म हो जाती।[19]

इसके परिणामस्वरूप सैनिक नेताओं ने स्वयं को औपनिवेशिक युग के गवर्नर और उपगवर्नर जैसा बनाना बेहतर समझा है, और विभिन्न प्रशासनिक विभागों के लिए केवल अस्थाई सैनिक निरीक्षक नियुक्त करने तक ही स्वयं को सीमित रखा। प्रशासन के विभिन्न विभाग, मुख्यतः असैनिक कर्मचारियों के हाथ में ही रहे हैं।[20] उदाहरण के लिए घाना में सैनिक परिषद के सदस्यों ने प्रारंभ में अपने हाथ में सेना और पुलिस की कमान रखी, जिससे वे नियंत्रण के अधिकार को पूरी तरह उपयोग में नहीं ला सके। उधर असैनिक व्यक्तियों को मंत्रालयों के अध्यक्ष, या क्षेत्रीय आयुक्त बना दिया गया और बहुत सी समितियों में पूरी तरह असैनिक नागरिक ही

रखे गए[21], जिनका काम विभिन्न मामलों पर सैनिक परिषद को परामर्श देना था। नौकरशाही के साथ यह प्रारंभिक गठबंधन तनावरहित नही था। जब सेना अपने हाथ मे सत्ता लेती है तो इस तरह की योजनाओं की घोषणाए की जाती है कि नौकरशाही में भ्रष्टाचार होने और पुराने असैनिक शासन के साथ उनका सबंध होने के कारण अधिकारियों को पदो से हटाया जाएगा और प्रशासन मे सुधार लाया जाएगा। कुछ राज्यों में तो इस तरह की कार्यवाही वास्तव मे की गई। पाकिस्तान में अयूब खान ने विभिन्न सेवाओं की जांच पडताल के लिए एक जांच समिति नियुक्त की थी। जिनकी जांच पडताल होनी थी उनमें अधिकांश व्यक्ति अधिकारीतत्र के मध्य स्तर के थे। 526 असैनिक कर्मचारियों को या तो रिटायर होने के लिए बाध्य किया गया या नौकरी मे निकाल दिया गया।[22] सैनिक शासक अक्सर नागरिक सेवाओं के खराब संचालन की निंदा करते रहते है और घाना तथा नाईजीरिया में तो उन्होंने यहां तक कार्यवाही की कि जो नागरिक कर्मचारी ठीक समय पर काम पर नहीं आए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

बहुत से राज्यों में सेना ने सरकार का प्रशासन चलाने के काम में वास्तव मे बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। बर्मा और इंडोनेशिया जैसे राज्यो में, जहां सेना काफी अर्से से विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक कार्य चलाती रही है, वहां उसकी भूमिका का विस्तार ही हुआ। इंडोनेशिया मे मंत्रिमंडलीय और विभागीय स्तरों पर सक्रिय बहुत से नागरिक कर्मचारियों को वास्तव मे सेना के सत्ता में आने के बाद सशस्त्र सेनाओं मे लिया गया था।[23]

सैनिक क्रांति के बाद की इस प्रारंभिक अवधि के दौरान शासन द्वारा की गई सभी कार्यवाहिया राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के विरुद्ध नही रही हैं। वास्तव में बहुत कम राजनीतिज्ञों को जेल में डाला गया। जिन लोगों को कारावास की सजा हुई उनमें से बहुत कम व्यक्तियों को लंबी अवधि के लिए बंदी रखा गया। राजनीतिक गतिविधि पर लगाए गए विभिन्न प्रतिबधों को भी आम तौर पर हल्के रूप में ही लागू किया गया। कुछ मामलो मे राजनीतिक समितियो, सलाहकार समितियो आदि के जरिए राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों को, शासक वर्ग के साथ संबद्ध किए जाने के प्रयत्न किए गए हैं। इस तरह की बात विशेष रूप से घाना जैसे देशों में हुई जहां सारी राजनीतिक प्रणाली के खिलाफ नहीं, बल्कि राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के एक खास दल के खिलाफ क्रांति की गई थी।

सैनिक परिषद की आंतरिक अस्थिरता और क्रांति के तुरंत बाद की अवधि मे राजनीतिक केंद्र में सत्ता संबंधों की अनिश्चिता के कारण, अंत मे सैनिक शासकों

घाना में एक युवा लेफ्टीनेंट और उसकी स्क्वाड्रन ने बड़ी धीमी गति से पदोन्नतियां किए जाने पर असंतुष्ट होकर 1967 मे सैनिक शासन का तख्ता लगभग पलट ही दिया था। दाहोमी में सेना के सत्ता मे आने के दो वर्ष बाद दिसंबर 1967 में छोटे सैनिक अधिकारियो ने सफलतापूर्वक क्राति की। उन्होंने इसे उचित बताया और कहा कि जो सैनिक अधिकारी सत्ता में आए थे उन्होंने छोटे अधिकारियो के साथ कभी कोई परामर्श नही किया और इन बड़े अधिकारियो ने असैनिक नागरिकों का समर्थन प्राप्त करने के प्रयत्न किए।

सत्तारूढ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति आम तौर पर सत्ता मे आने के बाद नागरिक सेवा के अधिकारियों पर बहुत निर्भर रहते है। यह एक ऐसी बात है जो अधिकांश सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों के राजनीति विरोधी विचारों को देखते हुए, आश्चर्यजनक नही है। अगर हम यह भी मान ले कि सैनिक परिषद और शेष सेना के बीच घनिष्ठ संबंध है, फिर भी ऐसे सैनिक नेता बहुत कम रहे हैं जिनके पास प्रशासन पर सीधा नियंत्रण चलाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति रहे हों। बहुत से नेताओ ने भी इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि यदि इस तरह के व्यक्ति सैनिक परिषद के पास होते तो स्वयं सेना की क्या स्थिति रहती? उदाहरण के लिए अयूब खान ने घोषणा की :

> यह अत्यंत आवश्यक था कि सेना को पीछे ही रखा जाए क्योंकि देश के सामान्य जीवन मे उसका वही स्थान है। यदि वह नागरिक प्रशासन मे सीधे तौर पर उलझ जाती, तो इसका असर यह होता कि मनोबल और कम हो जाता, और नागरिक सत्ता छिन्न भिन्न हो जाती। इसके अलावा, सेना को बाद में नागरिक जीवन से हटाकर अपने सामान्य कार्यक्षेत्र मे काम करने के लिए वापस लाना और कठिन हो जाता। मुझे इस बात में कोई सदेह नही था कि यदि सेना को नागरिक प्रशासन चलाने या आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कार्यो में बहुत अधिक उलझा लिया जाता, तो वह खत्म हो जाती।[19]

इसके परिणामस्वरूप सैनिक नेताओं ने स्वय को औपनिवेशिक युग के गवर्नर और उपगवर्नर जैसा बनाना बेहतर समझा है, और विभिन्न प्रशासनिक विभागों के लिए केवल अस्थाई सैनिक निरीक्षक नियुक्त करने तक ही स्वयं को सीमित रखा। प्रशासन के विभिन्न विभाग, मुख्यत. असैनिक कर्मचारियों के हाथ में ही रहे हैं।[20] उदाहरण के लिए घाना मे सैनिक परिषद के सदस्यो ने प्रारंभ में अपने हाथ मे सेना और पुलिस की कमान रखी, जिससे वे नियत्रण के अधिकार को पूरी तरह उपयोग में नहीं ला सकें। उधर असैनिक व्यक्तियो को मंत्रालयों के अध्यक्ष, या क्षेत्रीय आयुक्त बना दिया गया और बहुत सी समितियों मे पूरी तरह असैनिक नागरिक ही

रखे गए[21], जिनका काम विभिन्न मामलों पर सैनिक परिषद को परामर्श देना था। नौकरशाही के साथ यह प्रारंभिक गठबंधन तनावरहित नही था। जब सेना अपने हाथ में सत्ता लेती है तो इस तरह की योजनाओं की घोषणाएं की जाती है कि नौकरशाही में भ्रष्टाचार होने और पुराने असैनिक शासन के साथ उनका सबध होने के कारण अधिकारियों को पदों से हटाया जाएगा और प्रशासन में सुधार लाया जाएगा। कुछ राज्यों में तो इस तरह की कार्यवाही वास्तव मे की गई। पाकिस्तान में अयूब खान ने विभिन्न सेवाओं की जांच पड़ताल के लिए एक जाच समिति नियुक्त की थी। जिनकी जाच पडताल होनी थी उनमे अधिकांश व्यक्ति अधिकारीतंत्र के मध्य स्तर के थे। 526 असैनिक कर्मचारियों को या तो रिटायर होने के लिए बाध्य किया गया या नौकरी मे निकाल दिया गया।[22] सैनिक शासक अक्सर नागरिक सेवाओं के खराब संचालन की निंदा करते रहते हैं और घाना तथा नाईजीरिया में तो उन्होंने यहां तक कार्यवाही की कि जो नागरिक कर्मचारी ठीक समय पर काम पर नही आए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

बहुत से राज्यों में सेना ने सरकार का प्रशासन चलाने के काम में वास्तव मे बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। बर्मा और इंडोनेशिया जैसे राज्यों में, जहां सेना काफी अर्से से विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक कार्य चलाती रही है, वहां उसकी भूमिका का विस्तार ही हुआ। इंडोनेशिया मे मत्रिमंडलीय और विभागीय स्तरों पर सक्रिय बहुत से नागरिक कर्मचारियों को वास्तव मे सेना के सत्ता में आने के बाद सशस्त्र सेनाओं मे लिया गया था।[23]

सैनिक क्राति के बाद की इस प्रारंभिक अवधि के दौरान शासन द्वारा की गई सभी कार्यवाहियां राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के विरुद्ध नही रही हैं। वास्तव मे बहुत कम राजनीतिज्ञों को जेल मे डाला गया। जिन लोगों को कारावास की सजा हुई उनमें से बहुत कम व्यक्तियों को लंबी अवधि के लिए बदी रखा गया। राजनीतिक गतिविधि पर लगाए गए विभिन्न प्रतिबंधों को भी आम तौर पर हल्के रूप मे ही लागू किया गया। कुछ मामलों मे राजनीतिक समितियों, सलाहकार समितियो आदि के जरिए राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों को, शासक वर्ग के साथ संबद्ध किए जाने के प्रयत्न किए गए हैं। इस तरह की बात विशेष रूप से घाना जैसे देशों मे हुई जहा सारी राजनीतिक प्रणाली के खिलाफ नही, बल्कि राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियों के एक खास दल के खिलाफ क्राति की गई थी।

सैनिक परिषद की आंतरिक अस्थिरता और क्राति के तुरंत बाद की अवधि मे राजनीतिक केंद्र में सत्ता संबंधों की अनिश्चितता के कारण, अंत में सैनिक शासकों

के लिए एक संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। यह बराबर स्पष्ट होता चला जाता है कि घोषणाओं से राजनीतिक शक्तियों को बिल्कुल समाप्त, या नियंत्रित नही किया जा सकता। जिन राज्यों में इन शक्तियो पर कोई स्पष्ट और कारगर प्रतिबंध नहीं लगा है, वहा उन्होंने अक्सर यह माग की है कि शासन चलाने में उनका और अधिक सहयोग लिया जाए, या फिर से नागरिक शासन स्थापित हो। राजनीतिक व्यक्तियों के निरीक्षण से मुक्त अधिकारीतंत्र, धीरे धीरे स्वायत्त होता जाता है। शेष सेना लगातार एक खतरा बनी रहती है, विशेषकर उस समय जब असैनिक व्यक्तियों को भी अपने साथ मिलाने के सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों के प्रयत्नों को लेकर असतोष पैदा होता है, या जब सैनिक परिषद के अंदर ही, और परिषद मे शामिल तथा उससे बाहर के व्यक्तियो के बीच गुटबंदी होने लगती है तो यह असंतोष और अधिक उभरकर सामने आता है। दिसंबर 1967 में दाहोमी में जो सफल क्रांति हुई थी वह बढ़ते हुए असैनिक प्रभाव के प्रति असंतोष और विरोध भावना का उदाहरण है। दक्षिण कोरिया और घाना में क्रांति के जो प्रयत्न हुए उनसे सैनिक परिषदों की आंतरिक गुटबंदी का पता चलता है।

ऐसी परिस्थितियों मे सेना को नागरिक शासन के संचालन से हटा लेना एक संभावना बन जाती है। ऐसा भी होता है कि जब सेना के विशिष्ट व्यक्ति प्रारंभ मे शासन प्रणाली पर प्रभावशाली नियंत्रण नही रख पाते तो वह उससे बिल्कुल अलग हो जाने की बात सोचने लगे।[24] लेकिन बहुधा ऐसी स्थिति होती है कि उनके पास वास्तव मे कोई विकल्प ही न हो। सबसे पहले जिन परिस्थितियों के कारण सेना को शासन के काम में उलझना पडा वे अल्पविकसित राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया में बराबर बनी रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप सैनिक शासकों का सत्ता से हटने का प्रयत्न बहुधा सफल नही रहा है।[25]

आम तौर पर सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों ने, राजनीतिक केंद्र और संपूर्ण राजनीतिक प्रणाली को नया रूप देने के सतत प्रयत्न किए हैं, जिससे इनका प्रभुत्व बना रहे। कई पहलुओं से, प्रधानता की यह खोज, नागरिक प्रशासनों के अंदर राजनीतिक दृढ़ीकरण के प्रयत्नों जैसी ही है।

असैनिक विशिष्ट व्यक्तियों की भांति सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति भी, सरकारी साधनों पर नियंत्रण और केंद्रीयकरण के लिए इन साधनों के उपयोग पर बहुत अधिक निर्भर रहते हैं। शासक सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों और उनके द्वारा नियुक्त किए गए लोगों के बीच व्यक्तिगत निष्ठा भाव और पैतृक संबंधों के माध्यम से ही, राजनीतिक केंद्र के दृढ़ीकरण और नियंत्रण के प्रयत्न होते रहे हैं।

यह बात सेना के अंदर उस समय तुरंत स्पष्ट हो जाती है जब कोई एक सैनिक नेता, सारी सैनिक परिषद पर अपनी व्यक्तिगत प्रधानता स्थापित कर लेता है। मिस्र में जिन अधिकारियों के विचार नासिर से नही मिलते थे, उनके निष्कासन के बाद 1967 तक, नासिर अपने घनिष्ट मित्र अब्दुल हकीम अमीर पर निर्भर रहे। सेनाध्यक्ष और रक्षामंत्री के रूप में अब्दुल हकीम अमीर ने सेना को नियंत्रित रखने मे नासिर की सहायता की। दक्षिण कोरिया मे पार्क चुग ही की सरकार ने बहुत से लोगो को समय से पहले ही अनिवार्य रूप से रिटायर कर दिया, जिससे 1961 की क्रांति के प्रमुख व्यक्ति नियंत्रण के पदों पर आ सके। यह व्यक्ति आफिसर्स कैंडीडेट स्कूल की दूसरी और आठवीं कक्षाओ के थे।[26] पार्क के व्यक्तिगत साथियों को सेना की काउंटर इंटेलीजेंस एजेंसी और अन्य नियंत्रण वाले महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया गया। यह एजेंसी सभी बड़े अधिकारियों पर कड़ी नजर रखने और उनके आपसी संबंधो पर भी निगरानी रखने के लिए बनाई गई थी।[27] इंडोनेशिया में इस तरह की गतिविधियों का स्वरूप कुछ अधिक जटिल रहा है। इसका मुख्य कारण यह था कि सेना के अंदर ही विभिन्न गुटो के गठन की प्रक्रिया पेचीदी थी लेकिन फिर भी मूल समानता थी। सुहार्तो ने वामपंथी सैनिक-कमांडरों को पदों से हटाने और साथ ही स्वयं राष्ट्रपति, रक्षामंत्री और सशस्त्र सेनाओं के कमांडर के पद संभालने (जिससे सेना को उन विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क से दूर रखा जा सके जो संभवतः सुहार्तो के मुकाबले खड़े हो जाते) के अलावा, अपने नियुक्तिया करने के व्यापक अधिकारों का इस्तेमाल, अपने गुट के सदस्यों को सेना में प्रमुख पदों पर लाने, और अन्य गुटों का समर्थन प्राप्त करने के लिए किया।[28] सुहार्तो ने विरोधी गुटो के नेताओं को दूर दूर के क्षेत्रों या अन्य देशों मे भेज दिया, या उन्हें अपेक्षाकृत साधारण पदों पर रखा।[29]

प्रधानता की खोज के प्रयत्न, विभिन्न सैनिक शासनो और राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियो के बीच बदलते हुए संबंधों में भी नजर आते है। जिन राज्यों में राज-नीतिक पार्टियां वैध बनी रही हैं, वहां सैनिक शासको ने अपना प्रभाव डालकर पार्टी के ऐसे नेताओ का निर्वाचन कराने का प्रयत्न किया है, जो सैनिक सरकार का अधिक पक्ष ले सकें। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से इंडोनेशिया में है।[30] आम तौर पर तो सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति, सरकार द्वारा प्रेरित राजनीतिक पार्टी की स्थापना के माध्यम से नए राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति बनाने के प्रयत्न करते हैं। सैनिक शासक इस तरह की पार्टियों को तत्कालीन विशिष्ट व्यक्तियों और अपने बीच आदान-प्रदान के आधार पर संबंधों की स्थापना के लिए उपयोग में लाने के बजाय इन विशिष्ट व्यक्तियों को आम तौर पर अनदेखा कर देते हैं, और नए राजनीतिज्ञों पर निर्भर करते हैं जो कम से कम सिद्धांत रूप मे तो शासन के लिए समर्थन जुटा सकेंगे। यह

समर्थन जुटाने के लिए नए राजनीतिज्ञ जनता को संरक्षण के लाभ और अन्य सरकारी लाभ देते हैं। इस तरह की पार्टियां, उदाहरण के लिए दक्षिण कोरिया की डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी, पाकिस्तान की (रूढिवादी) मुस्लिम लीग, और मिस्र की लिबरेशन रैली, नेशनल यूनियन और अरब सोशलिस्ट यूनियन, जनसमर्थन प्राप्त करने के माध्यम उपलब्ध कराने की सेना की कोशिश का प्रतिनिधित्व करती है, और इस बात का खतरा नहीं होता कि ये माध्यम शासन से बिल्कुल ही अलग हो जाएंगे।[31] हालांकि उपलब्ध आंकड़े बहुत कम हैं, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत सैनिक शासकों ने राजनीतिक दृढ़ीकरण के दो प्रमुख तरीके अपनाने के प्रयत्न किए हैं। पहला तो यह कि उन्होंने प्रशासनिक भूमिकाओं की संख्या बढ़ाकर और राजनीतिक कार्यों की संख्या घटाकर, राजनीतिक प्रणाली को 'राजनीतिविहीन' बनाने का प्रयत्न किया है। दूसरा यह कि विस्तृत अधिकारीतंत्र की स्वायत्ता कम करने के लिए उन्होंने प्रशासनिक ढांचे पर अपना 'व्यक्तिगत' नियंत्रण रखने का प्रयत्न किया।

पहला तरीका इन दो बातो से विदित है कि अधिकारीतंत्र में संख्या, एजेंसिया, और गतिविधिया, सामान्य रूप से बढ़ा दी गई और राजनीतिक भूमिकाओं को प्रशासनिक पदो में बदल दिया गया। मिस्र में सरकारी पदों की संख्या 1954-55 में तीन लाख 81 हजार 6 सौ पंद्रह थी जो 1964-69 में बढकर 12 लाख 55 हजार हो गई।[32]

दक्षिण कोरिया में केवल आर्थिक मंत्रालयों में ही विभागों की संख्या 21 से बढ़कर 34 तक जा पहुंची है।[33] अधिकांश राजनीतिज्ञों के स्थान पर सभी स्तरों पर सरकारी कर्मचारी लाए गए हैं और राजनीतिक पद या तो बिल्कुल समाप्त कर दिए गए हैं या अधिकारीतंत्र के अंतर्गत इनके कार्य फिर से निश्चित किए गए हैं। इस प्रकार के परिवर्तन का उदाहरण है पाकिस्तान का बेसिक डिमाक्रेसीज सिस्टम। इसमें परिषदों के पंचस्तरीय प्रबंध के अंतर्गत केवल स्थानीय बोर्डों (यूनियन काऊंसिल) का चुनाव सीधे वयस्क मतदान द्वारा किया गया, और ऊपर के अन्य सभी स्तरों पर उन 'निर्वाचित' सदस्यों को लिया गया, जो अगले निचले स्तर पर परिषद के अध्यक्षों में से चुने गए थे। इसके अलावा सरकारी अधिकारियों को भी सरकारी सदस्यों के रूप में अधिक अनुपात में लिया गया। इस प्रणाली का उद्देश्य सरकारी संगठनों की, लगभग पूर्णरूप से राजनीतिविहीन व्यवस्था स्थापित करना था। यद्यपि इस प्रणाली से जनसहयोग के लिए एक माध्यम बनाया जाना था, लेकिन बेसिक डेमोक्रेटों (जो स्थानीय परिषदों के लिए चुने गए थे) को वास्तव में कोई राजनीतिक कार्य नहीं सौंपा गया। जैसा एक विद्वान ने कहा है :

इस बात का फैसला सरकार करती है न कि कोई लोकप्रिय निर्वाचनक्षेत्र कि कौन से निर्वाचित पार्षदों को वास्तव में जिला, खंड (डिवीजन), और जून 1962 तक प्रांतीय स्तर पर 'प्रतिनिधित्व' करने का मौका दिया जाए। इस बात को ध्यान मे रखा जाना चाहिए कि आठ हजार तीन सौ पचपन यूनियन काऊंसिल अध्यक्ष है, जिनमें से 76 जिला और एजेंसी परिषदों, 15 डिवीजनल परिषदों और दो प्रांतीय परिषदों में नियुक्तियो के लिए लोगो को चुना जाना है। इस प्रकार यह मान लेना अत्यंत अव्यावहारिक होगा कि जिला या डिवीजन परिषद मे 'प्रतिनिधि' सदस्य की सत्ता का आधार उसका अपना निर्वाचन क्षेत्र है, न कि नियुक्ति करने वाला अधिकरण। और यह मान लेना भी बुद्धिमता नही होगी कि जनता के 'प्रतिनिधि' इस बात को नही समझते।[31]

दूसरे तरीके का मतलब यह है कि सत्तारूढ सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों ने विस्तृत प्रशासनिक ढांचे मे विशेषकर उच्च स्तर पर प्रशासक रखने के लिए, नियमित नागरिक सेवा से बाहर के लोगो को लिया है। इस प्रकार ऐसे विशेषज्ञों की भर्ती से जिनको बहुधा प्रशासन का कोई वास्तविक अनुभव नही होता, विस्तृत अधिकारीतंत्र पर नियंत्रण बनाए रखने का मौका मिलता है, क्योंकि जिन लोगो को चुना गया वे या तो सत्ताधारी विशिष्ट व्यक्ति के साथ व्यक्तिगत संबंध रखते थे (क्योंकि वे नियमित नागरिक सेवा से बाहर के लोग थे) या अपने पदों के लिए सैनिक शासकों पर निर्भर थे। इस प्रकार घाना में जिन वरिष्ठ नागरिक कर्मचारियो ने सेना द्वारा सत्ता संभालने के बाद सरकारी मंत्रालयों का कामकाज प्रारभ में संभाला उन्हे राजनीति-विहीन विशेषज्ञों के लिए स्थान खाली करने पड़े। 1967 में नियुक्त किए गए नागरिक आयुक्तो मे से आधे लोग उन्ही मत्रालयो के काम के विशेषज्ञ थे जिनका उन्हें अध्यक्ष नियुक्त किया गया।[35] बीस आयुक्तों में से केवल पांच, भूतपूर्व नागरिक कर्मचारी थे।[36]

मिस्र में, जहा क्रांति के बाद ही वास्तव मे आधुनिक नागरिक सेवा का गठन किया गया था, अधिकारीतंत्र पर तकनीकी विशेषज्ञ हावी हो गए हैं, जिनके पास सत्ता का अपना कोई आधार है ही नही, या बहुत कम है।[37] अपने सारे शासनकाल के दौरान नासिर ने अधिकारीतंत्र पर अपना 'व्यक्तिगत' नियंत्रण बनाए रखा। प्रारंभ में तो महत्वपूर्ण मंत्रालयों का नियंत्रण क्रांतिकारी कमान परिषद के सदस्यों के हाथ में रखा गया, लेकिन जब विशेषज्ञ वर्ग विकसित हुआ तो नासिर ने विभिन्न स्तरों के महत्वपूर्ण पदो पर अपने ही समर्थकों को नियुक्त करके और समय समय पर पुनर्गठन करके, अपना नियंत्रण बनाए रखने का प्रयत्न किया।

पाकिस्तान में वरिष्ठ प्रशासनिक पदों पर पाकिस्तान सिविल सर्विस के विशिष्ट व्यक्तियों के परंपरागत एकाधिकार को तोड़ने के लिए अय्यूब खान सेना और असैनिक व्यक्तियों, दोनों पर निर्भर रहे। मार्शल ला की घोषण के बाद (7 अक्तूबर 1958) 272 सैनिक अधिकारियों को या तो असैनिक विभागों अथवा एजेंसियों का सीधा प्रशासन चलाने के लिए, या उस समय पदों पर आसीन नागरिक अधिकारियों के कार्य पर नजर रखने के लिए नियुक्त किया गया।[37] 1959 में केंद्र सरकार ने एक आर्थिक निकाय की स्थापना की। यह एक उपरि प्रशासनिक (सुप्रा ऐड-मिनिस्ट्रेटिव) सेवा थी जिसमें सभी नागरिक सेवाओं में से सदस्य लिए जा सकते थे और इन्हें वित्त, वाणिज्य और अर्थ मंत्रालयों में प्रमुख पदों पर रखा जा सकता था।[39] 40 प्रतिशत सदस्यों को सिविल सर्विस आफ पाकिस्तान के बाहर से भर्ती किया जाना था। जब सेना को वापस लौटा लिया गया और नागरिक प्रशासन की जिम्मेदारी फिर से पाकिस्तान सिविल सर्विस को सौंप दी गई तो भी यह तरीका चलता रहा क्योंकि युवा सैनिक अधिकारियों को पाकिस्तान सिविल सर्विस में भर्ती किया गया। एक अध्ययन के अनुसार, '1960 और 1963 के बीच पाकिस्तान सिविल सर्विस में शामिल होने वाले 14 सैनिक और नौसैनिक अधिकारियों में से आठ अधिकारियों के संबंध, उच्च सैनिक व्यक्तियों के साथ बहुत घनिष्ठ थे।'[40]

जेरे में जोसफ मोबुतू के अधीन 'विशेषज्ञों ने राष्ट्रपति के सीधे निरीक्षण में' काम करते हुए अपनी भूमिका का बहुत अधिक विस्तार किया है।[41] 1967 के अंत तक मंत्रिमंडल में राजनीतिविहीन विचारधाराओं वाले भूतपूर्व विश्वविद्यालय छात्रों और तकनीकी जानकारों का बोलबाला हो गया।[42] मोबुतू ने प्रशासनिक पदों की संख्या काफी बढ़ाकर और ऐसे पदों से प्रशासकों को हटाकर, जहां वे अपनी व्यक्तिगत सत्ता के आधार का विकास कर सकते थे, प्रशासन पर अपने व्यक्तिगत नियंत्रण को और अधिक सुदृढ़ किया है। गवर्नर और उनके द्वारा नियुक्त किए गए प्रांतीय आयुक्त और प्रांतीय सचिवों को उनके पुश्तैनी इलाकों से स्थानांतरित कर दिया गया और उन्हें राष्ट्रपति के प्रति सीधे उत्तरदायी बना दिया गया। यह नियम सबसे नीचे यानी जिलास्तर तक लागू हुआ।[43]

दृढ़ीकरण के इन विभिन्न प्रयत्नों का परिणाम स्पष्ट नहीं है क्योंकि इससे संबद्ध पर्याप्त सूचना उपलब्ध नहीं है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रयत्न आम तौर पर सफल नहीं रहे हैं। पहली बात तो यह है कि जब यह समझा गया कि शासन की प्रारंभिक अस्थिरता की अवधि समाप्त हो गई है, उसके बाद भी काफी लंबे समय तक इन शासनों में विभिन्न सैनिक परिषदों के बीच गुटबंदी का रोग जारी रहा। उदाहरण के लिए मिस्र में क्रांति का संचालन करने वाले फ्री अफसर ग्रुप की अपनी आंतरिक

सुदृढ़ता और एकता 1950 और 1960 के दशकों मे बहुत क्षीण हो गई।[44] दक्षिण कोरिया में व्यक्तिगत वैमनस्य और झगड़ों के कारण सैनिक परिपद के सदस्यों में आमूल परिवर्तन आया है। परिपद के कम से कम 7 सदस्य, वर्तमान नेता पार्क चुंग ही को अपदस्थ करने के विफल प्रयत्नों से संबद्ध रहे हैं। इन लोगों मे क्रांति के समय के सेनाध्यक्ष भी शामिल थे। दक्षिण कोरिया और अन्य स्थानो पर भी, इस प्रकार की क्रांतियां उन कठिनाइयो का प्रमाण है जो सैनिक शासनो के सामने पूर्ण नियंत्रण स्थापित करते समय सामने आई है। अफ्रीका और एशिया मे थोड़े थोड़े समय बाद क्रांतियों की संख्या बढ़ते जाने का कारण न केवल नागरिक सरकारों और सेना के बीच संबंधों का उत्तरोत्तर बिगड़ते जाना है, बल्कि ये क्रातिया, गुटों के संघर्षों में सैनिक विशिष्ट व्यक्तियो के उलझने और सैनिक सरकार तथा शेष सेना के बीच आपसी तनावो का भी परिणाम है।

इसके अलावा, राजनीति के प्रति सैनिक शासको के सदेह बने रहने के कारण इन सैनिक शासकों द्वारा नए राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियो का वर्ग तैयार करने या पुराने राजनीतिज्ञों को शासनसमर्थित राजनीतिक पार्टिया बनाकर सरकार मे लाने के प्रयत्नों में बाधा पड़ी है। राजनीतिज्ञ चाहे वे नए हो अथवा पुराने, आम तौर पर शासन से अलग रखे जाते हैं। अविश्वास की यह बात सी० आई० यूजीन किम के उस विवरण मे स्पष्ट है जो उन्होने दक्षिण कोरिया में डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी के साथ राष्ट्रपति पार्क के संबंधों के बारे मे दिया है :

> पार्टियो और राजनीति मे बहुत अधिक उत्साह न रखने वाले राष्ट्रपति पार्क, अपनी सरकार को विशेषज्ञो और प्रशासको की सरकार मानते हैं। उन्होने अपनी पार्टी के प्रति स्पष्ट शब्दो मे अविश्वास व्यक्त किया है। वे पार्टी संबंधी राजनीति को, प्रशासन और नीति निर्धारण से अलग रखना चाहते है। जब पार्टी के नेताओं और मंत्रिमंडल के सदस्यों के बीच तनाव पैदा हुआ तो राष्ट्रपति पार्क ने आम तौर पर अपने मत्रियो का साथ दिया और पार्टी की भूमिका को गौण माना। उनके लिए डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी, चुनावों में सफलता का एक लाभकारी माध्यम है, लेकिन यह प्रशासनिक कार्य चलाने के योग्य व्यक्ति उपलब्ध नही करा सकती। जब कभी उन्हें कोई निर्णय लेने होते है, तो उनके मुख्य सलाहकार राष्ट्रपति के सचिवालय और मंत्रिमंडल मे पाए जाते हैं। उनका राष्ट्रपति सचिवालय, उनके कार्य का एक अभिन्न अंग बन चुका है और उसे कभी कभी 'छोटा मंत्रिमंडल' कहा जाता है। इसके अलावा राष्ट्रपति का सचिवालय पार्टी से बाहर के व्यक्तियो से भरा हुआ है जिससे निर्णय लेने का उत्तरदायित्व, पार्टी को इस सचिवालय को सौप देना पडा।[45]

अंतिम बात यह है कि विभिन्न प्रशासनिक एजेंसियों के अध्यक्ष पद पर आसीन विशिष्ट व्यक्तियों की यह प्रवृत्ति है कि वे अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाना और अपने अपने विभागों को व्यक्तिगत पुश्तैनी संस्था के रूप मे विकसित करना चाहते हैं। यह बात सैनिक शासनो मे और भी अधिक है। कुछ हद तक यह इस बात का परिणाम है कि सैनिक शासक, आम तौर पर अपने पूर्ववर्ती शासकों की तुलना में कम चतुर नेता सिद्ध हुए हैं। इससे भी बड़ी बात यह है कि इन नेताओं ने राजनीतिक प्रणाली को राज-नीतिविहीन बनाने और प्रशासनिक पदों की संख्या बढाने के जो प्रयत्न किए, उससे एक ऐसे अधिकारीतंत्र का जन्म होता है, जो किसी भी नेता के नियंत्रण से बाहर हो जाता है, चाहे सारे प्रशासनिक ढाचे में व्यक्तिगत अनुयायियों की सख्या कितनी भी हो। जहा वास्तव में नियमित नागरिक सेवा को सीमित किया जाना था या उसे अनदेखा किया जाना था, वहा प्रशासनिक विभागों का विस्तार होने से अंत में नियमित नागरिक सेवा को अपनी स्वायत्ता फिर से स्थापित करने का अवसर मिल गया क्योंकि अन्य प्रशिक्षित व्यक्तियो का अभाव था। इस प्रकार पाकिस्तान मे जहा बेसिक डेमोक्रेसीज प्रणाली, राजनीतिक प्रणाली को अधिकारीतंत्र बनाने का एक प्रयत्न थी, वहा उसने पाकिस्तान सिविल सर्विस की सत्ता को भी पुनर्स्थापित किया।

> 1959 के बेसिक डेमोक्रेसीज आदेश ने डिवीजनो और जिलों मे काम करने वाले नागरिक कर्मचारियो को नई स्थानीय संस्थाओं पर 'नियंत्रण के अधिकार' दे दिए हैं। इस आदेश के अतर्गत बनाई गई प्रणाली मे पाकिस्तान सिविल सर्विस के कमिश्नर, डिवीजनल परिषदों की अध्यक्षता करते हैं, और प्रातीय सिविल सर्विस के डिप्टी कमिश्नर जिला परिषदों के अध्यक्ष हैं। बेसिक डेमोक्रेसीज प्रणाली ने पाकिस्तान सिविल सर्विस के अधिकारों और सत्ता को कम नही होने दिया। स्थानीय संप्रदायो के अविवादास्पद नेता होने के नाते नागरिक सेवा के कर्मचारियों को कानून और व्यवस्था संबधी प्रशासन के एजेंटों के रूप मे सत्ता नही मिली है, बल्कि एक घोषित 'जनहितकारी राज्य' के प्रतिनिधियों के रूप में वे इस सत्ता का उपभोग करते हैं। और फिर 1962 मे स्थानीय परिषदों को अधिक सक्रिय बनाकर ग्रामीण क्षेत्रो का विकास करने के उद्देश्य से एक व्यापक ग्राम निर्माण कार्यक्रम शुरू किया गया था। इससे पाकिस्तान सिविल सर्विस के डिवीजनल और जिला प्रशासको की सत्ता और बढ़ गई क्योंकि विकास पर खर्च की जाने वाली राशि पर उन्ही का नियंत्रण था।[46]

संक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि सैनिक शासकों के बडे बड़े भाषणों, सत्ता का केंद्रीकरण करने के लिए उनके गभीर प्रयत्नों, और समाज के अदर फूट पड़ने के संदेहो के

बावजूद, सत्तारूढ़ सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा गठित राजनीतिक केंद्र के पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विकेंद्रीकृत होने की संभावना है। केंद्रीकरण के 'नरेशों' और विकेंद्रीकरण के अधीनस्थ अधिकारियों के बीच खींचतान पहले से ज्यादा नजर आने की संभावना होती है। उदाहरण के लिए इंडोनेशिया में :

> निर्दिष्ट लोकतंत्र (गाइडेड डेमोक्रेसी) के अधीन जैसे जैसे अर्थव्यवस्था बिगड़ती गई, सभी सरकारी विभागों को वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सरकारी वेतन, जीवनयापन के लिए अत्यंत आवश्यक स्तर से बहुत नीचे चले गए। इसके अलावा पुराने उपकरणों के रखरखाव, और नए उपकरणों को खरीदने के लिए, धन दिनोदिन कम होता गया। अन्य विभागों की भांति सेना को भी इस समस्या से जूझना पड़ा। स्थानीय यूनिटों को अपने अपने तरीकों से धन इकट्ठा करने की काफी स्वतंत्रता दी गई (उदाहरण के लिए तस्करी, गैर सरकारी कर और सेना द्वारा आरंभ किए गए उद्योग आदि), जबकि राज्य निगमों में सक्रिय अधिकारियों को यह जिम्मेदारी सौंपी गई कि वे राशि को सीधे सेना तक पहुंचाएं। 1966 में और उसके बाद (क्रांति के बाद की अवधि) भी ये समस्याएं बनी रहीं। पर्तामीना (राज्य तेल निगम) बेरदिकारी (एक बड़ा व्यापार निगम) और बुलोग (चावल की सरकारी खरीद और बिक्री से संबद्ध) जैसे प्रतिष्ठानों के उच्चतम पद पर जनरलों को नियुक्त किया गया जो संबद्ध विभाग के मंत्री के बजाय सीधे सुहार्तो के प्रति उत्तरदायी थे। यदि वे संबद्ध विभाग के मंत्री के प्रति उत्तरदायी होते तो उन्हें प्रशासनिक नियमों के अंतर्गत कार्य करना होता। ऐसा लगता है कि इन जनरलों का काम सेना के लिए राशि उपलब्ध कराना था। साथ ही स्थानीय सैनिक यूनिटों ने अपनी ओर से अपने लिए राशि जमा करना जारी रखा। जनरलों ने इन गतिविधियों में काफी हद तक चीनी व्यापारियों (त्जूकोंग) के साथ सहयोग किया। इन व्यापारियों के पास व्यापारिक सूझबूझ और पूंजी थी, और ये जनरल उन्हें नौकरशाही तक उनकी पहुंच आसान बना सकते थे। इस प्रकार सभी स्तरों पर जकार्ता से लेकर क्षेत्रीय कस्बों तक सेना और चीनी व्यापारियों के बीच घनिष्ठ संबंध विकसित हो चुके हैं। इससे ऐसे क्षेत्रों में पूंजी लगाने की प्रवृत्ति को बल मिला है जिनमें शीघ्र अधिक लाभ मिलने की आशा है। इसके विपरीत आर्थिक विकास के लिए स्थाई महत्व की लंबी अवधि की योजनाओं में पूंजी लगाने की प्रवृत्ति कम हो गई है।

जब सेना को राज्य के बजट से धनराशि नहीं मिली तो उसके पास अपने ही तरीकों से धन इकट्ठा करने के अलावा कोई और रास्ता नहीं था और इसका एक परिणाम यह

हुआ कि कई सैनिक अधिकारियों को ऐसे पदों पर नियुक्त किया गया जहा वे अपने लिए भी काफी मुनाफा पैदा कर सके। यह भूमिका परपरागत महसूलदार (टैक्स कलेक्टर) जैसी ही है, जो शासक को उसका हिस्सा दे देने के वाद वाकी बची हुई राशि अपने पास रख सकता है। स्वाभाविक है कि सेना के केंद्रीय नेता उन लोगों पर सोच-समझकर अनुशासन का अंकुश लगाते थे, जो उसे काफी धनराशि जमा करके देते थे।[47]

परिधि क्षेत्र में एकता और संघर्ष

व्यापक राजनीतिक प्रणाली पर अपने नियंत्रण का विस्तार करने के प्रयत्नो में सैनिक शासन को मूलत: उसी समस्या का सामना करना पड़ता है जो उससे पूर्ववर्ती नागरिक प्रशासन के समक्ष थी। यह समस्या थी, अत्यंत खडित राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली मे राज्य की सत्ता का विस्तार और दृढीकरण करना लेकिन इस समस्या को हल करने के सैनिक शासन के तरीके कई तरह से अनोखे रहे हैं। कुछ अपवादो को छोड़कर राजनीति के प्रति सदैव संदेहात्मक दृष्टिकोण रखने वाले सत्तारूढ सैनिक विशिष्ट व्यक्ति परिधि क्षेत्र के साथ सीधे सपर्क स्थापित करने के लोभ मे वचते रहे हैं। इससे केंद्र और परिधि के बीच सपर्कों की एक परोक्ष प्रणाली का उदय हुआ है जिसमें अधिकारीतंत्र निर्णय लेने और सरकार की ओर से मिलने वाले लाभों का वितरण करने का प्रमुख साधन वन गया है।

केंद्रीय राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियो को महत्वपूर्ण पदो से जबरदस्ती हटाने से केंद्र सरकार और राजनीतिक परिधि के बीच वे मूल संपर्क टूट जाते हैं जो इन नेताओं और इनके व्यक्तिगत अनुयायियो के बीच थे। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ये लोग नेता नही रहते। इस संबंध में उपलब्ध अत्यंत सीमित शोध कार्य से यह पता चलता है कि वास्तव मे ये संपर्क बने ही रहते है। मैंनिंग नैश द्वारा बर्मा के एक गांव नांद्विन के अध्ययन मे बताया गया है कि स्थानीय राजनीतिक नेताओ ने जनरल ने विन द्वारा ऊ नू को सत्ता से हटा दिए जाने के बाद भी अपने पृथक संबंध ऊ नू के साथ बनाए रखे।[48] यह संपर्क अब राजनीतिक केंद्र के विशिष्ट व्यक्तियों (यानी सत्ता के महत्वपूर्ण पदो वाले व्यक्तियों) और परिधि क्षेत्र के बीच नही, बल्कि उन विशिष्ट व्यक्तियों के बीच रहते हैं जो केंद्र से अलग कर दिए गए हैं या कई मामलों में केंद्र के विरोधी हैं।

जिन मामलो मे सत्तारूढ सैनिक विशिष्ट व्यक्तियों ने परिधि के साथ संपर्क विकसित करने के प्रयत्न किए हैं वहा कई अपवादों को छोड़कर मुख्यत: वे विफल रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि उन्होने बड़े अस्पष्ट अथवा संदिग्ध और

अक्सर परस्पर विरोधी ढंग से ये संपर्क स्थापित करने के प्रयत्न किए। इसके ज्वलंत उदाहरण वे राजनीतिक पार्टिया हैं जिन्हें सैनिक प्रशासनो ने स्थापित करने की कोशिश की। इन पार्टियो के गठन का बाह्य उद्देश्य तो जनसमर्थन जुटाना और कुछ मामलों में सेना के अलावा अन्य लोगो की ओर से शासन के लिए समर्थन का आधार तैयार करना है, लेकिन जैसा पहले कहा जा चुका है, उनके ये प्रयत्न शुरू से ही इसलिए संकट में पड़ गए *क्योंकि सैनिक विशिष्ट व्यक्ति इस तरह की पार्टियो को* शासन में कोई वास्तविक भूमिका नही निभाने देना चाहते।

सरकार द्वारा चलाई गई इन पार्टियों को न केवल शासन मे निर्णय लेने के काम से अलग रखा जाता है, और इस प्रकार परिधि मे विशिष्ट व्यक्तियो और दलो की पहुंच केंद्र तक बनाने के माध्यम के रूप मे उनकी कोई उपयोगिता नही रहती, बल्कि राजनीतिक पार्टी के रूप मे उनके क्रियाकलाप भी सीमित रहते हैं। यह सच है कि सरकारी साधनों का विस्तार समर्थन जुटाने या कभी कभी जबर्दस्ती समर्थन लेने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए इंडोनेशिया मे :

> गालूर उपजिले मे 'गोलकार' का अध्यक्ष एक स्थानीय सैनिक कमांडर था, और सात गाव मे से हर एक · · · मे सेना का कोई वरिष्ठ व्यक्ति या अर्धसैनिक अधिकारी *'गोलकार' का उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया था* · · , सेना ने छिपे हथियारो की खोज के लिए विपक्ष के प्रमुख पार्टी नेताओ के मकानों की तलाशी ली। यह कार्यवाही चुनावों मे ठीक पहले की गई, और सारे उपजिले मे मतदान केंद्रों पर सेना तैनात कर दी गई और गिरफ्तारियो की अफवाहे फैल गई · · · गालूर के मतदाताओं को 'गोलकार' के खिलाफ वोट देने के लिए बहुत साहस की आवश्यकता थी।[49]

लेकिन जनसमर्थन प्राप्त कर लेने या जबरदस्ती इसे जुटाने के बाद सरकारी पार्टिया परिधि क्षेत्रो मे विभिन्न व्यक्तियो और दलों को सरकारी लाभ पहुचाने का माध्यम नहीं रहती। इंडोनेशिया सरकार ने गोलकार को एक राजनीतिक पार्टी के रूप में विकसित करने का फैसला किया तो उसने सभी सरकारी और ग्रामीण अधिकारियों को पार्टी मे शामिल होने या नौकरी छोड देने के लिए बाध्य किया। लेकिन ऐसा *प्रतीत होता है कि इसके पीछे पार्टी को दृढ बनाने का उद्देश्य नही था बल्कि लक्ष्य यह* था कि ये अधिकारी जिनमे से अधिकाश विपक्षी पार्टियो के समर्थक थे, विपक्षी पार्टियों को मदद करने के लिए अपने पदो का उपयोग न कर सकें। मिस्र मे सरकार की ओर से बनाई गई विभिन्न पार्टियो को, केवल जनसहयोग और समर्थन प्राप्त करने के लिए उपयोग मे लाया गया, अन्य किसी काम के लिए नही।[50] दूसरे शब्दो मे, सरकार द्वारा

गठित पार्टियां पूर्ववर्ती नागरिक शासनों की तुलना में कहीं अधिक आंतरायिक (इंटर मिटेंट) थीं, कम से कम परिधि क्षेत्र को साधन उपलब्ध कराने की दृष्टि से।

इन अपेक्षाकृत अप्रभावशाली पार्टियों की स्थापना के अलावा सत्ताधारी सैनिक विशिष्ट व्यक्ति, परिधि क्षेत्र के साथ संपर्क स्थापित नहीं कर पाए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये नेता बड़े बड़े अलंकारपूर्ण भाषणों और प्रतीकात्मक बातों द्वारा जनमत जुटाने को बहुत अधिक महत्व देते हैं। नासिर ने अपने शासन को बनाए रखने के लिए जो मतसंग्रह और रैलियां कराईं उनके बारे में सभी जानते हैं। इसी तरह अन्य सैनिक शासकों, जैसे पार्क चुंग ही, अयूब खान और मोबुतू ने भी अपनी जनता के साथ पुरसैनी संपर्कों पर ही विशेष बल दिया। लेकिन नासिर को छोड़कर इनमें से बाकी कुछ ही नेता ऐसे थे जिन्होंने व्यापक और लोकप्रिय समर्थन प्राप्त किया।

सैनिक नेतृत्व वाली राजनीतिक प्रणाली में केंद्र और परिधि क्षेत्र के बीच मूल संपर्कों का केंद्रबिंदु सैनिक परिषद नहीं प्रतीत होती। सेना द्वारा सत्ता संभालने के बाद आम तौर पर अधिकारीतंत्र का जो विस्तार होता है और विशेषज्ञों पर सेना की निर्भरता हो जाती है, उससे अधिकारीतंत्र के अंदर ही निर्णय लेने के प्रमुख साधनों को निश्चित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप केंद्र और परिधि के परस्पर आदान-प्रदान के संबंध (संरक्षक-संरक्षित संबंध आदि), नागरिक और सैनिक अधिकारीतंत्र में महत्वपूर्ण पदों पर आरूढ़ व्यक्तियों और उनके व्यक्तिगत साथियों तथा अनुयायियों के बीच के संबंधों के संदर्भ में सुनिश्चित होते हैं। मूर ने अल्जीरिया के अपने अध्ययन और आधुनिक मिस्र के संस्थात्मक जीवन पर हाल में जो विचार व्यक्त किए हैं, उनमें इस प्रक्रिया का विवरण है।[51] जैसा पाकिस्तान में बेसिक डेमोक्रेसीज प्रणाली के प्रभावों से संबद्ध उद्धरण में कहा गया है, अधिकारीतंत्र, साधनों और उनके वितरण पर अपना नियंत्रण बढ़ाता चला जाता है।

इस प्रकार सैनिक शासकों के आपसी संपर्क और परिधि क्षेत्र के साथ उनके संपर्क सीमित या अधिक से अधिक परोक्ष प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के परोक्ष संबंध अस्थिरता पैदा न भी करें तो इस बात की संभावना तो है ही कि राजनीतिक केंद्र में पहले से सक्रिय विकेंद्रीकरण की प्रवृत्तियां और जोर पकड़ लेंगी।

अंत में एक और बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। सेना के प्रभुत्व वाली राजनीतिक प्रणाली में सांप्रदायिक भावनाओं के बारे में यद्यपि बहुत कम आंकड़े और जानकारी उपलब्ध है, फिर भी ऐसा लगता है कि इन प्रणालियों में राजनीतिक समूहीकरण के लिए कोई ढांचा न होने के कारण विभिन्न मांगें पृथक रूप में होती हैं। इसके

अलावा चूंकि आधुनिक स्वयंसेवी संस्थाओ पर या तो पूर्ण प्रतिवध लगा होता है या उनकी गतिविधियों पर कड़ा अंकुश होता है इसलिए इस प्रकार की मांगे फिरसे परंपरागत बातों को लेकर होती हैं। दूसरे शब्दों मे, मागे रखने के प्रमुख सस्थात्मक साधन बनते हैं, जातीय और वंशानुगत सामाजिक ढाचे। यह बात ऋास ने घाना के सबंध मे विशेष रूप से कही है और आड्रीस्माक ने नाईजीरिया की ईबो यूनियनो के अध्ययन मे भी इसका उल्लेख किया है।[52] राबर्ट पिकंनी ने घाना की 1966 की सैनिक क्रांति के बाद के सक्षिप्त अध्ययन मे परंपरागत ढाचो का महत्व बने रहने का एक और कारण बताया है। चूंकि सेना के लिए जनसमर्थन का नाममात्र का आधार भी नही होता इसलिए सैनिक सरकार और उसके द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में एकमात्र राजनीतिक मंच, परपरागत भावनाओं के कारण प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा ही उपलब्ध होता है।[53] सैनिक शासनों से संबद्ध सूचनाओ के बारे मे बार बार यह कहा जा रहा है कि सूचनाए बहुत कम मिल रही है इसी से स्पष्ट है कि इस तरह के शासनों के संबंध मे निष्कर्ष भी अनिवार्य रूप से अस्थाई ही होगे जिन्हें अंतिम नहीं माना जा सकता। लेकिन ऐसा लगता है कि राजनीति को दूर रखकर इस प्रकार के शासन, अल्पविकसित राजनीतिक प्रणाली का और अधिक विखंडन कर देते हैं। सशस्त्र सेनाओं का समर्थन प्राप्त होने पर कोई भी सैनिक सरकार अपने शासनकाल के प्रति निश्चित हो सकती है, लेकिन इस तरह का समर्थन आम तौर पर अल्पकालिक होता है। जहा यह समर्थन निश्चित रूप से प्राप्त है वहां भी शासनकाल में कोई वास्तविक सत्ता नही बनी है और जिस निश्चित ढग से सैनिक शासन चलाए जाते हैं उससे यह प्रतीत होता है कि सत्ता से एक ऐसी प्रक्रिया आरंभ होती है जिसमें राजनीतिक प्रणाली के सामंतवादी बन जाने की सभावना होती है। राजनीतिक दृढीकरण और शासन चलाने की क्षमता दोनो ही सैनिक नेताओं के लिए भी उतने ही अग्राह्य बन जाने की संभावना होती है, जितने कि वे असैनिक शासको के लिए थे।

संदर्भ

1. जोसेफ मोबुतु, जेरे के राष्ट्रपति का भाषण, 12 दिसबर 1965 जे० सी० विल्लेम पैट्रिमोनियनिज्म ऐंड पालिटिकल चेंज इन कागो (स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972), पृ० 132 में उद्धृत

2 क्लाड वैल्च, जूनियर. दि अफ्रीकन मिलिटरी ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट, हेनरी बिएनन (सपादित) · दि मिलिटरी ऐंड माडर्नाइजेशन (शिकागो ऐल्डाईन-ऐथर्टन, 1971), पृ० 213.

3 'पृथक औद्योगिक अस्तित्व की विशेषताओं के विवरण के लिए देखिए, लूसियन डब्ल्यू० पाई': 'आर्मीज इन दि प्रोसेस आफ पालिटिकल माडर्नाइजेशन', जान जे० जानसन (सपादित) : दि रोल आफ मिलिटरी इन अडरडेवलप्ड कंट्रीज, (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962), पृ० 76.

4. डंक्वार्ट ए० रस्तोव : ए वर्ल्ड आफ नेशंस : प्राब्लम्स आफ पालिटिकल माडर्नाइजेशन (वाशिंगटन डी० सी० : दि ब्रुकिंग्स इस्टीच्यूशन, 1967), पृ० 187.
5. ऐन रुथ लिनर : 'पर्सपेक्टिव्ज आन मिलिटरी एलीट्स ऐज रूलर्स ऐंड वील्डर्स आफ पावर, 'जर्नल आफ कपेरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन 2' (1970), 262.
6 एम० डी० फेल्ड. *'प्रोफेशनलिज्म, नेशनलिज्म ऐंड दि एलियनेशन आफ दि मिलिटरी'*, याक वान डूर्न (सपादित) : आर्म्ड फोर्सिज ऐंड सोसायटी (दि हेग . माऊटन ऐंड कपनी, 1966), पृ० 68
7. एरिस्टिड जोलबर्ग *'मिलिटरी इटरवेंशन इन दि न्यू स्टेट्स आफ ट्रापिकल अफ्रीका'* हेनरी बिएनन (सपादित) : दि मिलिटरी इटरवीस (न्यूयार्क रसल सेज फाऊडेशन, 1968), पृ० 87
8. *उदाहरण के लिए देखें जेम्स हीकी 'दि आर्गेनाइजेशन आफ ईजिप्ट . इनएडीक्वेसीज आफ* ए नान पालिटिकल माडल फार नेशन बिल्डिंग', वर्ल्ड पालिटिक्स, XVII, 2 (1966), पृ० 177-183.
9. *पार्क चुग-ही, दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति, उदाहरण के लिए देखिए जान काई-चाग ओह कोरिया :* डेमोक्रेसी आन ट्रायल (इथाका कोर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), पृ० 134.
10 निर्वाचित सस्था (अयोग्यता) आदेश यानी इलैक्टिव बाडीज (डिसक्वालिफिकेशन) आर्डर के ब्यौरे के लिए देखिए, पाकिस्तान सरकार दि गजट आफ पाकिस्तान, (एक्स्ट्राआर्डिनरी), अगस्त 1959 दक्षिण कोरियाई कानून और इसके प्रभावो के बारे में देखिए, जान काई-चाग ओह, पृ० *138-141*
11 एम० जे० डैंट 'दि मिलिटरी ऐंड दि पालिटीशियन', एम० के० पैटरब्रिक (सपादित) नाईजीरियन पालिटिक्स ऐंड मिलिटरी रूल प्रिल्यूड टु सिविल वार (लदन : ऐथिलोन प्रेस, 1970), पृ० *82-83.*
12. बेसिक डेमोक्रेसीज प्रणाली के बारे में देखिए पाकिस्तान सरकार 'दि बेसिक डेमोक्रेसीज आर्डर 1959', दि गजट आफ पाकिस्तान, अक्तूबर 1959 इस प्रणाली के सबंध में विचारो के लिए देखिए, *कार्ल वान वोरीज · पालिटिकल डेवलपमेंट इन पाकिस्तान, (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन* यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965), पृ० *196-207.*
13 हैरल्ड काउच . 'मिलिटरी पालिटिक्स अडर इडोनेशियाज न्यू आर्डर', पैसिफिक अफेयर्स, *XLV, 2 (1972), 214-215*
14. देखिए सांविधानिक समिति की रिपोर्ट, अकरा, 1968.
15. जैड० ए० सुलेरी : प्रधान सपादक, पाकिस्तान टाइम्स, लारेंस जाइरिग · दि अयूब इयर्स *(सिराक्यूज : सिराक्यूज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970) में पृष्ठ 11 पर उद्धृत.*
16 हीकी, पृ० *187.*
17. नूर सलमान · 'इटरवेंशन ऐंड एक्स्ट्रीकेशन . दि आफिसर कोर इन दि टर्किश क्राइसिस', बिएनन, पृ० *134-135* पर.
18. रस्तोव, पृ० 189.
19. मुहम्मद अयूब खान : फ्रैंड्स, नाट मास्टर्स (लदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967), पृ० 77.

20 एडवर्ड फीट : 'मिलिटरी कूंज ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट', वर्ल्ड पालिटिक्स, XX, (1968), 188.

21. इन समितियों में बहुत थोड़े से राजनीतिक विशिष्ट व्यक्तियो को लिया गया देखिए नीचे

22. जाइरिंग, पृ० 12-13

23. क्राऊच, पृ० 213.

24. यह तर्क, क्लाड वैल्च के मत से भिन्न है वैल्च का कहना है कि सेना द्वारा स्वय को शासन के सचालन कार्य से हटा लेना या तो इस बात का परिणाम है कि सैनिक प्रशासन परिषद में एक ऐसे सैनिक गुट का बोलबाला हो जाता है जो *'नागरिक की सर्वोच्च सत्ता का आदर', करता है*, या फिर इसका दूसरा कारण हो सकता है सैनिक शासन का 'नागरीकरण', अर्थात सत्तारूढ सैनिक विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा सेना से त्यागपत्र दे देना 1960 की क्रांति के तुरत बाद के तुर्की, और अन्य स्थानों पर कुछ एक सैनिक विशिष्ट व्यक्तियो के सभावित अपवादों को छोड दें तो इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि 'नागरिक की सर्वोच्च सत्ता का आदर' व्यापक रूप से है यदि सेना स्वय को शासन कार्य से अलग करती है तो सभवत इसलिए कि वह इस बात को समझती है कि वह वास्तव में स्थिति को नियत्रण मे नही रख सकती लेकिन वैल्च ने जो दूसरा *विकल्प बताया है उसमें वर्दी उतारकर सामान्य कपडे पहन लेने को, शासन का परिवर्तन मान* लेने की गलती की गई है इन 'नागरीकृत' शासनो के अदर सैनिक शासन की यह विशेषता विद्यमान रहती है कि सत्ता में बने रहने के लिए वे सेना पर बराबर निर्भर करते हैं। 'नागरीकरण' का सबध, राजनीतिक केंद्र और परिधि पर हावी होने के उद्देश्य से बनाई जाने वाली व्यवस्था से तो है ही इसलिए यह शासन कार्य मे हटने का नहीं बल्कि अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न है।

25 अस्थाई क्रातियो, जिनमें सेना एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है (पचायत क्राति या रैफरी कू), और अत्यत स्थाई परिणामो वाली क्रातियो (सेना द्वारा सत्ता सभाल लेना) के बीच विभेद करना अब एक परपरा सी बन गई है। लेकिन वास्तव में इन दोनों के बीच विभेद करना कठिन हो सकता है। सैनिक विशिष्ट व्यक्ति, राजनीतिक प्रणाली को बिल्कुल बदल देने के इरादे से हस्तक्षेप कर सकते हैं लेकिन फिर पीछे हट सकते हैं क्योकि यह परिवर्तन लाने में वे स्वय को, असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार की क्राति को प्रेक्षकगण पचायत क्राति समझ सकते है लेकिन इसका वास्तविक लक्ष्य मध्यस्थता करना नही था. साराश यह है कि क्रातियो की भिन्नता पहचानने के लिए हस्तक्षेप करने वाले सैनिक विशिष्ट व्यक्तियो के इरादे अत्यत महत्वपूर्ण है जिन्हें समझना आम तौर पर कठिन है

26 से-जिन किम : दि पालिटिक्स आफ मिलिटरी रिवाल्यूशन इन कोरिया, (चैपल हिल : यूनिवर्सिटी आफ कैरोलीना प्रेस, 1971), पृ० 155

27. वही, पृ० 156.

28 देखिए, उल्फ सुदामेन : 'दि फंक्शनिंग आफ यूनिटी इन दि इडोनेशियन आर्मी,' एशिया क्वार्टर्ली (ब्रसेल्स, 1971–72); और ऐन ग्रेगरी 'फैक्शनलिज्म इन दि इडोनेशिया आर्मी,' जर्नल आफ कपेरेटिव ऐडमिनिस्ट्रेशन, II, 3 (नवंबर 1970), 341-354 इडोनेशियाई सेना की कमाड में परिवर्तन सबधी सामग्री के लिए देखिए, इडोनेशिया (कोर्नेल माडर्न इडोनेशिया प्रोजेक्ट) (अप्रैल, 1967) 205-216. IV (अक्तूबर 1967), 227-229; VII (अप्रैल) 1969), 195-201; X (अक्तूबर 1970), 195-208.

29. ग्रेगरी, पृ० 349-350
30 ऐसे एक प्रयत्न के लिए देखिए, ऐलन ए० सैममन 'आर्मी ऐंड इस्लाम इन इंडोनेशिया,' पैसिफिक अफेयर्स, XLIV, 4 (1971-1972), 545-565
31 मुस्लिम लीग के बारे में देखिए, वान वोरीज, पृ० 255-259 डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी के संबंध में देखिए, सी० आई० यूजीन किम : इंस्टीच्यूशन बिल्डिंग ऐंड एडेप्टेशन 'दि केस आफ दि डी० आर० पी० इन साउथ कोरिया,' वाशिंगटन डी० सी० में अमरीकन पालिटिकल सायंस एसोसिएशन की 1972 की वार्षिक बैठक में पढ़ा गया निबंध, मिस्र की पार्टियों के लिए देखिए लियोनार्ड बिंडर 'पालिटिकल रिक्रूटमेंट ऐंड पार्टीसिपेशन इन इजिप्ट,' जोजफ ला पैलोंवरा और मायरन वीनर (संपादित) पालिटिकल पार्टीज ऐंड पालिटिकल डेवलपमेंट (प्रिंस्टन प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966), पृ० 217-240 पर.
32 इलिया एफ० हैरिक 'मोबिलाईजेशन पालिसी ऐंड पालिटिकल चेंज इन रूरल इजिप्ट,' रिचर्ड एंटून और इलिया हैरिक (संपादित) रूरल पालिटिक्स ऐंड सोशल चेंज इन दि मिडिल ईस्ट (ब्लूमिंगटन इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972), पृ० 293 पर
33 इन-युग वाग 'लीडरशिप ऐंड आर्गेनाइजेशनल डेवलपमेंट इन दि इकोनामिक मिनिस्ट्रीज आफ दि कोरियन गवर्नमेंट,' एशियन सर्वे, XI, 10 (1971), 992-1004
34 वान वोरीज, पृ० 203-204
35 राबर्ट पिन्नी घाना अंडर मिलिटरी रूल, 1966-1969, (लंदन मैथ्यून ऐंड को० लिमिटेड, 1972) पृ० 77. जून 1967 में 14 नागरिक आयुक्त नियुक्त किए गए थे इन लोगों ने, नेशनल लिबरेशन काउंसिल के बाकी सदस्यों के साथ मिलकर नई राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति में काम किया इस समिति पर घाना सरकार का सामान्य कामकाज चलाने का उत्तरदायित्व था
36 वही
37 मिस्र के अधिकारीतंत्र के बारे में देखिए, मोरो बर्जर ब्यूरोक्रेसी ऐंड सोसायटी इन माडर्न इजिप्ट, (प्रिंस्टन प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957)
38 शाहिद जावेद बर्की 'ट्वेंटी ईयर्स आफ सिविल सर्विस आफ पाकिस्तान ए रिवाल्यूएशन', एशियन सर्वे, IX, 4 (1969), 247.
39 वही, पृ० 248
40 वही
41 जीन क्लाड विल्लेम 'कांगो-किनशासा जनरल मोबुतू ऐंड टु पालिटिकल जेनरेशंस,' वेल्च, पृ० 144-145 पर
42. वही
43 जे० सी० विल्लेम पैट्रीमोनियालिज्म ऐंड पालिटिकल चेंज इन दि कांगो (स्टैनफोर्ड स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972), पृ० 135-136
44 देखिए, आर० ह्रेयर डेकमेजियन इजिप्ट अंडर नासिर (अलबानी न्यूयार्क : स्टेट यूनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क प्रेस, 1971).
45. से-जिन किम, पृ० 9-10
46 वही, पृ० 250.

47. ब्राऊच, पृ० 217.
48. मैनिंग नैश : दि गोल्डन रोड टु माडर्निटी (न्यूयार्क जान वाईली ऐंड सन, 1965) पृ० 87-89
49. आर० विलियन लिडिल 'दि 1971 इडोनेशियन इलैक्शस ए व्यू फ्राम दि विलेज,' एशिया, न० 27 (1972), 14
50. लियोनार्ड बिंडर ईरान . पालिटिकल डेवलपमेंट इन ए चेंजिग सोसायटी (बर्कले ऐंड लास एंजिलस यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोनिया प्रेस, 1964) पृ० 218-221, 229-232, 238-240
51. क्लीमेंट एच० मूर० पालिटिक्स इन नार्थ अफ्रीका (बोस्टन लिटिल ब्राऊन ऐंड कपनी' |1970); और वाशिंगटन डी० सी० में अमरीकन पालिटिकल सायस एसोसिएशन की 1972 की वार्षिक बैठक में पढ़ा गया उनका ही निबंध, 'आथारिटेरियन पालिटिक्स इन अनइनकार्पोरेटेड सोसायटी एक केस आफ नासिर्स इजिप्ट.
52. ब्राम, पृ० 204, और आड्री सी० स्माक इबो पालिटिक्स, (कैंब्रिज, मैसाच्यूसेट्स : हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971), पृ० X
53. पिकनी, पृ० 27

6

निष्कर्ष

> अल्प विकास एक भयकर स्थिति है : गदगी, बीमारी, अनावश्यक मृत्यु और यह सारी निराशाजनक स्थिति। "आज अल्प विकास के कारण व्यक्तिगत और सामाजिक असहायता की भावना व्याप्त है, विशेषकर बीमारी और मृत्यु के सदर्भ मे। जब कोई व्यक्ति परिवर्तनों को समझने के प्रयास करता है तो उसे केवल अव्यवस्था और अनिश्चितता तथा अज्ञान का हीनभाव महसूस होता है। उसे ऐसा लगता है कि वह उन व्यक्तियों के सामने बिल्कुल निरीह प्राणी है जिनके निर्णयो से घटनाक्रम संचालित होते हैं। वह भूख और दैवी प्रकोप के समक्ष स्वयं को अत्यत दुर्बल और अकिंचन पाता है। चिरकालिक गरीबी एक अत्यत क्रूर नर्क है...।[1]
>
> —डेनिस गूले

राजनीति के अध्ययन मे कई शताब्दियो से एक ही समस्या बनी रही है। वह समस्या है राजनीतिक दृढीकरण और शासन के लिए पर्याप्त सत्ता जुटाने की। इसके बावजूद यह समस्या तुलनात्मक राजनीति के समकालीन अध्येताओं के लिए आश्चर्यजनक कठिनाइयों मे भरी हुई है। किसी हद तक इसे, जैसा डब्ल्यू० हावर्ड *रिगिस ने कहा है, आधुनिक विद्वान की इस प्रवृत्ति का परिणाम माना जा सकता* है कि 'जैसे जैसे आदर्श अधिक अमूर्त और सूक्ष्म बनते जाते है वैसे वैसे राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के श्रमसाध्य और विवादास्पद मामलो को विचार की परिधि से बाहर रखा जाए।'[2]

लेकिन इससे भी अधिक, 'श्रमसाध्य और विवादास्पद' मामलो के प्रति हाल की

इस अरुचि का कारण, अल्पविकसित राज्य के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण मे ही देखा जा सकता है। आज के राजनीतिशास्त्र के वैज्ञानिक मुख्यत. राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करने मे ही लगे हुए है और ये वैज्ञानिक, जैसा एक विद्वान ने कहा है, 'प्राक विकास' को 'विकास' समझने लगे है, यानी एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली का सृजन करने की समस्या जो इस प्रणाली को आधुनिक विश्व की जटिलताओं के अनुसार ढालने की समस्या के बिल्कुल विपरीत है।[3]

हालांकि इन दो समस्याओं के बीच भेद करने के कुछ प्रयत्न किए गए है, (उदाहरण के लिए आलमंड और पावेल का, राज्य निर्माण के विपरीत राष्ट्रनिर्माण का सिद्धांत)[4]। फिर भी चूकि ये दोनों समस्याएं आम तौर पर अफ्रीका और एशिया के राज्यों पर एक साथ थोपी गई है, इसलिए इन लोगों ने इन समस्याओं को एक दूसरे से इतनी जुड़ी हुई मान लिया है, कि इन्हे अविभाज्य समझा जाने लगा।

प्राक विकास या अल्प विकास की राजनीति को विकास की राजनीति समझने के कारण विद्वानों ने यह मान लिया है कि अल्पविकसित राज्यो के सामने प्रमुख समस्या, किसी राज्य का शासन चलाने के लिए गठित कुछ निश्चित राजनीतिक संस्थाओं को वैधता प्रदान करने की है।[5] जहा इन समाजों मे राजनीतिक संस्थाए मूलतः वाह्य प्रभाव से आई वहां मुख्य प्रयत्न यही रहा है कि उस प्रक्रिया को समझा जाए जिसके द्वारा ये विदेशी संस्थाए पुनर्गठित हुई और इन्हे नई परिस्थितियो और वातावरण मे वैधता मिली। जिन तरीको से ऐसी सस्थाओ को वैध बनाया जा सकता है, परंपरा, करिश्मा, विधिसम्मत तार्किकता, सैद्धांतिक विचारधारा, उन्ही पर विश्लेपणात्मक ध्यान दिया जा रहा है। इसी मे निहित यह तर्क है कि वैधता का मतलब है प्रभावशीलता या, यदि एक पुराने मुहावरे को उलट दिया जाए तो इसका मतलब होगा, अधिकार से शक्ति बनती है अर्थात जिसकी भैंस उसकी लाठी।[6]

> कार्य का स्तर ऊचा उठाने के काम में नेतृत्व के अत्यधिक महत्व की जब चर्चा की जाती है तो हम राष्ट्रीय विकास के काम मे सत्ता के महत्व की ओर संकेत करते है। यदि नेताओ को जनता को प्रेरित करना है और समाज को कार्य के उच्च स्तर की ओर अग्रसर करना है तो उनकी कथनी और करनी में वैधता की झलक मिलनी चाहिए। यदि लोगों को शासक वर्ग के कार्यो से संतोप उपलब्ध कराना है तो उन्हे पहले यह पूरी तरह मे मान लेना चाहिए कि राजनीतिक प्रणाली मे निहित कार्य नए तरीकों से किए जाने हैं। संक्षेप में हम यही कहेंगे कि यदि शासक वर्ग को अपने पृथक अस्तित्व के संकट को

और अधिक प्रभावशाली सरकारी कार्यों और राजनीतिक क्षमताओं का स्तर, ऊंचा करके हल करना है तो उसे वैधता संबंधी मामलों को भी सुलझाना होगा।[7]

हाल के इतिहास ने इस प्रकार के विश्लेपण को अपरिपक्व सिद्ध किया है। कई राज्यों मे, जैसा वहा की बार बार की अस्थिरता से पता चलता है, नेताओं का कोई एक दल, राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणालियों पर प्रारंभिक नियंत्रण को भी सफलतापूर्वक सुदृढ नही कर पाया है और शासन चलाने के अपने वैध अधिकार को तो वे स्थापित कर ही नही सके। जहां सरकार की नई संस्थाओं ने कुछ हद तक वैधता और जन-समर्थन प्राप्त किया है वहा भी वे बहुत सीमित रूप से प्रभावकारी हो सके हैं, चाहे इन नेताओं का अपना व्यक्तित्व या उनकी विभिन्न नीतियां कितनी ही आकर्षक क्यों न रही हों।[8] राजनीतिक प्रक्रिया का विखंडन बराबर होता जा रहा है, जिससे इन राज्यों में राजनीतिक दृढीकरण एक स्वप्नमात्र बना हुआ है।

यहा यह नही कहा जा रहा कि अल्पविकसित राज्यों का अध्ययन करते हुए हम *उस पुराने युग में पहुंच जाए जिसमें इन राज्यों मे सब ओर राष्ट्रीयविघटन का बोल-बाला था।*[9] वास्तव में स्थिति इसके विपरीत प्रतीत होती है। यदि इन राज्यों मे से अधिकाश मे सामाजिक एकता नही लाई जा सकी है और 'पृथक अस्तित्व का संकट' उस सीमा तक नहीं सुलझाया जा सका है, जितना विद्वान लोग आवश्यक समझते हैं, तो इस बात को स्वीकार करना होगा कि अब असली समस्या इन राष्ट्र-राज्यों के पृथक अस्तित्व की नही है, (वैसे कुछ उल्लेखनीय अपवाद भी हैं)। लेकिन यह बात भी माननी होगी कि इन राज्यों मे राष्ट्रीय विशिष्ट व्यक्तियो के बीच केंद्रीय संघर्ष, इस सवाल को लेकर उठे हैं कि राज्य के शासन पर किसका नियंत्रण होगा और उसके लक्ष्य कौन निर्धारित करेगा। ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय विशिष्ट व्यक्तियो का कोई एक दल इतनी शक्ति नहीं जुटा पाया है कि वह राज्य की शासन प्रणाली पर अपना प्रभावशाली नियंत्रण रख सके।

इन सब बातों मे एक बार फिर वैधता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। राजनीतिक संस्थाओं की किसी प्रणाली के लिए वैधता के स्रोत चाहे ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और करिश्मे वाले रहे हों, लेकिन इन संस्थाओं को अंत में इसी बात से परखा जाएगा कि उनमें समाज की जनता की आकाक्षाओं को पूरा करने की कितनी क्षमता है। अल्पविकसित राज्यों में वैधता के संकट के मूल में राजनीतिक दृढीकरण का संकट है। प्रभावशाली ढंग से शासन चलाने की शक्ति प्राप्त करना एक अप्राप्य बात बनी हुई है।

समाजशास्त्र के वैज्ञानिकों के लिए प्रारंभ में जो बात एक समस्या थी अब वरदान समझी जा रही है। 1960 के दशक के मध्य मे जब इन राजनीतिक प्रणालियों के बारे मे और अधिक जानकारी प्राप्त हुई तो इन प्रणालियों के पहले वाले आदर्श खत्म हो गए, और उनका स्थान नए आदर्शो ने लिया, जिनमें यह माना गया कि अत्यंत एकस्तंभीय और सैद्धांतिक विचारधारा वाले शासन में भी सत्ता एक अग्राह्य लक्ष्य बनी रहती है। पुरानी प्रणालियां जनसमर्थन बनाम समझौता शासन, आमूल परिवर्तन बनाम रूढिवादी शासन आदि के आदर्शो पर आधारित थी। नए आदर्शों का एक उदाहरण है राजनीतिक व्यवस्था का सिद्धात। इस सिद्धात पर आधारित आदर्श कई विद्वानो के लिए एक निराशाजनक वास्तविकता सिद्ध हुआ, क्योंकि उन्हें आशा थी कि अल्पविकसित देश लोकतंत्र और आधुनिकीकरण की ओर तेजी से प्रगति करेंगे। अंतत. इस नई व्यवस्था के कारण नया लेकिन सतर्कतापूर्ण आशावाद उपजा। राजनीतिशास्त्र के कुछ वैज्ञानिक नई प्रणालियो की क्षमता के बारे मे न तो उत्साही थे और न ही निराश। फिर भी उन्होंने तर्क दिया कि इन राजनीतिक प्रणालियों से कुछ स्थिरता और राजनीतिक विकास किया जा सकेगा। रजनी कोठारी, मायरन वीनर और जेम्स सी० स्काट ने ऐसी प्रणालियो के खुले स्वरूप और स्थानीय दबावो को ग्रहण करने की उनकी क्षमता पर बल दिया है।[10] वीनर ने भारत की कांग्रेस पार्टी पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि स्थानीय दबावों को ग्रहण करने की इसी क्षमता के कारण, कांग्रेस के प्रभुत्व वाली राजनीतिक प्रणाली 'आधुनिकीकरण की प्रक्रिया मे उपजे तनावों को कम करने' की विशेष क्षमता रखती है।[11] हेनरी बिएनन का कहना है कि इन नई मशीनी प्रणालियों की विशेषता है, विकेंद्रीकरण, और ये प्रणालियां प्रभावशाली स्थानीय राजनीतिक संस्थाओं का सृजन करा सकी हैं।[12] जोलबर्ग का मत है :

> इस तरह का शासन सरल और कारगर नही है; इसमें गौरव की भावना नहीं है और यह निश्चित नहीं है कि मानव की परिस्थितियो में तुरंत ही कोई आमूल परिवर्तन होगा। लेकिन यह पश्चिम अफ्रीका मे मफलतापूर्वक चली है। यह वास्तव में लोकतांत्रिक नही है, लेकिन इसमें व्यर्थ की क्रूरता और अत्याचार नही होने दिया जाता। इसके अलावा यह प्रणाली अनुकरण और आत्मसंदेह के भारी बोझ से मुक्ति दिलाने मे सहायक हो सकती है। इसी बोझ से अफ्रीकी जनता लंबे अरसे से दबी चली आ रही है। अब यह जनता इस प्रणाली के कारण, स्वशासन की अपनी क्षमता मे फिर से विश्वास प्राप्त कर पाएगी।[13]

अल्पविकसित राज्यों की राजनीति के संक्षिप्त अध्ययन से पता चलता है कि आदर्श शासन व्यवस्था की स्वच्छता और सुगठन तथा इस व्यवस्था के प्रति सतर्कता-

पूर्ण आशावाद के बारे में कुछ बढ़ा-चढाकर ही कहा गया है। राजनीतिक केंद्र में किसी तरह का सुगठन और एकता स्थापित करना अत्यंत कठिन सिद्ध हुआ है और वहां सत्ता का दृढीकरण करने की तो बात ही और है। राजनीतिक केंद्र मे अलग अलग खड अथवा विभाजन बने रहते हैं। विभिन्न राज्यो के नेताओ को, पृथक गुटो को मिलाकर सयुक्त सरकारे बनाने और उनका सचालन करने की आवश्यकता रही है। केंद्रीकरण के सीमित साधन होने के कारण इस प्रकार की सरकारो मे परस्पर आदान-प्रदान के संबंधो के टूटने की हर समय ही आशका बनी रही है। इसके अलावा केंद्र की जटिलता, और नेताओ के केंद्रीकरण के सीमित साधनों पर बोझ उसी अनुपात में बढता गया है जिस गति से सरकारी कामकाज के क्षेत्र का विस्तार हुआ है। इस तरह की वृद्धि से केंद्र मे सत्ता की भूमिकाओं की संख्या और पुश्तैनी सत्ता बनाने की क्षमता दोनो का विस्तार होता है। इस प्रणाली को किसी एक व्यवस्था के समान इतना नही माना जाएगा जितना बहुत सारी ऐसी व्यवस्थाओं के समान समझा जाएगा जो अक्सर एक दूसरे के साथ होड लगाती रहती हैं। इसका व्यावहारिक परिणाम यह हुआ है कि सत्ता और अधिक खडित हुई है और राजनीतिक दृढीकरण अधिक अप्राप्य हो गया है।

अतत यह प्रश्न अवश्य पूछा जाना चाहिए कि इस प्रकार की राजनीतिक प्रणाली वास्तव मे कितनी 'अक्रूर' है। यह सच है कि दबाव डालकर काम कराने की इसकी क्षमता न्यूनतम है। अपने नागरिको की आकांक्षाए पूरी करने की इसकी क्षमता भी उतनी ही कम है। राजनीतिक प्रणाली पर अपने नियंत्रण को सुदृढ करने की विशिष्ट व्यक्तियो के किसी एक वर्ग की असमर्थता गतिहीनता उत्पन्न कर सकती है। सत्ता के अत्यत खडित होने के कारण विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों के वर्गों के सम्मिलन से बनी सरकारों के भी उतने ही गतिहीन रहने की आशंका है।[14] इतना ही नही, बल्कि जहां केंद्र मे काफी सुगठन और एकता होती है वहा भी केंद्र और परिधि के बीच सपर्कों के उतार चढावो के कारण, परिधि की समस्याओं से निपटने की केंद्र की क्षमता भी सीमित होती है। अल्पविकसित राज्यों की अर्थव्यवस्था के दोहरे स्वरूप (विस्तृत हो रहा आधुनिक क्षेत्र और गतिहीन तथा बहुधा बिगडती स्थिति वाला परंपरागत क्षेत्र) के विस्तार से यह समस्या और भी चिंता का विषय बन जाती है, और संपूर्ण आर्थिक विस्तार निरर्थक हो जाता है और राजनीतिक प्रणाली के सामने गंभीर आर्थिक तथा राजनीतिक चुनौतियो की संभावना उठ खडी होती है।[15] स्थानीय सरकारी सस्थाएं भी इसके समुचित विकल्प के रूप मे विकसित नही हो पाई हैं। केंद्रीय प्रशासन के एजेंटो के माध्यम से परिधि क्षेत्र पर अधिकाधिक नियंत्रण रखने के केंद्रीकरण समर्थक विशिष्ट व्यक्तियों के प्रयत्न आम तौर पर सफल नही हुए हैं और इसकी बजाय स्थानीय सस्थाए दुर्बल हो गई हैं।[16] इसके परिणामस्वरूप अल्पविकसित

राज्यो की प्रमुख व्याधि खंडित, बाधित राजनीतिक प्रक्रिया बराबर चलती रहती है। राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति अनुपलब्ध रहती हैं। इसके अभाव में न केवल कोई सरकार अपनी जनता की मानवीय परिस्थितियों को बेहतर बनाने का काम नही कर सकती, बल्कि वह अपने आपको भी नही बचा सकती।

संदर्भ

1. डेनिस गूले · दि क्रुअल चाइस : ए न्यू कासेप्ट इन दि थ्योरी आफ डेवलपमेंट, (न्यूयार्क : एथेनियम, 1973), पृ० 23
2. डब्ल्यू हावर्ड रिंगिंस : दि रूलर्स इंपरेटिव (न्यूयार्क : कोलबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969), पृ० 4.
3. युगवान एनेग्जडर किम 'दि पालिटिक्स आफ प्रिडेवलपमेंट,' कंपेरेटिव पालिटिक्स V, 2 (1973), 213
4. गैब्रील आलमड और जी० बी० पावेल कपेरेटिव पालिटिक्स ए डेवलपमेंटल अप्रोच (बोस्टन · लिटिल, ब्राऊन ऐंड कंपनी, 1966), पृ० 35-36.
5. सैमुअल हटिंगटन पालिटिकल आर्डर इन चेंजिंग स्टेट्स (न्यू हैवन येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), इस मत का सबसे अच्छा उदाहरण है.
6. विशेष रूप से देखिए, डक्वार्ट ए० रस्तोव ए वर्ल्ड आफ नेशस प्राब्लम्स आफ पालिटिकल माडर्नाइजेशन (वाशिंगटन, डी० सी० दि ब्रुकिंग्स इस्टीच्यूशन, 1967), पृ० 157 जहा उन्होंने निम्नलिखित समीकरण सुझाए हैं.

   राजनीतिक स्थिरता = सस्थाओ की वैधता
   + शासको की व्यक्तिगत वैधता
   राजनीतिक वैधता = परपरागत वैधता
   + तार्किक विधि सम्मत वैधता
   + चमत्कारी वैधता
7. लूसियन, डब्ल्यू पाई · 'आइडेंटिटी ऐंड पालिटिकल कल्चर,' लियोनार्ड बिंडर तथा अन्य : क्राइसिस ऐंड सीक्वेंसिज इन पालिटिकल डेवलपमेंट (प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971), पृ० 134.
8. राजनीतिक दृढीकरण की नीतियो के लिए देखिए, रिंगिंस.
9. उदाहरण के लिए देखिए, सेलिग हैरिसन : इडिया . दि डेंजरस डिकेड्स (प्रिंस्टन . प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957).
10. रजनी कोठारी : पालिटिक्स इन इडिया (बोस्टन · लिटिल, ब्राऊन ऐंड कपनी, 1970); मायरन वीनर, पार्टी बिल्डिंग इन ए न्यू नेशन (शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1967); और जैम्स सी० स्काट : कंपेरेटिव पालिटिकल करप्शन (एगलवुड क्लिफ्स एन० जे० प्रेंटिस हाल, 1972)
11. वीनर, पृ० 16.

12. हेनरी बिएनन : 'व्हाट इज पालिटिकल डेवलपमेंट मीन इन अफ्रीका'? वर्ल्ड पालिटिक्स, XX 1, (1967), 140.

13. एरिस्टिड जोलबर्ग . क्रियेटिंग पालिटिकल आर्डर : दि पार्टी स्टेट्स आफ वेस्ट अफ्रीका (शिकागो : रैंड, मैकनेली ऐंड कंपनी, 1966), पृ० 160

14 एक दूसरे के साथ समझौते की भावना से कार्य करने की राजनीति से उत्पन्न समस्याओं के संबंध में देखिए, आर० ग्रैनफोर्ड ग्राट . 'दि ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ इकोनामिक प्लानिंग इन ए न्यूली इंडिपेंडेंट स्टेट दि तनजनियन एक्स्पीरियंस, 1963-1966', दि जर्नल आफ कामनवेल्थ पालिटिकल, स्टडीज, V, 1 (1967); 38-59; और देखिए, जोनाथन एस० बार्कर : 'दि पैराडाक्स आफ डेवलपमेंट' रिफ्लैक्शंस आन ए स्टडी आफ लोकल-सेंट्रल पालिटिकल रिलेशंस इन सेनेगल,' माइकिल लाफचाई (संपादित) : दि स्टेट आफ नेशंस : कंस्ट्रेंट्स आन डेवलपमेंट इन इंडिपेंडेंट अफ्रीका (बर्कले ऐंड लास एंजिल्स . यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1971), पृ० 47-63.

15 आइवरी कोस्ट में इस मामले पर विचारों के लिए देखिए, रिचर्ड ई० स्ट्राईकर . 'ए लोकल पर्सपेक्टिव आन डेवलपमेंट स्ट्रैटिजी इन दि आइवरी कोस्ट,' लाफचाई, पृ० 119-139.

16. यह बात आइवरी कोस्ट में देखी जा सकती है; देखिए वही, पृ० 138-139.

अनुक्रमणी